परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

प्रमाणनिर्णय

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री वादिराज जी महाराज

अनुवाद-सम्पादक
डॉक्टर सूरजमुखी जैन

प्रकाशक
अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान
बीना (मध्यप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

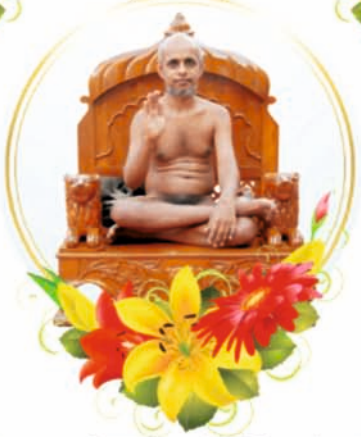

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

श्रीमद् वादिराज सूरि विरचितः

प्रमाण निर्णय

अनुवाद-सम्पादन

डॉ० सुरेशमुखी जैन

मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

--: प्रकाशक :-

अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान

बीना(सागर) म०प्र० 470113

फोन नं० :- (07580) 30279

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय	3
आत्माभिव्यक्ति	5
प्राक्कथन	6
प्रस्तावना	8
प्रमाण लक्षण निर्णय	1
प्रत्यक्ष प्रमाण निर्णय	19
परोक्ष प्रमाण निर्णय	45
अनुमान निर्णय	
आगम निर्णय	88

प्रकाशकीय

जैन न्याय के सूर्यास्त, तार्किक शिरोमणि आचार्य वादिराज सूरि विरचित प्रमाण निर्णय ग्रंथ मूल एवं हिन्दी अनुवाद सम्पादन के साथ प्रथम बार प्रकाशित करते हुए गौरव का अनुभव हो रहा है। लगभग ८५ वर्ष पूर्व माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रंथमाला बम्बई द्वारा वीर नि० संवत् २४४३ में ग्रन्थमाला के दशम् पुष्प के रूप में मूल ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया था। बहुत लम्बे समय से ग्रंथ अप्राप्य था।

न्यायाचार्य डॉ० दरबारी लाल कोठिया, बीना के पास न्याय ग्रंथों के अध्ययन का सुअवसर मेरे लिए प्राप्त हुआ। डॉ० कोठिया जी सदैव प्रेरणा देते रहते थे कि जिन न्याय ग्रन्थों को हम प्रकाश में नहीं ला पाये हैं, उन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का कार्य आपको करना है।

विद्वानों की नगरी बीना में अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान की स्थापना कर दुर्लभ अप्राप्य ग्रन्थों का संकलन, संरक्षण एवं प्रचार–प्रसार के दुरूह कार्य को अपने निर्बल कंधों पर लेकर माँ भारती की सेवा का व्रत लेकर अपने सम्पूर्ण जीवन को साहित्यक सेवा में अर्पित कर अपने पूज्य गुरूवर श्री १०८ सरल सागर जी महाराज से भी न्याय ग्रन्थों की उपयोगिता एवं जिज्ञासा को प्राप्तकर एक नई जीवन ज्योति मिली।

अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना का यही पवित्र उद्देश्य है कि अप्रकाशित अथवा बहुमूल्य, दुर्लभ, अति उपयोगी ग्रन्थों को प्रकाशित कर आर्ष परम्परा को सुरक्षित करें। इस दिशा में संस्थान शनैः शनैः अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है।

आचार्य वादिराज जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रमाण विषयक विपुल सामग्री प्रस्तुत कर इस लघुकाय ग्रन्थ को उपयोगी बना दिया है। न्याय जैसे दुरूह ग्रन्थों का शब्दशः अनुवाद करना सरल कार्य नहीं है किन्तु जैन न्याय की विदुषी डॉ० सूरजमुखी जैन ने निःस्वार्थ रूप से ग्रन्थ अनुवाद का कार्य करके बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। डॉ० सूरजमुखी जी अनेकांत ज्ञान मंदिर के उत्तरोत्तर विकास में संलग्न हैं। आप द्वारा माँ सरस्वती की जो सेवा की जा रही है, वह अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है।

जैन दर्शन के मनीषी डॉ० जयकुमार जैन ने प्राक्कथन लिखकर ग्रन्थ के महत्त्व को बढ़ा दिया है। परम पूज्य गुरूवर श्री १०८ सरलसागर जी महाराज के प्रति भी कृतज्ञतावश नमोस्तु करता हूँ कि आपने भी ग्रन्थ के अनुवाद को देखकर प्रकाशन हेतु प्रेरणा दी।

ग्रन्थ का अनुवाद लगभग एक वर्ष पूर्व हो चुका था किन्तु प्रकाशन के कार्य में अनेक अवरोधक कारण आते रहे। इस ग्रंथ के प्रकाशन हेतु आर्थिक सौजन्यता जिनवाणी उपासक श्री सुखपाल जैन इंजीनियर, भुवनेश्वर ने सहज ही दी, अतः स्व० पिता श्री अतरसेन जैन एवं स्व० मातुश्री फिरोजीदेवी बड़ौत की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री सुखमाल जैन, श्री सुखपाल जैन एवं श्री अशोक जैन के आर्थिक सौजन्य से ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। एतदर्थ ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

अनेकांत भवन ग्रन्थ रत्नावली १,२ की भव्य प्रस्तुति के बाद प्रमाण निर्णय ग्रन्थ आप सभी के समक्ष है। पाठकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि आप सभी के सृजनात्मक सहयोग से अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी समय-समय पर श्रुताराधकों के लिए संस्थान द्वारा प्रकाशित होते रहेंगे।

प्रूफ एवं मुद्रण सम्बंधी त्रुटियाँ रह सकती हैं एतदर्थ विद्वानों से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके।

ब्र० संदीप सरल
संस्थापक
अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान
बीना (सागर) म०प्र०

आत्माभिव्यक्ति

ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर सर्वप्रथम मैं जैन बाला विश्राम धर्मकुंज धनुपुरा, आरा (बिहार) की अधिष्टात्री दिवंगता ममतामयी मां पूज्या १०५ आर्यिकारत्न श्री चन्दाबाई जी के चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ, जिनकी वात्सल्यमयी छत्रछाया में रहकर मुझे जैन दर्शन और जैन न्याय के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।मैं अपने श्रद्धेय गुरूवर डा. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य को भी नतमस्तक प्रणाम करती हूँ, जिनके अटूट वात्सल्य और सतत प्रयास से ही मैं यत्किंचित् ज्ञान प्राप्त कर सकी हूँ और जो जीवनपर्यन्त मेरा मार्गदर्शन करते रहे।

मैं अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना के प्राणप्रदाता श्री ब्र. संदीप 'सरल' जी को भी विनम्र प्रणाम करती हूँ, जिनकी प्रेरणा से मैं न्याय जैसे दुरूह विषय में कार्यरत हुई और जिन्होंने प्रमाणनिर्णय ग्रन्थ के साथ–साथ न्यायविषयक अन्य सन्दर्भ ग्रन्थों को भी उपलब्ध कराकर मुझे हर प्रकार से यथेष्ट सहयोग प्रदान किया, तथा अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना से पुस्तक प्रकाशन का भी उत्तरदायित्व लेकर मुझे प्रकाशन भार से भी मुक्त रखा। जैन दर्शन और जैन न्याय के सम्मानित विद्वान डा. जयकुमार जैन प्रवक्ता संस्कृत विभाग, सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर की भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अनुवाद की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़कर आवश्यक सुझाव देने तथा प्राक्कथन लिखने का अनुग्रह किया है।मैं श्री सुमेरचन्द जैन, सम्पादक वर्णी प्रवचन, मुजफ्फरनगर के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ, जिन्होंने अपने निजी पुस्तकालय से न्याय विषय पर पूज्य १०५ क्षुल्लक मनोहर लाल वर्णी जी के प्रवचनों को सुलभ कराकर मेरी न्याय की गुत्थियों को सुलझाने में सहयोग प्रदान किया है।इनके अतिरिक्त भी मैंने जिन ग्रन्थों एवं पुस्तकालयों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस अनुवाद कार्य में प्रयोग किया है, उन सबके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने पति श्री शीतलप्रसाद जैन सेवानिवृत्त बी. डी. ओ. की भी हृदय से आभारी हूँ,जिन्होंने गृहकार्यों में आवश्यक सहयोग देकर मुझे लेखन कार्य की सुविधा प्रदान करने के साथ–साथ पुस्तक,कागज, कलम आदि आवश्यक सामग्री जुटाकर मुझे हर प्रकार की सहायता दी है। उनके सतत सहयोग के बिना मेरे लिये यह कार्य अतिदुष्कर था।

डा. सूरजमुखी जैन
अलका, ३५ इमामबाड़ा
मुजफ्फरनगर
पूर्व प्राचार्या

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के सर्वांगीण ज्ञान के लिए वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों धाराओं से समाहृत साहित्य का मूल्यांकन अपरिहार्य है।एक विशिष्ट भारतीय परम्परा के रूप में जैनों ने वाङ्मय की महत्त्वपूर्ण सेवा की है।सुप्रसिद्ध इतिहास विद्वान् डॉ. एम. विन्टरनित्ज़ ने लिखा है–

"I was not able to do justice to the literary achivements of the Jainas.But I hope to have shown that the Jainas have contributed their full share to the religious] ethical and scientific literature of ancient India."

विद्वान् समीक्षक के कथन से स्पष्ट है कि साहित्य के क्षेत्र में जैनों की देन का पूर्णांग आकलन करना अत्यन्त आवश्यक है और यह कार्य अब तक भी यथेष्ट रूप में नहीं हो सका है।जैन समाज में जब पुस्तकों के नाम पर यद्वा तद्वा अपार्थक साहित्य प्रचुर मात्रा में छप रहा हो, तब वादिराज सूरि जैसे समर्थ मध्ययुगीन भारत के अग्रगण्य प्रतिभू महाकवि एवं न्यायशास्त्री के ग्रन्थों का राष्ट्र भाषा तक में अनुवाद प्रकाशित न हो पाना जैन समाज के लिए महान् शर्म की बात है।

वादिराज सूरि संस्कृत साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। भले ही उनकी सम्पूर्ण कृतियों का विधिवत् सांगोपांग अध्ययन न हो पाया हो परन्तु उनके सरस एकीभाव स्तोत्र से भक्त धार्मिक समाज, न्यायविनिश्चय विवरण एवं प्रमाण निर्णय से सुधी तार्किक समाज तथा यशोधरचरित एवं पार्श्वनाथ चरित से सहृदय साहित्य रसिक समाज सर्वथा सुपरिचित है।आज से लगभग ढाई दशक पूर्व जब मैंने वादिराज सूरि कृत पार्श्वनाथ चरित पर पी. एच. डी. की उपाधि के निमित्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोधकार्य प्रारंभ किया था, तब उनके अन्य ग्रन्थों पर भी विहंगम दृष्टि डालने का अवसर मिला था।

प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा विषयक एक लघुकाय किंतु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। चार अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ में वादिराज सूरि ने मंगलाचरण में तीर्थंकर वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करके प्रमाण निर्णय के वर्णन की प्रतिज्ञा की है।अध्यायों का नामकरण विषयवस्तु के आधार पर किया गया

है।प्रथम अध्याय का प्रमाण लक्षण निर्णय, द्वितीय अध्याय का प्रत्यक्ष निर्णय, तृतीय अध्याय का परोक्ष निर्णय और चतुर्थ अध्याय का नामकरण आगम निर्णय है।इस ग्रन्थ में जैन न्याय सम्मत प्रमाणत्रय का विवेचन है। अद्यावधि इस ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में कोई अनुवाद, टीका टिप्पणी या व्याख्या उपलब्ध नहीं थी।

डॉ. सूरजमुखी जैन, सेवानिवृत्त प्राचार्य–स्थानकवासी जैन कालेज इंदौर ने सर्वप्रथम इसका हिन्दी में अनुवाद किया है।इस अनुवाद के पढ़ने से उनके परिश्रम, सूझ बूझ एवं न्यायसदृश कठिन विषय को सरल शब्दों में प्रतिपादन की क्षमता के दर्शन होते है। मैं आशा करता हूँ कि प्रमाणनिर्णय की अनुवादिका यहीं विराम नहीं लेगी तथा वादिराज सूरि के न्याय विनिश्चय विवरण पर भी हिन्दी में समीक्षा व्याख्या लिखेंगी ताकि उनके न्यायशास्त्रज्ञता का लाभ न्याय के अन्य जिज्ञासुओं को भी मिल सके।

प्राचीन आचार्यों की कृतियों को आधुनिक पद्धति से सम्पादित कराके प्रकाशित करना समाज का कर्तव्य है।इस कृति के प्रकाशन की बेला में **मैं अनेकान्त ज्ञान मंदिर बीना के सर्वस्व श्री ब्र. संदीप 'सरल' जी एवं डॉ सूरजमुखी जैन को प्रणाम करता हूँ** तथा डॉ. जैन से अपेक्षा करता हूँ कि वे साहित्य सपर्या के क्षेत्र में और अधिक अवदान से समाज को उपकृत करें।

डॉ. जयकुमार जैन
मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

प्रस्तावना

प्रमाण निर्णय ग्रन्थ के विवेचन से पूर्व ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक है। अतः मैं सर्वप्रथम ग्रन्थकार आचार्य वादिराज सूरि के व्यक्तित्व और कृतित्व की रूपरेखा प्रस्तुत कर रही हूँ।

प्रमाण निर्णय ग्रन्थ के रचयिता वादिराज सूरि दार्शनिक, चिन्तक और महाकवि के रूप में विख्यात हैं।ये उच्चकोटि के तार्किक होने के साथ भावप्रवण काव्य के प्रणेता भी हैं।डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य के अनुसार इनकी तुलना जैन कवियों में सोमदेव सूरि से और अन्य संस्कृत कवियों में नैषधकार श्री हर्ष से की जा सकती है।[1]

आचार्य वादिराज सूरि द्रमिल या द्रविड़ संघ के आचार्य थे।इसमें भी एक नन्दि संघ था, जिसकी अरुङ्गल शाखा के अन्तर्गत इनकी गणना की गयी है।[2]

वादिराज की षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वाद विद्यापति और जगदेवमल्लवादी उपाधियां थीं।[3]

एक शिला लेख में कहा गया है कि वादिराज सभा में अकलंकदेव, धर्मकीर्ति, बृहस्पति और अक्षपाद गौतम के तुल्य हैं।स्पष्ट है कि वादिराज अनेक धर्मगुरूओं के प्रतिनिधि थे।[4]

मल्लिषेण प्रशस्ति में वादिविजेता और कवि के रूप में इनकी स्तुति की गयी है। इन्हें जिनेन्द्र के समान वक्ता और चिन्तक बताया गया है।[5]

एकीभाव स्तोत्र के अन्त में एक पद्य के द्वारा समस्त वैयाकरणों, तार्किकों, कवियों और सज्जनों को वादिराज से हीन बताया गया है।[6]

वादिराज श्रीपालदेव के प्रशिष्य, मतिसागर के शिष्य और रूपसिद्धि के कर्ता दयापाल मुनि के गुरूभाई थे।[7]

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य, भाग ३, पृ.८८

२. वही, भाग ३, पृ.८८

३. षटतर्कषण्मुख स्याद्वादविद्यापति गलु जगदैकमल्लवादिगलु एनिसिद श्री वादिराज देवरूम–श्री राइस द्वारा सम्पादित नगर तालुका का इन्सकपशन्स नं. ३६

४. सदसियदकलङ्कः कीर्तने धर्मकीर्तिर्वचसि सुरपुरोधा न्यायवादेदक्ष पादः।इति समयगुरूणामेकतः संगतानां प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः इन्सकपशन्स नं.३८

५. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख सं.५४, मल्लिषेण प्रशस्ति पद्य ४०

६. वादिराजमनु शाब्दिक लोको, वादिराजमनुतार्किक सिंहः।वादिराजमनु काव्य कृतस्ते, वादिराजमनुभव्य सहायः।एकीभावस्तोत्र, आचार्य वादिराज सूरि, २६

७. मल्लिषेण प्रशस्ति पद्य ३८

वादिराज की गुरू परम्परा मठाधीशों की थी,जिनमें दान लिया और दिया जाता था।ये स्वयं जिनमंदिरों का निर्माण कराते, जीर्णोद्धार कराते एवं अन्य मुनियों के लिये आहारदान की व्यवस्था करते थे।शक सं. ११२२ में उत्कीर्ण ४६५ संख्यक अभिलेख में बताया गया है कि षट्दर्शन के अध्येता श्रीपाल देव के स्वर्गवासी होने पर उनके शिष्य वादिराज ने एकवादिमल्ल नाम का जिनालय बनवाया था और उसके पूजन एवं मुनियों के आहारदान हेतु भूमिदान दिया था।

वादिराज सूरि के विषय में कहा जाता है कि इन्हें कुष्ठ रोग हो गया था।एक बार राजसभा में इसकी चर्चा हुई तो इनके एक अनन्य भक्त ने गुरू के अपवाद के भय से झूठ ही कह दिया कि उन्हें कोई रोग नहीं है,इस पर वाद विवाद हुआ।अन्त में राजा ने स्वयं ही परीक्षा करने का निश्चय किया।भक्त घबराया हुआ वादिराज के पास पहुंचा और उन्हें समस्त घटना कह सुनायी।गुरू ने भक्त को आश्वासन देते हुए कहा—धर्म के प्रभाव से सब ठीक होगा,चिन्ता न करो।तभी वादिराज सूरि ने एकीभाव स्तोत्र की रचना की और इनका कुष्ठरोग दूर हो गया।

स्थितिकाल

वादिराज ने अपने ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रचनाकाल का निर्देश किया है। ये प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र के रचयिता प्रभाचन्द्र के समकालीन और अकलंकदेव के ग्रन्थों के व्याख्याता हैं।कहा जाता है कि चालुक्य नरेश जयसिंह की राजसभा में इनका बड़ा सम्मान था एवं ये प्रख्यात वादी माने जाते थे।जयसिंह (प्रथम) दक्षिण के सोलंकी वंश के प्रसिद्ध महाराजा थे।इनके राज्य काल के कितने ही दानपत्र तथा अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें सबसे पहला अभिलेख शक संवत् ६३८ (ई. सन् १०१६) का है और सबसे अन्तिम शक संवत् ६६४ (ई. सन १०४२) का है।अतः इनका राज्यकाल सन् १०१६ से १०४२ ई. तक है।

वादिराज ने अपना पार्श्वनाथ चरित जयसिंह देव की राजधानी में रहते हुए शक सं. ६४७ (ई. सन् १०२५) कार्तिक शुक्ल तृतीया को पूर्ण किया था।[1]

यशोधरचरित के तृतीय सर्ग के अन्तिम पद्य और चतुर्थ सर्ग के उपान्त्य पद्य में कवि ने महाराज जयसिंह देव का उल्लेख किया है,जिससे विदित होता है कि यशोधरचरित की रचना भी कवि ने जयसिंह देव के समय में ही की है।

वादिराजसूरि जगदेकमल्ल द्वारा सम्मानित हुए थे,जिनका समय अनुमानतः सन् १०१० से १०३२ के मध्य का है।अतः वादिराज सूरि का समय १०१० ई.सन् से १०६५ ई० सन् तक का होना चाहिये।

---

1. शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने।मासे कार्तिक नाम्नि बुद्धि महिते शुद्धे तृतीया दिने।सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं जैनी कथेयं मया।निष्पत्ति गमिता सती भवतु वः कल्याणनिष्पत्तये।पा. च. प्र. ५ पद्य

रचनाएं

वादिराजसूरि की अब तक प्राप्त रचनाओं में पार्श्वनाथचरित, यशोधरचरित, न्यायविनिश्चयविवरण, एकीभावस्तोत्र तथा प्रमाणनिर्णय ग्रन्थ हैं।

पार्श्वनाथ चरित–

महाकाव्य की दृष्टि से वादिराजसूरि का पार्श्वनाथचरित श्रेष्ठ काव्य है।इसमें १२ सर्ग हैं।पार्श्वनाथ के प्रसिद्ध कथानक को ही कवि ने अपनाया है।यह कथावस्तु उत्तरपुराण में निबद्ध है।[1] संस्कृत भाषा में काव्य रूप में पार्श्वनाथ चरित को सर्वप्रथम लिखने का श्रेय वादिराज को ही है।संक्षेप में कथावस्तु निम्न प्रकार है–

पोदनपुर में अरविंद नाम का महाप्रतापी राजा रहता था।राजा दानी, कृपालु और यशस्वी था।इनका मंत्री विश्वभूति विलक्षण गुणों से युक्त था।विश्वभूति को संसार शरीर और भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने राजा से आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा ग्रहण कर ली। विश्वभूति के प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर राजा ने विश्वभूति के छोटे पुत्र मरूभूति को मंत्री नियुक्त कर दिया। विश्वभूति के बड़े पुत्र का नाम कमठ था।

एक बार मरूभूति को राजा के साथ युद्ध पर जाना पड़ा।मरूभूति के युद्ध पर जाने पर कमठ मंत्री पद पर प्रतिष्ठित हुआ।मंत्री पद प्राप्त करने के उपरान्त कमठ ने अपने लघु भ्राता मरूभूति की पत्नी वसुन्धरा के अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वसुन्धरा द्वारा बचने का अथक प्रयास करने पर भी उसे भ्रष्ट कर दिया। युद्ध से वापिस आने पर जब राजा को कमठ के दुराचार का पता चला तो राजा ने उसे नगर से निर्वासित कर दिया।कमठ तापसियों के आश्रम में रहने लगा।मरूभूति को अपने ज्येष्ठ भ्राता कमठ से बहुत प्यार था।राजा द्वारा रोके जाने पर भी भ्रातृवात्सल्य के कारण वह रूक नहीं सका और कमठ को वापिस लाने के लिये उसके पास पहुँच गया।उसे आता देख कमठ ने उसके ऊपर पर्वत की एक बहुत बड़ी चट्टान गिरा दी, जिससे उसका प्राणान्त हो गया।कमठ का मरूभूति के प्रति कई भवों तक एकाकी बैर चलता रहा, किंतु मरूभूति का जीव उससे कभी बैर विरोध नहीं रखता,वह सदैव उसकी भलाई करता रहता है।मरूभूति के जीव ने वज्रघोष हाथी, महाशुक स्वर्ग का देव, विद्युतदेव और विद्युन्माला का पुत्र रश्मिवेग, अच्युत स्वर्ग का देव, वज्रनाभ चक्रवर्ती आदि भवों को धारण कर अन्त में वाराणसी नगरी के राजा विश्वसेन की पत्नी ब्रह्मदत्ता के गर्भ से तीर्थंकर का जन्म धारण किया,देवों द्वारा जन्मोत्सव मनाया गया और बालक का नामकरण पार्श्वनाथ किया गया।

युवा होने पर एक दिन एक अनुचर से उन्हें ज्ञात हुआ कि एक साधु वन में पंचाग्नि तप कर रहा है, अवधिज्ञान से पार्श्वनाथ को ज्ञात हुआ कि कमठ का जीव ही अनेक पर्यायों में भ्रमण करता हुआ मनुष्य पर्याय प्राप्त कर कुतप कर रहा है। वे उस

---

2. उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,७३ पर्व, पृ.४२६–४४२

तपस्वी के पास पहुंचे और उसे समझाने का प्रयत्न किया कि यह तप नहीं कुतप है और जिस लकड़ी को वह जला रहा है,उसमें नाग नागिन जल रहे हैं, लकड़ी फाड़ कर नाग नागिन निकाले गये (पार्श्वनाथ ने उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया, जिससे मरकर वे धरणेन्द्र पद्मावती हुए और पार्श्वनाथ की पूजा की।

पार्श्वनाथ के विवाह के अनेक प्रस्ताव आये माता–पिता उनका विवाह करना चाहते थे,किंतु उन्होंने विवाह नहीं किया और विरक्त हो गये, लौकान्तिक देवों ने आकर उनका वैराग्यवर्धन किया,पार्श्वनाथ ने वन में जाकर पंचमुष्टि द्वारा केशलोंच कर दीक्षा धारण कर ली, दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञान हो गया, वे वन में प्रतिमायोग धारण कर स्थित हो गये। कमठ का जीव भूतानन्ददेव आकाश मार्ग से जा रहा था,पार्श्वनाथ के प्रभाव से उसका विमान रूक गया,उसकी दृष्टि पार्श्वनाथ पर पड़ी और पूर्व बैर का स्मरण कर उन पर बाण वर्षा करने लगा तो तीर्थंकर के प्रभाव से पुष्पवृष्टि बन गयी।धरणेन्द्र पद्मावती को जब इस उपसर्ग का पता चला तो तत्क्षण वहां आकर उन्होंने उपसर्ग का निवारण किया। पार्श्वनाथ ने शुक्लध्यान द्वारा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय चारों घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञान प्राप्त किया, देवों द्वारा जयनाद को सुनकर भूतानन्द आश्चर्य चकित हो गया और स्वयं भी तीर्थंकर की स्तुति करने लगा।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की, सभी प्राणी भगवान का उपदेश सुनकर प्रसन्न हुए।तत्पश्चात् एक मास का योगनिरोध कर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र चारों अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर भगवान ने निर्वाणलक्ष्मी को प्राप्त किया।

शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार पार्श्वनाथ चरित महाकाव्य है।इसमें १२ सर्ग हैं।मंगलस्तवन पूर्वक काव्य का प्रारंभ हुआ है।नगर, वन, पर्वत, नदियां, समुद्र, उषा, सन्ध्या, रजनी, चन्द्रोदय, प्रभात आदि प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के साथ जन्म, विवाह, युद्ध, सामाजिक उत्सव, श्रृंगार, करूण आदि रसों का कलात्मक वर्णन पाया जाता है।तीर्थंकर के चरित के अतिरिक्त राजा महाराजा, सेठ–साहूकार, किरात–भील, चांडाल आदि के चरित्र चित्रण के साथ पशु पक्षियों के चरित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रस्तुत काव्य का अंगी रस शान्त है और अंग रूप में श्रृंगार, करूण, वीर, भयानक, वीभत्स और रौद्र रसों का भी नियोजन पाया जाता है।चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी यह सफल महाकाव्य है।प्रतिनायक कमठ ईर्ष्या द्वेष, हिंसा एवं अशुभ रागात्मक प्रवृत्तियों के कारण अनेक जन्मों में नाना प्रकार के कष्ट भोगता है, किंतु नायक मरूभूति का जीव प्रतिनायक के साथ सदैव सहानुभूति रखता है। प्रकृतिचित्रण और अलंकार योजना की दृष्टि से भी यह महाकाव्य उच्चकोटि का है।

यशोधरचरित--

यशोधरचरित हिंसा का दोष और अहिंसा का प्रभाव दिखाने के लिए बहुत लोकप्रिय रहा है। इस काव्य में चार सर्ग हैं--प्रथम सर्ग में ६२ पद्य, द्वितीय में ७५, तृतीय में ८३ और चतुर्थ में ७४ पद्य हैं।इसकी कथा वस्तु सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू में वर्णित कथा के अनुसार ही है, जो निम्न प्रकार है--

भरतक्षेत्र के अवन्ति जनपद की राजधानी उज्जयिनी के राजा यशबन्धु और उनकी रानी चन्द्रमती के यशोधर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।एक बार अपने सिर पर श्वेत केश को देखकर राजा यशबन्धु को वैराग्य हो गया, उन्होंने अपने पुत्र यशोधर को राज्य सौंप कर दीक्षा धारण कर ली। यशोधर का राज्याभिषेक के साथ ही अमृतमती के साथ विवाह भी खूब धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

रानी अमृतमती अष्टभंग नामक कुबड़े महावत की संगीत--ध्वनि से आकृष्ट होकर उस पर रीझ जाती है और यशोधर को कपट प्रेम प्रदर्शित करते हुए गुप्त रूप से उस कुबड़े महावत के साथ विलास करने लगती है।राजा यशोधर रानी के इस कपट व्यवहार को जानकर अत्यधिक खेदखिन्न रहने लगता है।[illegible] के द्वारा उदासीनता का कारण पूछने पर वह अनिष्ट स्वप्न दर्शन बताकर अपने पुत्र यशोमति को राज्य देकर सन्यास लेने की इच्छा व्यक्त करता है।

राजमाता यशोधर को अनिष्ट की शान्ति के लिये चण्डमारीदेवी के मंदिर में पशुबलि चढ़ाने का उपाय बताती है।पशुहिंसा के लिये किसी भी तरह यशोधर के तैयार न होने पर वह उससे आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि चढ़ाने को कहती है।राजमाता की बात को रखने के लिये यशोधर आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाने को सहमत हो जाता है।अमृतमती एक ओर तो यशोधर से कपट प्रेम दिखाते हुए उसे सन्यास लेने से रोकती है,दूसरी ओर आटे का मुर्गा बनाते समय उसमें विष मिला देती है, प्रसाद के रूप में जिसे खाकर यशोधर और उसकी मां चन्द्रमती दोनों की मृत्यु हो जाती है।

आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाने के कारण मृत्यु के बाद दोनों मां बेटे छः जन्मों तक पशु योनि में भटकते रहे।प्रथम जन्म में यशोधर मोर हुआ, उसकी मां चन्द्रमती कुत्ता हुई, दूसरे जन्म में यशोधर हिरण हुआ, मां सर्प, तीसरे जन्म में वे दोनों क्षिप्रा नदी में जलजन्तु हुए, चतुर्थ जन्म में दोनों बकरा बकरी हुए, पंचम जन्म में यशोधर बकरा और मां भैंसा हुई, छठे जन्म में यशोधर मुर्गा और चन्द्रमती मुर्गी बनी।

मुर्गा, मुर्गी के जन्म में आचार्य सुदत्त का उपदेश सुनकर उन्हें अपने पूर्व जन्म का स्मरण हुआ और अपने किये पर पश्चाताप भी।अतः अगले जन्म में वे राजा यशोमति के यहां उनकी रानी कुसुमावलि के गर्भ से युगल भाई बहिन के रूप में उत्पन्न हुए,उनके नाम थे अभयरुचि और अभयमती। एक बार राजा यशोमति के साथ दोनों भाई बहिन आचार्य सुदत्त के दर्शन के लिये गये, वहां आचार्य सुदत्त से अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त जानकर दोनों भाई बहिनों को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने तत्काल दीक्षा ग्रहण कर ली।एक बार आचार्य से आज्ञा प्राप्त कर दोनों साधु साध्वी भिक्षाटन के लिये नगर में पहुंचे, तभी

राजा मारिदत्त के कर्मचारी उन्हें पकड़कर राजा के पास देवी के मंदिर में नर युगल की बलि चढ़ाने के लिये ले गये।राजा के द्वारा उन सुन्दर नर युगल से उनका परिचय पूछने पर उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा को बताया,जिसे सुनकर राजा भी आश्चर्यचकित रह गया और उनके गुरू आचार्य सुदत्त के पास जाकर स्वयं भी दीक्षा धारण कर ली।

काव्य गुणों की दृष्टि से यशोधर चरित समृद्ध काव्य है।रस, अलंकार और उक्ति वैशिष्ट्य के साथ कथावस्तु में मर्मस्पर्शी स्थलों की सफल योजना की गयी है,व्यंजनावृत्ति का भी कवि ने उपयोग किया है।इस काव्य में संगीत का महत्त्व भी दिखाया गया है। संगीत में कितनी शक्ति है,यह रानी अमृतमती की घटना से सिद्ध है। अष्टभग के कुरूप, अधेड़ और वीभत्स आकृति होने पर भी उसके कंठ में अमृत है, यही कारण है कि रानी उस पर मुग्ध हो जाती है।

एकीभाव स्तोत्र–

इस स्तोत्र में भक्तिभावना का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है।भक्तिभाव में तन्मय होकर स्तोत्र की रचना से ही कवि का कुष्ठ रोग दूर हो गया था।इस स्तोत्र में २६ पद्य हैं २५ पद्य मन्दाक्रान्ता में है और एक पद्य स्वागता में। आचार्य स्तोत्र के प्रारंभ में ही कहते हैं–

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबंधो,
घोरं दुःख भवभवगतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरून्मुक्तयेचेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपर स्तापहेतुः।[1]

हे भगवान जब आपकी भक्ति से भव भव में दुःख देनेवाला कर्मबन्ध भी दूर हो जाता है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है,तो अन्य सांसारिक संताप के कारण दूर हो जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है?

भक्तिभाव में तन्मय होने पर समस्त मंगलों के द्वार खुल जाते हैं। आचार्य इसी तन्मयता की स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं–

आनन्दाश्रुस्नपित वदनं गद्गदं चाभिजलपन् ,
यास्त्वायेत त्वयि दृढ़मनाः स्तोत्रमन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह वल्मीकमध्यात् ,
निष्कास्यन्ते विविध विषम व्याधयः काद्रवेयाः।।[2]

हे भगवान आपमें स्थिर चित्त होकर हर्षाश्रुओं से विलिप्त गद्गद वाणी से स्तोत्र मन्त्रों द्वारा आपकी जो पूजा करता है,उसकी बहुत समय से रहने वाली व्याधियां भी शरीर से ऐसे ही निकल भागती हैं जैसे कि सपेरे की बीन को सुनकर सर्प बामी में से निकल पड़ते हैं।

---

१ एकीभाव स्तोत्र, वादिराज सूरि, १

2. एकीभाव स्तोत्र, वादिराज सूरी 3.

वे कहते हैं कि आपके स्वर्ग से पृथ्वी पर आने से छः माह पूर्व ही देवों द्वारा स्वर्णवृष्टि करके इस पृथ्वीतल को सुवर्णमय बना दिया गया था तो जब आप ध्यानरूपी द्वार से मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट हो चुके हैं तो मेरा शरीर भी स्वर्णमय हो जाय तो क्या आश्चर्य है?

प्राग्मेवेह त्रिदिवभवतादेवता भक्तपुण्यात्
पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देवनिन्येत्वयेदम्।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टः
तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि।[1]

कहा जाता है कि इस स्तोत्र के प्रारंभ करते ही कवि का कुष्ठरोग कम होने लगा था और उक्त श्लोक को पढ़ते ही समस्त कुष्ठरोग दूर हो गया और शरीर स्वर्ण की तरह चमकने लगा।

न्यायविनिश्चय विवरण–

अकलंकदेव ने न्यायविनिश्चय नामक तर्क ग्रन्थ लिखा है। आचार्य वादिराज ने इस तर्क ग्रन्थ पर अपना विवरण लिखा है, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने पक्षों को समृद्ध बनाने के लिए अगणित ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये हैं।इन्होंने अपनी इस टीका का नाम न्यायविनिश्चयविवरण रखा है।

प्रणिपत्य स्थिरभक्तया गुरून् परानप्युदारबुद्धिगुणान् न्यायविनिश्चय विवरण मभिरमणीयं मया क्रियते।[2]

वादिराज द्वारा लिखित भाष्य का प्रमाण बीस हजार श्लोक प्रमाण है।इन्होंने मूल वार्तिक पर अपना भाष्य लिखा है। न्यायविनिश्चय विवरण की रचना मौलिक शैली में हुई है।प्रत्येक विषय को आत्मसात् करके ही व्यवस्थित ढंग से युक्तियों द्वारा अपने कथन को प्रमाणित किया है।जितना पर पक्ष समीक्षण का भाग है,वह उन–उन मतों के प्राचीनतम ग्रन्थों से लेकर ही पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थित किया है।

स्वपक्ष संस्थापना में समन्तभद्रादि आचार्यों के प्रमाणवाक्यों से पक्ष का समर्थन परिपुष्ट रूप में किया गया है।कारिकाओं की व्याख्या में वादिराज का व्याकरण ज्ञान भी प्रस्फुटित हुआ है। कई कारिकाओं के उन्होंने पांच–पांच अर्थ तक दिये हैं,दो अर्थ तो अनेक कारिकाओं के दृष्टिगोचर होते हैं।समस्त विवरण में दो ढाई हजार पद्य उनके द्वारा रचे गये हैं,इनकी तर्कणा शक्ति अत्यंत प्रखर और मौलिक है। इन्होंने न्यायविनिश्चय के प्रत्यक्ष, अनुमान और प्रवचन तीनों परिच्छेदों पर विवरण की रचना की है।अकलंकदेव ने जिन मूल विषयों की उत्थापना की है,उनका विस्तृत भाष्य इस विवरण में हुआ है।तर्क और

---

[1] एकीभावस्तोत्र, वादिराजसूरि–४

[2] न्यायविनिश्चयविवरण, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रस्तावना, पृ.३५

दर्शन के तत्वों को स्पष्टरूप से समझाने का प्रयास किया गया है।ज्ञान--ज्ञेय तत्व, प्रमाणप्रमेय आदि का विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है।

प्रमाण निर्णय--

सर्वप्रथम निर्विघ्न ग्रन्थ की समाप्ति के लिए मंगलाचरण के रूप में श्री वर्द्धमान प्रभु को नमस्कार कर ग्रन्थ को प्रारंभ किया गया है।इस ग्रन्थ में प्रमाणनिर्णय, प्रत्यक्षनिर्णय, परोक्षनिर्णय और आगमनिर्णय ये चार प्रकरण हैं।

प्रमाणनिर्णय में प्रमाण का स्वरूप निर्धारण करते हुए सम्यक्ज्ञान को ही प्रमाण बताया है।इस प्रकरण में नैयायिक,मीमांसक, बौद्धप्रभृति दार्शनिकों की प्रमाणविषयक मान्यताओं की समीक्षा की गयी है और बताया है कि--

सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है,इसके बिना अन्य किसी को प्रमाणत्व नहीं होने से।प्रमिति क्रिया के प्रति जो साधकतम करण है,वही प्रमाण है।वह सम्यग्ज्ञान होने पर ही होता है,अचेतन इन्द्रियादि या मिथ्याज्ञान में नहीं होता।नैयायिक इन्द्रिय और अनुमानादि को भी प्रमिति क्रिया के प्रति करण मानते हैं।वे कहते हैं--चक्षु इन्द्रिय से देखा जाता है, धूएं से अग्नि का अनुमान किया जाता है।अतः वे भी प्रमिति क्रिया के प्रति करण हैं।

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं प्रमाणत्वाऽन्यथानुपपत्तेः। इदमेव हि प्रमाणस्य प्रमाणत्वं य प्रमितिक्रियां प्रति साधकतमत्वेन करणत्वम्। तच्च तस्य सम्यग्ज्ञानत्वे सत्येव भवति नाचेतनत्वे नाप्यसम्यग्ज्ञानत्वे। ननु च प्रमिति क्रियायामस्त्येवाचेतनस्यापीन्द्रियलिङ्गादेः करणत्वं चक्षुषा प्रमीयते,धूमादिना प्रमीयते इति। तथापि प्रमिति क्रिया करणत्वस्य प्रसिद्धेरितिचेत्।

आचार्य कहते हैं कि संशय विपर्यय और अनध्यवसाय का निवारण ही प्रमिति है, इनका निवारण होने पर ही अचेतन इन्द्रियआदि या अन्य कोई प्रमितिक्रिया का कारण हो सकता है। अचेतन इन्द्रिय आदि करण नहीं हो सकते, क्योंकि ये अव्युत्पत्त्यादि के विरोधी नहीं हैं। किसी विरोधी के द्वारा ही किसी का विनाश किया जा सकता है। जैसे प्रकाश अन्धकार का विरोधी है, अतः उससे अन्धकार नष्ट होता है। अचेतन इन्द्रिय आदि का अव्युत्पत्ति आदि से विरोध नहीं है, अतः उनके द्वारा उनका विनाश नहीं हो सकता। सम्यक्ज्ञान से ही उनका विनाश हो सकता है, क्योंकि सम्यक्ज्ञान निश्चयात्मक होता है। निश्चयात्मक का अव्युत्पत्त्यादि से विरोध प्रसिद्ध है। अतः सम्यक्ज्ञान ही प्रमिति क्रिया का करण है अन्य नहीं।

ननु च प्रमितिर्नाभाव्युत्पत्त्यादि व्यवच्छित्तिरेव। सत्यामेव तस्यां चेतनस्यैव तस्य वा प्रमितत्वोपपत्तेः।न च तथाचेतनस्य करणत्वमविरोधात्। विरोधिनोहि कुतश्चित्कस्यचित्व्यवच्छित्तिः प्रकाशादिवान्धकारस्य। न त्वचेतनस्याप्यव्युत्पत्त्यादिना कश्चिदपि विरोधो यतस्ततोऽपि तद्व्यवच्छित्तिः परिकल्प्येत, सम्यग्ज्ञानात्तु तद्व्यवच्छित्तिरूपपन्नैव तस्य व्यवसायात्मकत्वात्। व्यवसायस्य चाव्युत्पत्त्यादिना विरोधप्रसिद्धेः।[1]

[1] प्रमाण निर्णय, वादिराज सूरि पृ० १

इस प्रकरण में व्यवसायात्मक सम्यक्ज्ञान को प्रमाणसिद्ध किया गया है और इन्द्रिय, आलोक, सन्निकर्ष आदि की प्रमाणता की समीक्षा की गयी है, ज्ञान की उत्पत्ति में आलोक और अर्थ की कारणता का भी निराकरण किया गया है।

भावनाद्वैतवादी बौद्ध के केवल स्वविषयत्व तथा नैयायिक मीमांसक आदि के केवल अर्थ विषयत्व का निराकरण करते हुए सम्यक्ज्ञान का विषय स्व और पर दोनों बताया है। प्रमाण की प्रमाणता अभ्यस्त दशा में स्वतः और अनभ्यस्त दशा में परतः मानी गयी है।

प्रत्यक्ष निर्णय

प्रत्यक्ष निर्णय प्रकरण में स्पष्ट प्रतिभासित होने वाले ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है, स्पष्टाभास इन्द्रिय ज्ञान में सम्भव नहीं है, अतः इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष है, स्पष्ट प्रतिभास प्रत्यक्ष ज्ञान में होता है। जिस ज्ञान में इन्द्रिय आलोक आदि पर पदार्थों की सहायता की आवश्यकता होती है वह परोक्ष है और जिसमें इन्द्रिय आदि की सहायता की अपेक्षा नहीं होती वह प्रत्यक्ष होता है। इसी सन्दर्भ में सन्निकर्ष, इन्द्रियों से अर्थ के प्रति व्यापार आदि के प्रत्यक्षत्व का निरसन किया गया है। चक्षु के प्राप्यकारित्व का पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए उसका निराकरण किया गया है। कहा गया है कि यदि चक्षु प्राप्यकारी है तो वह आँख में लगे हुए अंजन आदि को क्यों नहीं देखती और आँख से असन्निकृष्ट पदार्थ को क्यों देख लेती है? अतः चक्षु प्राप्यकारी नहीं है।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद किए गए हैं – मुख्यप्रत्यक्ष और सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं – इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष। मुख्य प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं— विकल प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। यद्यपि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय ज्ञान को इन्द्रिय तथा मन की सहायता से होने के कारण परोक्ष कहा गया है किन्तु व्यवहार में प्रत्यक्ष माना जाने के कारण उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है। इन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष के अवग्रह के द्वारा ग्रहण किए हुए विषय में यह देवदत्त होना चाहिए, इस प्रकार की प्रतीति ईहा है, यह देवदत्त ही है इस प्रकार का निश्चय अवाय है और उसी को कालान्तर में स्मरण रखने योग्य ग्रहण करना धारणा है। इसके बहु आदि अन्य अवान्तर भेदों का उल्लेख ग्रंथकार ने नहीं किया है, किन्तु भेदनिबन्धनश्चावग्रहादीनामस्ति संख्याविकल्पः सोऽन्यत्र प्रतिपत्तव्यः कहकर उनका संकेत कर दिया है।

अतीन्द्रिय ज्ञान में अवधि और मनःपर्यय ज्ञान को विकल प्रत्यक्ष तथा केवलज्ञान (सर्वज्ञ के ज्ञान) को सकल प्रत्यक्ष कहा गया है। अवधि ज्ञान के देशावधि, परमावधि और सर्वावधि तीन भेद किये गये हैं। मनःपर्याय ज्ञान के भी ऋजुमति और विपुलमति दो भेद बतायें हैं और ऋजुमति से विपुलमति कोअधिक विशुद्ध बताया गया है। मतिज्ञान के विषय का अनन्तवां भाग देशावधि का, देशावधि के विषय का अनन्तवां भाग परमावधि तथा उसका

अनन्तवां भाग सर्वावधि का विषय है। सर्वावधि का अनन्तवां भाग विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान का विषय है। मनःपर्यय ज्ञान संयमी मनुष्यों के ही होता है।[1]

केवलज्ञान सम्पूर्ण घातियाकर्मों का क्षय होने पर उत्पन्न होता है। यह तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों और उनकी पर्यायों को एक साथ जानता है। अन्य ज्ञान अपने-अपने आवरण तथा वीर्यान्तराय का क्षयोपशम होने पर होते हैं किन्तु केवलज्ञान ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय कर्म के पूर्णतः क्षय होने पर ही प्रादुर्भूत होता है। इसी प्रसंग में सर्वज्ञत्व की सिद्धि करने के साथ साथ बुद्ध, हरिहर ब्रह्मा आदि देवताओं के सर्वज्ञत्व को निरसन करते हुए भगवान अर्हंत को ही सर्वज्ञ सिद्ध किया है। उनका ज्ञान ही पूर्णरूप से विशद(स्पष्ट) है।[2]

परोक्ष निर्णय

परोक्ष निर्णय प्रकरण में परोक्ष निर्णय के दो भेद किये हैं– अनुमान और आगम। अनुमान के भी मुख्य और गौण दो भेद किये हैं। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और तर्क को गौण अनुमान माना गया है तथा साधन से साध्य के ज्ञान को मुख्य अनुमान कहा गया है। तर्क प्रमाण के ज्ञान को मुख्य अनुमान कहा गया है। तर्क प्रमाण की प्रमाणता सिद्ध करते हुए आचार्य कहते हैं कि व्याप्ति ज्ञान को तर्क कहते हैं तथा साध्य एवं साधन के अविनाभाव को व्याप्ति। अविनाभाव एक नियम है। साध्य के होने पर ही साधन का होना तथा साध्य के न होने पर साधन का न होना अविनाभाव है। व्याप्ति का ज्ञान तर्क प्रमाण के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमाण से संभव नहीं है, अतः तर्क को पृथक् प्रमाण मानना आवश्यक है। तर्क का अनुमान में अन्तर्भाव नहीं किया गया जा सकता। इसी प्रकार प्रत्यक्ष से अवग्रहीत पदार्थ का कालान्तर में स्मरण स्मृति प्रमाण तथा स एवायं अथवा तत्सदृशः एवायं इस प्रकार का स्मरण और प्रत्यक्ष का जोड़ रूप ज्ञान प्रत्यभिज्ञान है, जिनकी प्रमाणता भी युक्ति पूर्वक सिद्ध की गयी है।

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं, आचार्य ने उनके लिये अनुमान प्रमाण की अनिवार्यता सिद्ध की है। वे कहते हैं कि अनुमान के अभाव में न तो किसी की बुद्धि का ज्ञान हो सकता है, न इष्ट को सिद्ध और पर के इष्ट में दोषोद्भावन। भूत चतुष्टय की सिद्धि भी अनुमान प्रमाण के बिना नहीं हो सकती है। अतः चार्वाक को भी अनुमान प्रमाण मानना ही पड़ेगा।

अभाव प्रमाण के पृथक् प्रमाणत्व का निराकरण करते हुए उसका अन्तर्भाव प्रत्यक्ष प्रमाण में किया गया है। हेतु के त्रैरूप्य और पंचरूप्य का निरसन करते हुए अविनाभाव को ही हेतु सिद्ध किया है।

[1] प्रमाण निर्णय वादिराजसूरी पृष्ठ २८

2. वही पृष्ठ 32

वह हेतु साध्य में दो प्रकार का है– विधि साधन और प्रतिषेध साधन। विधि साधन भी दो प्रकार का है – धर्मी तथा धर्मी विशेष के भेद से। धर्मी विशेष साधन दो प्रकार का है– धर्मी से अभिन्न और धर्मी से भिन्न। धर्मी से अभिन्न साधन भी सपक्ष से सहित और सपक्ष से सहित के भेद से दो प्रकार का है। धर्मी से भिन्न साधन अनेक प्रकार का है। प्रतिषेध साधन भी विधि रूप और प्रतिषेध रूप के भेद से दो प्रकार का है। पुनः विधि रूप और प्रतिषेध रूप साधन के अनेक भेद हैं।

हेत्वाभास तीन प्रकार के हैं – असिद्ध, विरुद्ध और अनैकान्तिक।

साध्य का लक्षण बताते हुए कहा है कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अबाधित, इष्ट और प्रतिवादी की अपेक्षा असिद्ध हो वही साध्य है, इसके विरुद्ध साध्याभास हैं।

अनुमान में दृष्टान्त का होना अनिवार्य नहीं है फिर भी दृष्टान्त का प्रयोग प्रायः किया जाता है। अतः दृष्टान्त तथा दृष्टान्ताभास का जानना भी आवश्यक है। जिसमें साध्य और साधन का संबंध ज्ञान होता है, वह दृष्टान्त है। वैधर्म्य से यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् घटवत् यहां घट साधर्म्य से दृष्टान्त है। वैधर्म्य से – यथा आकाश। यहां घड़े और आकाश में साध्य साधन का सम्बंध अन्वय और व्यतिरेक से जाना जाता है।

दृष्टान्ताभास नौ साधर्म्य के तथा नौ वैधर्म्य के हैं–

साधर्म्य से – साध्यविकल, साधनविकल, उभयविकल, संदिग्धसाध्य, संदिग्ध साधन सन्दिग्धोभय, अनन्वय, अप्रदर्शित अन्वय तथा विपरीतान्वय ये नौ साधर्म्य दृष्टान्ताभास हैं तथा साध्याव्यावृत्त, साधनाव्यावृत्त, उभयान्यावृत्त, संदिग्ध साध्यव्यतिरेक, संदिग्धसाधन व्यतिरेक, संदिग्धोभय व्यतिरेक, अव्यतिरेक, अप्रदर्शित व्यतिरेक और व्यतिरेक ये नौ वैधर्म्य से दृष्टान्ताभास हैं। इस प्रकार अठारह दृष्टान्ताभास हैं।

आगम निर्णय प्रकरण

आगम निर्णय प्रकरण में आचार्य ने आगम को पृथक् प्रमाण सिद्ध करते हुए कहा है कि इसका अनुमान में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। क्योंकि दोनों के विषय भिन्न है। आप्त का उपदेश ही आगम है उसकी प्रमाणता उसमें उसके विषय का ज्ञान होने से औपचारिक रूप में ही है मुख्यतः तो विषय की प्रतिपत्ति को ही प्रमाणता है। शब्द केवल वक्ता की इच्छा में ही प्रमाण है, बाह्य अर्थ में नहीं,यह कहना युक्ति संगत नहीं हैं। आगम की प्रमाणता आप्त का उपदेश होने के कारण है, वह आप्त सर्वज्ञ वीतरागी और हितोपदेशी है अतः उसके वचन अविसंवादी होने से प्रमाण हैं।

शब्द को पौद्गलिक बताया है। कहा है – पुद्गलविवर्तः शब्दः इन्द्रियवेद्यत्वात् कलशादि संस्थानवत्। शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है और श्रोत्रेन्द्रिय प्राप्यकारी है वह प्रत्यासन्न विषय को ही ग्रहण करती है।

आगम के विषय पदार्थों का अनेकांत, परिणाम, मोक्षमार्ग तथा उसके विषय–जीव अजीव आदि सात तत्त्व हैं।

अनेकान्त और परिणाम

पदार्थ का एक साथ अनेकरूपत्व अनेकांत है और परिणाम क्रम से गुणपर्ययवद् द्रव्यं इत्यादि आगम तथा प्रत्यक्ष से भी उसकी प्रतिपत्ति होती है। अनेकान्तात्मक वस्तु का कथन करने के लिये स्यादस्त्येवानेकान्तात्मा, स्यान्नास्त्येवानेकान्तात्मा, स्यादस्तिनास्त्येवानेकान्तात्मा, स्यादवक्तव्यैव, स्यादस्त्यवक्तव्यैव, स्यान्नास्त्यवक्तव्यैव स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यैव इन सात भंगों का आश्रय लिया जाता है। नय विवक्षा से ही अनेकान्तात्मक वस्तु का कथन संभव है, अन्यथा नहीं।

मोक्षमार्ग

मोक्ष का मार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र तीनों है। न केवल सम्यक्दर्शन से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, न केवल सम्यक्ज्ञान से और न केवल सम्यक्चारित्र से अपितु तीनों की पूर्णता होने पर ही मोक्ष संभव है।

मोक्ष में जीव की स्थिति के संबंध में बौद्धों के –

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपैति नैवावनिं गच्छति नान्तरीक्षं स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्ति'

के द्वारा जीव की सर्वशून्यता वेदांतियों के ब्रह्मवेदे ब्रह्मैव भवति के द्वारा ब्रह्म से ऐक्य प्राप्त करने वैशेषिकों के द्वारा बुद्धि आदि सभी विशेष गुणों का उच्छेद होने तथा सांख्यों के द्वारा चिन्मयत्व आदि का निराकरण कर उसके स्वरूप का निम्न प्रकार निरूपण किया है।

तस्मान्निर्मूलनिर्मुक्त कर्मबन्धोऽतिनिर्मलः।
व्यावृत्तानुगताकारोऽनन्तमानंददृग्बलः।
निःशेषद्रव्यपर्याय साक्षात्करण भूषणः।
जीवो मुक्तिपदं प्राप्तः प्रपत्तव्यो मनीषिभिः।

अर्थात् मोक्ष में जीव कर्मबन्ध से सर्वथा मुक्त होकर अत्यन्त निर्मल,कर्मों से रहित, ज्ञानादि गुणों से युक्त अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, और अनन्त वीर्यवाला, अखिल द्रव्य की अखिल पर्यायों को जानने वाला हो जाता है।

विषय

मोक्षमार्ग के विषय जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इनका निर्णय होने पर ही किसी की मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति हो सकती है। जीव का निर्णय नहीं होने पर उसकी मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता, अजीव को जाने बिना भी जीव–अजीव के सम्बंध को न जानने से उसके वियोग की इच्छा नहीं हो सकती। इसी प्रकार आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष को जाने बिना भी आस्रव तथा बंध के कारणों को दूर करने तथा संवर और निर्जरा के द्वारा अनागत कर्मों को रोकने और आगत कर्मों के क्षय करने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

हेयोपादेय तत्त्व को जाने बिना मोक्षमार्ग में किसी की प्रवृत्ति नहीं हो सकती और उक्त विषयों को जाने बिना हेयोपादेय का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः मोक्षार्थी के लिए अनेकांत, परिणाम, मोक्षमार्ग और उनके विषय जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों का ज्ञान आवश्यक है।

प्रमाण निर्णय नामक इस लघुकाय ग्रंथ में आचार्य वादिराज सूरि ने जैन दर्शन का सार प्रस्तुत करते हुए गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ किया है। अतः मुमुक्षुओं के लिए यह ग्रंथ एक प्रकार का आलोक स्तम्भ ही है। यथा सम्भव विषय को स्पष्ट करते हुए ही मैंने अनुवाद करने का प्रयास किया है। फिर भी मेरी अल्पज्ञता के कारण कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो सुधी पाठक मुझे क्षमा करने तथा आवश्यक सुझाव देकर उपकृत करने का कष्ट करें।

डॉ० सूरजमुखी जैन
पूर्व प्राचार्य
अलका ३५, इमामबाड़ा
मुजफ्फरनगर

दिनाँक 13-7-2000

श्रीसरस्वत्यै नमो नमः।

श्रीमद्वादिराजसूरिविरचितः

श्री सरस्वती देवी को नमस्कार हो

श्री वादिराज सूरि विरचित

प्रमाणनिर्णयः

प्रमाणनिर्णय

मंगलाचरणम्।

श्रीवर्द्धमानमानम्य, जिनदेवं जगत्प्रभुम्।
सङ्क्षेपेण प्रमाणस्य निर्णयो वर्ण्यते मया।।1।।

संसार के प्रभु श्री वर्द्धमान जिनदेव को नमस्कार करके मेरे द्वारा संक्षेप में प्रमाण के निर्णय का वर्णन किया जाता है।।1।।

प्रमाणलक्षणनिर्णयः।

(प्रथम लक्षण निर्णय)

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं प्रमाणत्वाऽन्यथाऽनुपपत्तेः। इदमेव हि प्रमाणस्य प्रमाणत्वं यत्प्रमितिक्रियां प्रति साधकतमत्वेन करणत्वं।तच्च तस्य सम्यग्ज्ञानत्वे सत्येव भवति नाऽचेतनत्वे नाऽप्यसम्यग्ज्ञानत्वे।।1।।

सम्यग्ज्ञान प्रमाण है, सम्यग्ज्ञान के बिना प्रमाणत्व की उत्पत्ति नहीं होने से।प्रमाण की प्रमाणता यही है कि वह प्रमिति क्रिया के प्रति साधकतम होने के कारण उसका करण है।वह प्रमाणता उस करण के सम्यग्ज्ञान होने पर होती है, अचेतन वस्तु तथा मिथ्याज्ञान में प्रमाणता नहीं होती।।1।।

न[1]नु च तत्क्रियायामस्त्येवाचेतनस्यापीन्द्रियलिङ्गादेः[2] करणत्वं, चक्षुषा प्रमीयते धूमादिना प्रमीयत इति।तत्राऽपि प्रमितिक्रियाकरणत्वस्य प्रसिद्धेरिति चेत्। न[3]नु च प्रमितिर्नामाव्युत्प[4]त्त्यादिव्यवच्छित्तिरेव। सत्यामेव तस्यां चेतनस्येतरस्य वा प्रमितत्वोपपत्तेः।न च तत्राऽचेतनस्य करणत्वमविरोधात्।

---

[1] "ननु च" शब्दोऽत्र विरुद्धोक्तौ।नैयायिकमतमिदम्।

[2] इन्द्रियलिंगादावपि।

[3] "प्रश्नावधारणानुज्ञाऽनुनयामंत्रणे ननु" इत्यमरः।

[4] अनध्यवसायः।

विरोधिनो हि कुतश्चित्कस्यचिद् व्यवच्छित्ति., प्रकाशादिवान्धकारस्य। नह्यचेतन स्याप्यव्युत्पत्त्यादिनाकश्चिदपि विरोधे यतस्ततोऽपि तद्व्यवच्छित्तिः परिकल्प्येत, सम्यग्ज्ञानात्तु तद्व्यवच्छित्तिरुपपन्नैव तस्य व्यवसायात्मकत्वात्। व्यवसायस्य चाऽव्युत्पत्त्यादिना विरोधप्रसिद्धेः। न हि व्यवसितमेव किञ्चिदव्युत्पन्न[1]भावेकित[2] विपर्यस्तं वा भवति।तदभाव एव तद्भावस्योपपत्तेः। अतः सम्यग्ज्ञानस्यैव तत्र करणत्वम्।अचेतनस्य त्विन्द्रियलिङ्गादेस्तत्र करणत्वं गवाक्षादेरिवोपचारादेव। उपचारश्च तद्व्यवच्छित्तौ सम्यग्ज्ञानस्येन्द्रियादिसहायतया प्रवृत्तेः। तत्राऽचेतनस्य तत्र करणत्वं मुख्यवृत्त्या सम्भवति,नाऽप्यसम्यग्ज्ञानस्य ।।2।।

नैयायिक कहते हैं कि प्रमिति क्रिया में अचेतन इन्द्रिय तथा अनुमान आदि भी करण हैं, चक्षु से जाना जाता है, धुएं से जाना जाता है इस प्रकार इन्द्रिय तथा अनुमान आदि में भी प्रमिति क्रिया के करण होने की प्रसिद्धि होने से।जैनाचार्य कहते हैं अनध्यवसाय आदि (संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय) का निवारण ही प्रमिति है, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय का निवारण होने पर ही चेतन या अचेतन कोई भी प्रमिति क्रिया का करण हो सकता है।अचेतन करण नहीं हो सकता क्योंकि वह संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय का विरोधी नहीं है।किसी विरोधी के द्वारा ही किसी का विनाश या अभाव हो सकता है, जैसे प्रकाश से अंधकार का, क्योंकि प्रकाश अंधकार का विरोधी है।अचेतन का संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से कोई विरोध नहीं है, जिससे अचेतन से भी उनके विनाश की कल्पना की जा सके।सम्यग्ज्ञान से संशयादि का विनाश होता ही है, क्योंकि सम्यग्ज्ञान निश्चयात्मक होता है।व्यवसाय (निश्चय) का अनध्यवसाय आदि से विरोध प्रसिद्ध ही है। कोई भी निश्चय संशय, विपर्यय या अनध्यवसाय रूप नहीं होता है, संशयादि के अभाव में ही निश्चय की उत्पत्ति होने के कारण। अतः सम्यग्ज्ञान ही प्रमितिक्रिया का करण है।अचेतन इन्द्रिय अनुमान आदि प्रमिति क्रिया के प्रति खिड़की आदि के समान उपचार से ही करण हैं।सम्यग्ज्ञान इन्द्रिय आदि की सहायता से संशय आदि को दूर करता है, यही उपचार है। अतः प्रमिति क्रिया का करण मुख्यरूप से न तो इन्द्रिय, लिंग आदि हैं न मिथ्या ज्ञान।।2।।

न हि तद्व्यापारपरामृष्टस्याऽव्युत्पत्त्यादिविकलतया [3]भावस्य प्रमितत्वमुपपन्नं, तदसम्यक्त्वस्यैव तथासत्यभावापत्तेः। अव्युत्पत्त्यादिप्रत्यनीकस्य स्वभावस्यैव सम्यगर्थत्वात्। तस्य वा सम्यग्ज्ञानेऽपि भावे वाच[4]निकमेव तस्यासम्यग्ज्ञानत्वं भवेन्न वास्त[5]वम्।ततः सम्यग्ज्ञानादेव व्यवसायात्मनस्तद्व्य —वच्छित्तिः।।3।।

प्रमिति क्रिया से परामृष्ट पदार्थ ही अव्युत्पत्ति आदि से रहित होने के कारण प्रमाण है ऐसा भी नहीं है, ऐसा होने पर असम्यक्त्व (मिथ्यात्व) का ही अभाव हो जाएगा।

---

[1] अनध्यवसितम्।
[2] शङ्कितम्।
[3] पदार्थस्य।
[4] वाङ्मात्रमेव।
[5] सत्यं।

क्योंकि सम्यक्त्व तो अव्युत्पत्ति आदि से विपरीत स्वभाव वाला ही होता है।मिथ्यात्व को भी अनध्यवसाय आदि से विपरीत स्वभाव वाला होने पर वह कथन मात्र के लिए ही मिथ्याज्ञान होगा, वास्तव में नहीं।अतः निश्चयात्मक सम्यग्ज्ञान से ही अनध्यवसाय आदि का निराकरण होता है।।3।।

यद्येषा न व्यवसायरूपा[1] न प्रमाणस्य सम्यग्ज्ञानात्मनः फलं[2] भवेत्, व्यवसायरूपत्वे सत्येव तदुपपत्तेः।अत [3]एवोक्तं "प्रमाणस्य साक्षात्फलसिद्धिः[4] स्वार्थविनिश्चय" इति।।4।।

यदि प्रमिति व्यवसाय रूप न हो तो सम्यग्ज्ञान रूपी प्रमाण का फल (हान विनाश तथा हानोपादान, उपेक्षा बुद्धि रूपी) भी न हो।प्रमिति क्रिया के व्यवसाय रूप होने पर ही उक्त फल की उत्पत्ति होने के कारण इसलिए कहा है कि प्रमाण की साक्षात् फलसिद्धि अपना और अर्थ का निश्चय है।।4।।

व्यवसायरूपा चेत्तर्हि व्यवसायात्तद्व्यवच्छित्तिरिति तद्व्यवच्छित्तेरेव तद्व्यवच्छित्तिरित्युक्तं भवति, तच्चानुपपन्नमेव।भेदाऽभावे क्रियाकारकभावस्यानुपपत्तेरिति चेन्न भेदस्याऽपि भावात्।।5।।

शंकाकार कहते हैं कि यदि प्रमिति को व्यवसायरूपा कहते हो तो व्यवसाय से अव्युत्पत्ति आदि का विनाश और अव्युत्पत्ति आदि का विनाश होने पर अव्यवसाय का विनाश मानना पड़ेगा, किंतु ऐसा नहीं होता।भेद के अभाव में क्रिया कारक भाव की उत्पत्ति नहीं होने से।आचार्य कहते हैं, यह कहना ठीक नहीं है भेद के भी होने से।।5।।

द्विरूपं हि व्यवसायस्व[5]भावसंवेदनं, प्रवृत्तिरूपं निवृत्तिरूपं चेति। नहीदमव्युत्पत्त्यादि निवृत्तिरूपमेव, नीरूपत्वापत्तेः। नाऽपि प्रवृत्तिरूपमेव, स्वरूपादिनेवाऽव्युत्पत्त्यादिरूपेणाऽपि तद्रूपत्वापत्तेः। न[6] चैवमेकान्ततो निवृत्तिरूपतया प्रवृत्तिरूपतया च तस्याऽप्रवेदनात्[7]। अत एवोभयस्वभावे तस्मिन् प्रवृत्तिरूपतया साधकतमस्याव्युत्पत्त्यादिनिवृत्तिरूपतया क्रिया भावस्य भावान्न क्रियाकारकभावस्याऽनुपपत्तिः।।6।।

शंकाकार पुनः कहते हैं—आत्मसंवेदनरूप व्यवसाय दो प्रकार का हो सकता है प्रवृत्ति रूप और निवृत्ति रूप।वह अनध्यवसाय आदि की निवृत्ति रूप नहीं हो सकता, निवृत्ति

---

[1] "सहीति" शिष्टांशः।
[2] अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाबुद्धयः फलं।
[3] जैनेनेति शेषः
[4] ज्ञप्तिः।
[5] आत्म।
[6] तथास्त्विति चेत्।
[7] अनिश्चयात्।

रूप न होने पर उसके नीरूपत्व की प्राप्ति होने से। प्रवृत्तिरूप भी नहीं है, स्वरूपादि के समान अव्युत्पत्ति आदि को भी प्रवृत्तिरूपत्व की प्राप्ति होने से। आचार्य कहते हैं ऐसा नहीं है, एकांत रूप से निवृत्ति रूप से तथा प्रवृत्ति रूप से उसका निश्चय नहीं होने से। अतः उसके उभय स्वभाव होने पर प्रवृत्तिरूप से साधकतम तथा अव्युत्पत्त्यादि की निवृत्ति रूप से क्रियाभाव के होने से क्रिया कारक भाव की अनुत्पत्ति नहीं है।।6।।

कथमेवमपि प्रमितिक्रियायां तत्सहभाविनः संवेदनस्य साधकतमत्वमितिचेन्न। प्रागपि[1] भावात्, तत एव संवेदनात्प्रागपि विषयान्तरे प्रमितिक्रियानिष्पत्तेः।अन्यदेव[2] तत्संवेदनं विषयभेदे तद्भेदस्याऽवश्यंभावादिति चेत्। न।युगपदप्येवं प्रसङ्गात्, तथा[3] च कथं सेनावनादिप्रतिपत्तिः।।7।।

विपक्षी पुनः कहते हैं--ऐसा होने पर भी प्रमितिक्रिया में प्रमिति के साथ होने वाले संवेदन को साधकतम कैसे कहा जा सकता है।आचार्य कहते हैं यह कहना ठीक नहीं है, प्रमिति से पूर्व भी संवेदन के होने से।उसी संवेदन से पहले भी दूसरे विषय में प्रमिति क्रिया के सम्पन्न होने से।विपक्षी कहते हैं यह संवेदन अन्य ही होगा, विषय का भेद होने पर संवेदन में भी भेद अवश्य होने से।आचार्य कहते हैं ऐसा नहीं है, एक साथ भी ऐसा प्रसंग होने से।फिर विषय का भेद होने पर संवेदन में भेद होने पर सेना, वन आदि का ज्ञान कैसे होगा? ।।7।।

न हि करितुरगादेर्धवखदिरादेश्चैकसंवेदनविषयत्वाभावे तत्प्रतिपत्तिः संभवति। युगपद्विषयभेदेऽपि एकमेव संवेदनं, तथा तस्यानुभवादिति चेन्न[4]। क्रमेणापि तथा तदनुभवस्याविशेषात्।[5]परापरसमयव्याप्तेरनुभवगम्यत्वे कुतो न [6]तस्याऽऽजन्ममरणावधिरप्यनुभव इति चेन्न।यावच्छक्तिकमेवानुभवस्य तत्र व्यापारात्।अन्यथा वर्त्तमानेऽपि वस्तुनि सर्वत्राऽपि तस्य व्यापारोपनिपातात्।।8।।

हाथी घोडा आदि तथा धव खदिर आदि के एक संवेदन का विषय नहीं होने पर एक संवेदन से उनका ज्ञान नहीं होगा।विपक्षी कहते हैं युगपत् विषय के भिन्न होने पर भी संवेदन एक ही है ऐसा उसका अनुभव होने से।आचार्य कहते हैं कि ऐसा नहीं है, क्रम से भी एक संवेदन का अनुभव युगपत् के समान ही होने से।विपक्षी कहते हैं--पहले और बाद में रहने वाले संवेदन का विषय भेद होने पर भी एकरूप अनुभव होने पर उससे जन्म से मृत्यु पर्यंत का अनुभव क्यों नहीं होता, आचार्य कहते हैं यह कहना ठीक नहीं है।शक्ति के अनुसार ही अनुभव का विषय में व्यापार होने से अन्यथा वर्तमान वस्तु में भी सर्वत्र उसके व्यापार का प्रसंग आयेगा।।8।।

---

[1] प्रमितेः प्रागपि संवेदनस्य भावात्।
[2] तत्पूर्वं विषयांतरे प्रमितिक्रियामुपजनयति।
[3] युगपदिति विषयभेदात्संवेदनभेदे सति।
[4] जैनः।
[5] अन्यः।
[6] विषयभेदेऽप्येकत्वप्रकारेण।

कथमेवमप्यन्वितज्ञानाविष्वग्भावे तत्तत्समयभाविन्योऽर्थप्रमितयो व्य[1]तिभिद्यन्ते इति चेत्, युगपद्भाविन्यः कथं?तदानीमेकैव करितुरगादिविषया प्रमितिरपीति चेत्र, तस्यास्तुरगोन्मुखस्वभावत्वे तद्विषयतया नरवारणादेरपि तुरगरूपत्वापत्तेः। अतत्स्वभावत्वे तया तुरगस्याऽव्यवस्थापनप्रसङ्गात्। नरवारणादेरपि तत्तदुन्मुखयस्वभावयैव तया विषयीकरणं न तुरगोन्मुखस्वभावयैव यदयं प्रसङ्गः इति चेत्, सिद्धं तर्हि युगपत्प्रमितेर्नानात्वं, औन्मुख्यनानात्वे तद्रूपतया तत्राऽपि नानात्वस्योपपत्तेः। अतो युगपदिव क्रमेणाऽपि अन्वितज्ञानाविष्वग्भावेऽपि [2]व्यतिभेदोपपत्तेः। तत्र [3]तत्र प्रमितौ तस्यैवान्वयिनः संवेदनस्य साधकतमत्वं, नाचेतनस्येन्द्रियलिङ्गादेः, नाप्यसम्यग्ज्ञानस्याध्यवसायादेरिति स्थितम्।।9।।

शंकाकार कहते हैं ऐसा होने पर भी संबद्ध ज्ञान के सर्वव्यापी न होने पर भिन्न भिन्न समय में होने वाली अर्थप्रमितियां परस्पर भिन्न कैसे होती हैं।आचार्य कहते हैं फिर युगपत् होने वाली अर्थप्रमितियां कैसे भिन्न होती हैं? युगपत् करि तुरग आदि को विषय करने वाली प्रमिति भी एक ही है, यह भी नहीं कह सकते।उस प्रमिति का तुरगोन्मुख स्वभाव होने पर उसको विषय करने वाली प्रमिति के कारण मनुष्य हाथी आदि को भी तुरग रूपत्व का प्रसंग होने से।तुरगोन्मुख स्वभाव नहीं होने पर तुरग का ही व्यवस्थापन नहीं होने से।यदि यह कहो कि नर वारण आदि का भी उस स्वभाव वाली प्रमिति के द्वारा ही उनका उस प्रकार विषयी करण होता है, तुरगोन्मुख स्वभाव वाली प्रमिति के द्वारा नहीं, जिससे उक्त आपत्ति आये तब तो एक साथ प्रमिति की भिन्नता सिद्ध ही हो जाती है।उन्मुखता के भिन्न होने पर उसी प्रकार प्रमितियों की भी भिन्नता होने से।अतः युगपत् के समान क्रम से भी संबद्ध ज्ञान के सर्वगत होने पर भी प्रमितियों में भेद होने से।पूर्वोत्तर समय में होने वाली प्रमिति में उसी से संबद्ध संवेदन को साधकतमत्व होता है अचेतन इन्द्रिय लिंगादि को नहीं, न मिथ्या ज्ञान और अनध्यवसाय आदि को।।9।।

तस्य संवेदनस्य स्वरूपमर्थश्चेति द्विविधो विषयः।तत्रोभयत्रापि तत एव प्रमितेः।[4]कः पुनरर्थो नाम यत्र ततः प्रमितिरिति चेत्, संवेद[5]नबहिर्भाविनीलादिरेव, यद्यसौ प्रकाशते न कथमस्ति?व्योमकुसुमादिवत् प्रकाशते चेत्, न संवेदनबहिर्भाव-स्तस्य प्रकाशस्यैव संवेदनत्वेन प्रसिद्धेऽपि संवेदने प्रतिपत्तेः। संवेदनं प्रकाशरूपमेव, नीलादिस्तु कदाचिदप्रका[6]शोऽपि, ततस्तस्यार्थत्वं प्रकाशबहिर्भावात् इति चेत्।अप्रकाशावस्थस्य यदि न तस्य प्रतिपत्तिः कथमस्तित्वमिति-प्रसङ्गात्। प्रतिपत्तिश्चेन्न प्रकाशवैकल्यं, प्रकाशवत्त्वादेव प्रतिपन्नतोपपत्तेः। ततो नीलादेः प्रकाशबहिर्भावेन नार्थत्वमिति-कथं तस्य संवेदनादन्यतः प्रतिपत्तिः?।।10।।

---

[1] परस्परं भिद्यंते।
[2] प्रमितानां।
[3] पूर्वोत्तरसमये।
[4] ज्ञानाद्वैतवादी सौगतो वक्ति।प्रमितेर्भिन्नः कः पुनरर्थो नामेति प्रश्नस्याशयः।
[5] जैनः।
[6] भवतीति शेषः।

उस संवेदन (ज्ञान) का अपना स्वरूप और अर्थ दो प्रकार के विषय हैं।दोनों में ही उस ज्ञान से ही प्रमिति होने से।ज्ञानाद्वैतवादी सौगत कहते हैं--प्रमिति से भिन्न अर्थ क्या है? जिसकी संवेदन से प्रमिति होती है।आचार्य कहते हैं--ज्ञान से पृथक् रहने वाले नीलादि ही अर्थ हैं।सौगत कहते हैं—यदि वह प्रकाशित नहीं करता तो उसका अस्तित्व कैसे है यदि आकाश कुसुम के समान प्रकाशित करता है तो वह संवेदन से पृथक् नहीं है, उस प्रकाश को ही संवेदनरूप से प्रसिद्ध संवेदन में भी प्रतिपत्ति होने से।यदि यह कहो कि संवेदन तो प्रकाश रूप ही है नीलादि कभी अप्रकाश रूप भी होते हैं अतः प्रकाश से बहिर्भाव होने के कारण अर्थत्व है तो अप्रकाशावस्था में यदि उसकी प्रतिपत्ति नहीं होती तो उसका अस्तित्व कैसे है? अतिप्रसंग होने से।यदि प्रतिपत्ति होती है तो प्रकाश से रहितपना नहीं होगा, प्रकाशवान होने से ही प्रतिपत्ति होने के कारण।अतः प्रकाश से रहित होने के कारण नीलादि अर्थ नहीं हैं।फिर संवेदन से पृथक् उसकी प्रतिपत्ति कैसे होती है? ।।10।।

स्वत एव तदुपपत्तेरिति चेत्।सत्यमस्ति प्रकाशो नीलादेः स यदि स्वत एव भवति तस्य बोधरूपत्वं।न चैवं, परत एव तद्भावात्।ततोऽपि भवतस्तस्य बोधत्वमेव रूपमिति चेन्न, बोध्यत्वस्यैव [1]तद्रूपत्वात्।।11।।

यदि स्वतः ही उसको प्रतिपत्ति होने से कहते हो तो ठीक है नीलादि का प्रकाश यदि स्वतः ही होता है तब तो वह ज्ञानरूप ही हो जाता है।आचार्य कहते हैं कि स्वतः प्रकाश नहीं होता परतः ही उसका प्रकाश होने से।सौगत कहते हैं परतः प्रकाश होने पर भी वह बोधरूप ही है।आचार्य कहते हैं, यह कहना ठीक नहीं है परतः प्रकाशरूप ज्ञेय ही हो सकता है।।11।।

किं पुनरिदं बोध्यत्वमर्थस्य, किं पुनर्ज्ञानस्यापि बोधकत्वं? परनिरपेक्षम-परोक्षत्वमिति चेत्।अर्थस्यापि परापेक्षं तदेव बोध्यत्वं किं न स्यात्।[2] परस्यैवार्थप्रतीतिवेलायामप्रतिवेदनादिति चेन्न।नी[3]लं वेद्मि पीतं वेद्मीति नीला-देरन्यस्यैव तद्वेदनस्यैवानुभवनात्।।12।।

अर्थ का बोध्यत्व क्या है? ज्ञान का बोधकत्व क्या है? पर की अपेक्षा न होने के कारण ज्ञान प्रत्यक्ष है, यदि ऐसा कहते हो तो पर की अपेक्षा होने के कारण अर्थ ही बोध्य क्यों नहीं हो जायगा।अर्थ प्रतीति के समय अर्थ से भिन्न पर का ही वेदन न होने से वह बोध्य नहीं है, यह कहना भी ठीक नहीं है, नील को जानता हूँ, पीत को जानता हूँ, इस प्रकार नीलादि से भिन्न उसके ज्ञान का ही अनुभव होने से।।12।।

अनन्यत्वे हि नीलमित्येव वेद्मीत्येव वा स्यान्नोभयमस्ति चोभयं ततोऽनुभवप्रसिद्धत्वान्नीलादेस्तत्संवेदनान्यत्वस्य कथमप्रतीतिविकल्प एवायं कश्चिन्नीलं वेद्मीति नानुभवो न च ततः क्वचिदन्यत्वनिश्चयो

---

[1] परतो भवत्प्रकाशरूपत्वात्।

[2] अर्थाद्विश्वरयैव।

[3] जैनो वक्ति।

वासनामात्रनिबन्धनत्वेन तस्य विप्लव[1]त्वात्, [2]अन्यथा केशादेरपि तद्वेदनस्य ततस्तत्प्रसङ्गात् ।केशादिकं वेद्मीति तैमिरिकस्य तत्रापि विकल्पप्रादुर्भावात् [3]भवतु इति चेन्न ।केशादेर्बहिरभा[4]वात् । बहिरसत एव ततस्तद्वेदनस्यान्यत्वमिति चेन्न ।तदप्रतिभासे तत इति तद्वेदनस्येत्यप्यनुपपत्तेः ।न [5]चासतः प्रतिभास इति चेन्न ।विभ्रमसामर्थ्यात् असतोऽपि तदुपपत्तेः अन्यथा विकल्पे नीलतद्वेदनान्यत्वस्याप्यप्रतिभासोत्पत्तेः, असत्त्वाविशेषत् ।।13।।

अभिन्न होने पर नील इतना ही वेद्मि (जानता हूं) इतना ही अनुभव होगा, दोनों का नहीं, दोनों का अनुभव होता हैं, अतः अनुभव से प्रसिद्धि होने के कारण नीलादि की उसके ज्ञान से भिन्न की प्रतीति कैसे हो सकती है ।सौगत कहते हैं यह विकल्प ही है, अनुभव नहीं है विकल्प से अन्यत्व का निश्चय नहीं हो सकता , वासनामात्र के कारण होने वाला विकल्प व्यभिचारी होने के कारण, अन्यथा केशादि से उसके ज्ञान को भी विकल्प से अन्यत्व की प्राप्ति हो जायगी ।केशादि को जानता हूं इस प्रकार तैमिरिक (नेत्ररोग वाले) को यहां भी विकल्प की उत्पत्ति होने से।

केशादि से उसके ज्ञान को अन्यत्व का प्रसंग होता है तो हो, यह कहना ठीक नहीं है ।केशादि का बाहर अभाव होने से ।बाहर न होने पर ही उससे उसके ज्ञान की भिन्नता है, यह भी नहीं कह सकते ।केशादि का प्रतिभास नहीं होने पर केशादि से उसके ज्ञान को यह भी नहीं कहा जा सकता ।असत का प्रतिभास नहीं होता, ऐसा नहीं कह सकते ।विभ्रम के कारण असत का भी प्रतिभास होने से, प्रतिभास नहीं मानने पर नील तथा उसके ज्ञान के अन्यत्व का भी प्रतिभास नहीं होगा, दोनों में असत्व समान होने से।।13।।

सत्यम् ।विकल्पस्याऽपि न तत्प्रतिभा[6]सित्वं स्वसंविन्मात्रपर्यवसितत्वात्, विक[7]ल्पान्तरमेव तु तत्र तत्प्रतिभासित्वमवकल्पयतीति चेन्न। तेनाऽप्य[8]सतस्तस्यानवकल्पनात्। पुनर्विकल्पान्तरात्तस्य तदवकल्पकत्वे चानवस्थापत्त्या नीलतद्वेदनविवेकविकल्प एव न भवेत् ।[9]न चैवं, तस्य तस्याप्रतीतेस्ततो न सङ्गतमिदं, विकल्पो ग्राह्यग्राहकोल्लेखेनोत्पत्तिवान्, सोऽपिस्वरूपे ग्राह्यग्राहकरूपरहित एव [10]अपरेण तथा व्यवस्थाप्यत इति।।14।।

सौगत कहते हैं द्वितीय विकल्प ठीक है विकल्प भी उसका प्रतिभास नहीं करता उसके स्वसंवेदन तक ही सीमित रहने से ।विकल्पान्तर ही विकल्प में प्रतिभासित्व की

---

[1] व्यभिचारात्।
[2] विकल्पात् क्वचिदन्यत्वनिश्चयः।
[3] अन्यत्वप्रसंगो भवतु।
[4] असत्त्वात्।
[5] असतो ऽप्रतिभासो वा प्रतिभास इति विकल्पयन्नाह।
[6] द्वितीयविकल्पो घटते सौगतविशेषे।
[7] कर्तृतापन्नं।
[8] स्वस्मिन्नविद्यमानस्य।
[9] तदन्यत्वविकल्पाभावो न ध।
[10] अन्यविकल्पेन विकल्पान्तरेणेति यावत्।

कल्पना करा देता है, यह कहना भी ठीक नहीं है।विकल्पान्तर के भी असत होने के कारण उससे विकल्प में प्रतिभास पनः की कल्पना नहीं की जा सकती।पुनः दूसरे विकल्पान्तर से प्रथम विकल्पान्तर को उस प्रकार मानने पर अनवस्था होने के कारण नील और उसके वेदन के विवेक का विकल्प ही नहीं होगा।किंतु ऐसा नहीं है, नील और उसके वेदन की प्रतीति होने से।अतः यह कहना तर्क संगत नहीं है कि ग्राह्य ग्राहक के समान विकल्प उत्पन्न होता है किंतु वह भी ग्राह्य, ग्राहक रूप से रहित ही है, दूसरे विकल्प से उसमें ग्राह्य ग्राहक की व्यवस्था की जाती है।।14।।

ततो न केशादेरपि तद्वेदनस्यानर्थान्तरत्वं यततन्निदर्शनेन नीलादेरपि तद्वेदनस्य तत्त्व[1]मवकल्प्येत।ततो बहिरेव तद्वेदनान्नीलादिबहिरर्थः।तत इदमप्यनुपपन्नम्।

[2]संवेदनेन बाह्यत्व[3]मतोऽर्थस्य न सिद्धयति।
संवेदनाद्बहिर्भावे स एव तु न सिद्धयति।।15।।

अतः केशादि उसके ज्ञान से अभिन्न नहीं है, जिससे उसको दिखाकर नीलादि को भी उसके ज्ञान से अभिन्न की कल्पना की जाय।अतः नीलादि बहिरर्थ उसके ज्ञान से पृथक् ही हैं।अतः यह कहना भी उपयुक्त नहीं है।

संवेदन होने के कारण संवेदन से अर्थ को बाह्यत्व नहीं सिद्ध होता।संवेदन से बाहर होने पर तो अर्थ की ही सिद्धि नहीं होती।।15।।

इति संवेदनेनैव नीलादेस्तद्बहिर्भावस्योक्त[4]या नीत्या व्यवस्थापनात्।।16।।

इस प्रकार संवेदन से ही नीलादि की संवेदन से बाह्य होने की उक्त नीति से व्यवस्था होने से।।16।।

यदि संवेदनाद्बहिरेव नीलादिः क[5]थं तस्य वस्तुसत्त्वं? तैमिरिककेशादिवदिति चेत्, तत्केशादेपि न संवेदनबहिर्भावेनावस्तुसत्त्वमपि तु बाधकत्वात्।न चेदं प्रसिद्धे नीलवस्त्रादावस्तीति।वस्तु सन्नेवाऽयं कर्तव्यश्चवैमभ्युपगमः।अन्यथा नीलादेर्बहिरूपत्वेनेव संवेदनस्यापि प्रतिभासमानत्वेन तैमिरिककेशादिना साधर्म्यादवस्तुसत्त्वापत्तेः। अतः संवेदनबहिर्भावादबाधकत्वेन वस्तुसत्त्वाच्चार्थ एवनीलादिरवगन्तव्यः।।17।।

---

[1] अन्यत्वं।
[2] हेतुना।
[3] न्यायात्।
[4] तैमिरिककेशादियत्।
[5] परमार्थसत्।

पुनः सौगत कहते हैं कि यदि नीलादि संवेदन से बाह्य ही हैं तो उनकी वस्तुसत्ता कैसे है तैमिरिक केशादि के समान।यदि यह कहते हो तो तैमिरिक केशादि को भी संवेदन से बाह्य होने के कारण अवस्तुत्व नहीं है अपितु बाधकत्व होने के कारण अवस्तुत्व है।प्रसिद्ध नीलवस्त्र आदि में यह बाधकत्व नहीं है।वस्तु के सत् होने पर ही ऐसा मानना चाहिये। अन्यथा नीलादि बहि रूप के समान संवेदन के भी प्रतिभासमान होने के कारण तैमिरिक केश आदि के समानता होने के कारण अनरितत्व का प्रसंग आयेगा।अतः संवेदन से बाह्य होने के कारण बाधकत्व न होने के कारण वस्तु की सत्ता होने से नीलादि अर्थ ही हैं, ऐसा जानना चाहिये।।17।।

यत्पुनरेतन्मतं। यथैव हि ग्राहकाकारः स्वरूपेण[1]परोक्षो न ग्राहकान्तरभावात्। तथा तेन समानकालोऽपि नीलादिक इति।तत्र [2]भवतो यदि तादृशो नीलादिरप्रतिपत्तिविषयः कथं यथैवेत्यादिवचनं प्रतिपाद्य[3]वत्। प्रतिपत्तिविषयश्चेत्तर्हि कथं स्वरूपेणाऽपरोक्षत्वं, तस्य भव[4]त्प्रतिपत्तिविषयतया परत एव तदुपपत्तेः।यदप्येतदपरं यथा चक्षुरादिकात् ग्रा[5]हकाकारः, तथा तत्समानकालो ग्राह्याकारोपीति तत्राऽपि समासमवायिना[6] चक्षुरादेर्बहुत्वात् तज्जन्मनो विकसितकुबलयदलनीलच्छायानुवर्तिनो नर्त्तकीरूपस्यापि बहुत्वेन भवितव्यम्। न चैवं, तद्रूपैकत्वे सर्वेषां तेषामेकवाक्यताप्रतिपत्तेः।व्यामोहादेव कुतश्चित्तत्र तेषामेकवाक्यत्वं, वस्तुतो नानैव तद्रूपमितिचेत्। कोशपानादेतत्प्रत्येतव्यं न प्रमाणतः। कुतश्चिदपि तदभावात् कुतश्चेदमवगतं ग्राह्याकारोऽपि चक्षुरादेरिति ग्राहकाकारवत्।।18।।

आपका जो यह मत है कि जैसे ग्राहकाकार स्वरूप से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, उस प्रकार ग्राहकान्तर से नहीं, उसी प्रकार नीलादि भी।आचार्य कहते हैं कि यदि आपकी दृष्टि में नीलादि ज्ञान के विषय नहीं है तो फिर यथैव इत्यादि वचन से उसका प्रतिपादन कैसे किया जा सकता है, यदि प्रतिपत्ति के विषय हैं तो फिर वे स्वरूप से प्रत्यक्ष कैसे हैं? उसको आपके ज्ञान का विषय होने के कारण परतः ही ज्ञान होने से।जो दूसरे यह कहते हैं कि जैसे चक्षु आदि से ज्ञान में ग्राहकाकार ज्ञात होता है, उसी प्रकार उसी समय ग्राह्याकार भी तो सभा में स्थित पुरूषों के चक्षु आदि के बहुत होने से उससे उत्पन्न होने वाले विकसित कमल पत्र की नील छाया का अनुकरण करने वाले नर्तकी के रूप को भी बहुत्व होना चाहिये, किंतु ऐसा नहीं है, उसके रूप के एकत्व के संबंध में उन सभी पुरूषों के एक रूपता का कथन होने से।किसी अज्ञान से ही उनका उसमें एकरूपता का कथन है, वास्तव में नहीं, वास्तव में तो उनका रूप नाना ही है, यदि यह कहो तो कोशपान (मदिरापान) से ही ऐसा जाना जाता है, प्रमाण से नहीं।कहीं भी उसका अभाव होने से।और

---

[1] ज्ञायत इति शेषः।
[2] तव।
[3] प्रतिपाद्यार्थोऽस्यास्तीति प्रतिपाद्यवत्।
[4] त्वज्ज्ञानविषयतया।
[5] ज्ञाने ज्ञायते।
[6] पुरुषाणामिति शेषः।

वादिराज की गुरू परम्परा मठाधीशों की थी,जिनमें दान लिया और दिया जाता था।ये स्वयं जिनमंदिरों का निर्माण कराते, जीर्णोद्धार कराते एवं अन्य मुनियों के लिये आहारदान की व्यवस्था करते थे।शक सं. ९४२२ में उत्कीर्ण ४६५ संख्यक अभिलेख में बताया गया है कि षट्दर्शन के अध्येता श्रीपाल देव के स्वर्गवासी होने पर उनके शिष्य वादिराज ने एकवादिमल्ल नाम का जिनालय बनवाया था और उसके पूजन एवं मुनियों के आहारदान हेतु भूमिदान दिया था।

वादिराज सूरि के विषय में कहा जाता है कि इन्हें कुष्ठ रोग हो गया था।एक बार राजसभा में इसकी चर्चा हुई तो इनके एक अनन्य भक्त ने गुरू के अपवाद के भय से झूठ ही कह दिया कि उन्हें कोई रोग नहीं है,इस पर वाद विवाद हुआ।अन्त में राजा ने स्वयं ही परीक्षा करने का निश्चय किया।भक्त घबराया हुआ वादिराज के पास पहुंचा और उन्हें समस्त घटना कह सुनायी।गुरू ने भक्त को आश्वासन देते हुए कहा–धर्म के प्रभाव से सब ठीक होगा,चिन्ता न करो।तभी वादिराज सूरि ने एकीभाव स्तोत्र की रचना की और इनका कुष्ठरोग दूर हो गया।

स्थितिकाल

वादिराज ने अपने ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रचनाकाल का निर्देश किया है। ये प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र के रचयिता प्रभाचन्द्र के समकालीन और अकलंकदेव के ग्रन्थों के व्याख्याता हैं।कहा जाता है कि चालुक्य नरेश जयसिंह की राजसभा में इनका बड़ा सम्मान था एवं ये प्रख्यात वादी माने जाते थे।जयसिंह (प्रथम) दक्षिण के सोलंकी वंश के प्रसिद्ध महाराजा थे।इनके राज्य काल के कितने ही दानपत्र तथा अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें सबसे पहला अभिलेख शक संवत् ६३८ (ई. सन् १०१६) का है और सबसे अन्तिम शक संवत् ६६४ (ई. सन् १०४२) का है।अतः इनका राज्यकाल सन् १०१६ से १०४२ ई. तक है।

वादिराज ने अपना पार्श्वनाथ चरित जयसिंह देव की राजधानी में रहते हुए शक सं. ९४७ (ई. सन् १०२५) कार्तिक शुक्ल तृतीया को पूर्ण किया था।[1]

यशोधरचरित के तृतीय सर्ग के अन्तिम पद्य और चतुर्थ सर्ग के उपान्त्य पद्य में कवि ने महाराज जयसिंह देव का उल्लेख किया है,जिससे विदित होता है कि यशोधरचरित की रचना भी कवि ने जयसिंह देव के समय में ही की है।

वादिराजसूरि जगदेकमल्ल द्वारा सम्मानित हुए थे,जिनका समय अनुमानतः सन् १०१० से १०३२ के मध्य का है।अतः वादिराज सूरि का समय १०१० ई.सन् से १०६५ ई० सन् तक का होना चाहिये।

---

1. शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने।मासे कार्तिक नाम्नि बुद्धि महिते शुद्धे तृतीया दिने।सिंहे याति जयादिके वसुमती जैनी कथेयं मया।निष्पत्ति गमिता सती भवतु वः कल्याणनिष्पत्तये।पा. च. प्र. ५ पद्य

के प्रध्वंस रूप होने से अभाव स्वभाव होने के कारण विरोध है।भाव और अभाव का परस्पर विरोध होने से विरोध है।ज्ञान और उसकी प्रमिति में इस प्रकार भाव और अभावरूपत्व नहीं है, जिससे उनमें एक दूसरे का विरोध होने से विरोध की कल्पना की जाय।अतः विरोध के कारण ज्ञान अपने को नहीं जानता यह नहीं कहा जा सकता। ज्ञान को अपने को न जानने पर उसका नियत विषय ही ज्ञानगम्य है, सभी नहीं यह कैसे कह सकते हो, ज्ञाननियत विषय को ही प्रतिभासित करता है यदि यह कहते हो तो यह अपने को नहीं जानता यह कैसे जाना जा सकता है।।20।।

न तावत्तत एव स्वप्रतिपत्तिवैकल्यात्। हि स्वप्रतिपत्तिविकलादेव ज्ञाना[1]त्तत्र नियतार्थप्रतिभासनमन्य[2]द्वा शक्यावबोधमा भूत्ततस्तदवबोधस्तद्विषयात्तु ज्ञानान्तराद्भवत्येवेति चेन्न, तस्यापि स्वप्रतिपत्तिवैकल्ये तत्रापि तद्विषयस्य ज्ञानस्य नियतार्थगोचरत्वमेव प्रतिभाति न निरवशेषवस्तुगोचरत्वमिति तत एवाऽगन्तुमशक्यत्वात्। तस्यापि नियतविषयत्वमन्यतस्तद्विषयादेव ज्ञानादवगम्यत इति चेन्न, अनवस्थाप्रसंगात्।सत्येवमपरापरज्ञानपरिकल्पनस्यावश्यंभावात्।ततः सुदूरमपि गत्वा [3]क्वचिन्नियतविषयत्वमध्यवसातुकामेन तद्विषयस्य [4]ज्ञानस्य स्वप्रतिपत्तिरूपत्वमभ्युपगन्तव्यम्। अन्यथा ततस्तद्विषयविज्ञाननियतार्थगोचरत्वप्रतिपत्तेर्दुरुपपादकत्वात्।[5]तथा च सिद्धम[6]र्थज्ञानस्यापि तद्वत्स्वप्रतिपत्तिरूपत्वम-विशेषात्।।21।।

उसी ज्ञान से जाना जाता है, यह नहीं कह सकते क्योंकि वह तो स्वज्ञान से रहित है।स्वज्ञान से रहित ज्ञान से ज्ञान में नियतार्थ गोचरता अथवा सर्वार्थगोचरता का ज्ञान नहीं हो सकता। उसी ज्ञान से उस ज्ञान की नियतार्थ गोचरता अथवा सर्वार्थगोचरता का ज्ञान नहीं होता तो न हो उसको विषय करनेवाले दूसरे ज्ञान से हो जाता है, यह कहना भी ठीक नहीं है, उस दूसरे ज्ञान को भी स्वज्ञान से रहित होने के कारण उस ज्ञान में भी नियतार्थ विषय गोचरता ही प्रतीत होती है संपूर्ण विषय गोचरता नहीं।उसी ज्ञान से उसी ज्ञान को न जाना जा सकने के कारण।उसका नियत विषयत्व अन्य तद्विषयक ज्ञान से जाना जाता है ऐसा कहते हो तो अनवस्था का प्रसंग आयेगा।ऐसा होने पर दूसरे दूसरे ज्ञान की कल्पना आवश्यक हो जाती है।अतः ज्ञान को नियतार्थ विषय गोचर मानने की इच्छा रखने वालों को कहीं न कहीं ज्ञान को स्वप्रतिपत्तिरूप मानने पर अर्थ ज्ञान को भी उसी के समान स्वप्रतिपत्तिरूपता सिद्ध हो जाती है।दोनों में समानता होने से।।21।।

यत्पुनरिदमनुमानं, "नात्मविषयमर्थज्ञानं वेद्यत्वात्कलशादिवदिति" तत्र न तावद्वेद्यत्वं नाम सामान्यं तस्य नित्यत्वेन सर्वदा [7]भावेषु प्रसंगात् सामान्यादिषु

---

[1] ज्ञाने।
[2] सर्वार्थप्रतिभासनं।
[3] प्रथमज्ञाने।
[4] द्वितीयस्य।
[5] स्वप्रतिपत्तिरूपत्वे सति।
[6] प्रथमज्ञानस्य।
[7] पदार्थेषु।

तदभावापत्तेश्च। न हि सामान्यादिषु सामान्यं द्रव्यादित्रय एव तदभ्युपगमात्सामान्यादिषु तदभावापत्तेश्चः,न हि सामान्यादिषु सामान्यं द्रव्यादि त्रय एव तदभ्युपगमात्सामान्यदिषु तदभावापत्तेश्च। अस्ति च तत्रापि वेद्यत्वं, अन्यथा व्योमकुसुमादिवत्तदभावापत्तेः अतो न तत्सामान्यं। भवतु साधर्म्यमेव तद्वेदनविषयत्वस्य वेद्यत्वस्य चाभिधानात्। तस्य सर्वपदार्थसाधारणतया द्रव्यगुणकर्मस्विव सामान्यविशेषसमवायेष्वप्यविरोधात्। न तदभावापत्तिरिति चेत् किं पुनस्तद्वेदनं यद्विषयत्वं वेद्यत्वमर्थज्ञानस्योच्येत, तदेवार्थज्ञानमिति चेन्न।अनात्मविषयत्वे तस्य तद्वेदनत्वानुपपत्तेः, आत्मविषयत्वे च हेतुप्रतिज्ञयो[1] र्विरोधात्।[2]तस्मादन्यदेव तदेकार्थ[3]समवेतम[4]नन्तरं तद्वेदनमिति चेन्न, तस्याद्याप्य – सिद्धत्वात्।।22।।

फिर जो यह अनुमान है–"नात्मविषयमर्थ ज्ञानं वेद्यत्वात्कलशादिवत् अर्थ को जानने वाला ज्ञान अपने को नहीं जानता, वेद्य होने के कारण कलशादि के समान यहां वेद्यत्व सामान्य नहीं है क्योंकि वेद्यत्व सामान्य तो नित्यरूप से सदा पदार्थों में ही रहता है, सामान्यादि में उसका अभाव होने से।सामान्यादि में सामान्य नहीं होता है, वह द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों में ही माना गया है, सामान्यादि में उसका अभाव होने से।वेद्यत्व अर्थ ज्ञान में भी है अन्यथा आकाश कुसुम के समान उसके अभाव का प्रसंग आयेगा।अतः वेद्यत्व सामान्य नहीं है विपक्षी कहते हैं वेदनविषयत्व और वेद्यत्व में साधर्म्य मान लो, सभी पदार्थों में साधारण होने के कारण द्रव्यगुण कर्म के समान सामान्य विशेष समवाय में भी विरोध न होने से उसके अभाव की आपत्ति नहीं है, यह कहते हो तो यह बताओ कि वह ज्ञान क्या है?जिसका विषय वेद्यत्व अर्थज्ञान को कहा जाय, वही अर्थज्ञान है, यह नहीं कह सकते, उसके आत्म विषय न होने के कारण उसके द्वारा उसका वेदन नहीं हो सकता।आत्मविषय होने पर तुम्हारे हेतु और प्रतिज्ञा में विरोध होता है।अर्थ ज्ञान से भिन्न ही उसके साथ एक ही अर्थ में समवेत होकर बाद में उसका वेदन करता है, यह भी नहीं कह सकते, उसकी अभी तक सिद्धि नहीं होने से।।22।।

अर्थज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं वेद्यत्वात् कलशादिवदित्यत एवानुमानात्तत्सिद्धिरिति चेन्न, परस्पराश्रयापत्तेः, तत्सिद्धावनुमानमनुमानाच्च तत्सिद्धिरिति ।। 23।।

प्रथम अर्थज्ञान दूसरे ज्ञान के द्वारा जाना जाता है, वेद्य होने के कारण कलशादि के समान, इस अनुमान से ही उसके अनात्मविषयत्व की सिद्धि हो जाती है यह कहना भी उचित नहीं है, अन्योन्याश्रय होने के कारण।प्रथम ज्ञान के अनात्मविषय सिद्ध होने पर अनुमान की सिद्धि हो सकती है और उक्त अनुमान के सिद्ध होने पर उसके अनात्म विषयत्व की सिद्धि हो सकती है।।23।।

---

[1] विरुद्धत्वादिति भावः।

[2] अर्थज्ञानात्।

[3] तेन सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं।

[4] पश्चादुत्पन्नं।

अन्यतस्तत्सिद्धिरिति[1] चेन्न।अनुमानस्य वैयर्थ्यप्रसंगात्।किं वा तदन्यत्? प्रत्यक्षमिति चेन्न, तस्या[2]प्यव्यतिरिक्तस्यान[3]भ्युपगमात्।व्यतिरिक्तमिति चेत्, कि[4]मयं नियमः,सति विषये तद्वेदनमवश्यमिति।तथा चे[5]न्नार्थज्ञानवेदनवत्तद्वेदनेऽप्यन्यत्त – द्वेदनं तत्राऽप्यन्यदित्यासंसारं तद्वेदनप्रबंधस्यैव प्रवृत्तेर्न विषयान्तरसंचारो वेदनस्य भवेदिति कथमनुमानम्।।24।।

अन्य ज्ञान से उसकी सिद्धि होती है, यह कहना भी ठीक नहीं है, अनुमान के व्यर्थ होने का प्रसंग होने से।अथवा वह अन्य ज्ञान क्या है, प्रत्यक्ष तो कह नहीं सकते, उसको भी द्वितीय ज्ञान से अभिन्न नहीं मानने से।यदि भिन्न मानते हो तो क्या यह नियम है कि विषय होने पर उसका वेदन अवश्य हो, यदि ऐसा मानते हो तो वह भी ठीक नहीं है प्रथम ज्ञान के वेदन के लिए अन्य ज्ञान और उसके वेदन के लिए अन्य ज्ञान इस प्रकार आजन्म ज्ञान के वेदन की ही परंपरा होने से किसी दूसरे विषय में उसकी प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी।अतः अनुमान भी अन्य ज्ञान के द्वारा प्रथम ज्ञान को वेद्य कैसे सिद्ध कर सकता है।।24।।

धर्मिज्ञानतज्ज्ञानप्रबंधस्यानुपरमे[6] हेतुदृष्टान्तयोरनुपपत्तेर्माभूदयं नियम इति चेन्न तर्हि धर्मिण्यपि वेदन नियम इति कथं तस्य तद्वेद्यत्वस्य हेतोर्वा सिद्धिरित्यसंभव एवानुमानस्य भवेत्।।25।।

धर्मी ज्ञान और उस ज्ञान के ज्ञान की परंपरा के समाप्त न होने तथा हेतु और दृष्टांत की उत्पत्ति नहीं होने से यह नियम न हो यदि ऐसा कहते हो तो धर्मी ज्ञान में भी वेदन का नियम नहीं होगा, फिर उसके वेद्यत्व हेतु की भी सिद्धि कैसे होगी?अतः उक्त अनुमान असंभव ही हो जायगा।।25।।

अथ वेद्यत्वमर्थज्ञानस्य न विशिष्टमुपादीयते, [7]तदतत्कृतत्वेन अवशिष्टस्यैव तस्य हेतुत्वादिति चेत्, कथं तस्यानात्मविषयत्वे साध्ये हेतुत्वं? तेनैव कलशादौ तस्य व्याप्तिदर्शनादिति चेत्, न, व्याप्तिज्ञाने आत्मविषयत्वेनापि [8]तस्य तद्दर्शनात्, न हि [9]प्रादेशिकी व्याप्तिः।साध्यप्रतिपत्तेर्निमित्तं तत्पुत्रत्वादावपि तद्भावात् श्या[10]मत्वादेरततोऽपि सिद्धिप्रसंगात्।अपि तु साकल्येन।तत्र यद् यद्

---

[1] तृतीयज्ञानात्।
[2] द्वितीयज्ञानाव्यतिरिक्तस्य।
[3] कुतः स्वप्रतिपत्तिप्रसंगात्।
[4] प्रभवति न वेति शेषः।
[5] प्रथमज्ञानलक्षणे।
[6] अनवस्थाने।
[7] अन्यज्ञानकृतत्वेन।
[8] साध्यस्य।
[9] प्रदेशे भवा प्रादेशिकी।
[10] साध्यस्य।

वेद्यं तत्तत्सर्वमनात्मविषयमिति किंचिद्वि[1]ज्ञानमुत्पद्यमानमात्मविषयमपि भवितुमर्हति। अन्यथा तद्वेद्यत्वस्यानात्मविषयतया व्याप्तेस्तत एवाप्रतिपत्तिप्रसंगात्, [2]तथा च व्यभिचारि वेद्यत्वं व्याप्तिज्ञानेन तत्रात्मनि विषयत्वस्याभावेऽपि तस्य भावात्। एवमीश्वरज्ञानेनापि। न हि तस्याध्यनात्मविषयत्वं, अनर्वविषयत्वप्रसंगात्।।26।।

यदि यह कहो कि अर्थज्ञान को वेद्यत्व विशिष्ट नहीं माना है उसके अन्य ज्ञान का वेद्यत्व होने के कारण अविशिष्ट वेद्यत्व को ही अनात्मविषय साध्य का हेतु होने से तो यह बताओ कि वह अनात्मविषय साध्य का हेतु कैसे है?यदि यह कहो कि उसी वेद्यत्व हेतु से, कलशादि में उसकी व्याप्ति देखी जाने से तो यह कहना ठीक नहीं है व्याप्ति ज्ञान में आत्मविषयत्व के साथ भी साध्य की वेद्यत्व हेतु के साथ व्याप्ति देखी जाने से।व्याप्ति कहीं हो कहीं नहीं ऐसा नहीं होता।साध्य की प्रतिपत्ति के निमित्त तत्पुत्रत्व आदि में भी व्याप्ति होने से श्यामत्व आदि साध्य की तत्पुत्रत्वात् हेतु से भी सिद्धि का प्रसंग होने से। व्याप्ति संपूर्ण रूप से ही होती है।संपूर्ण रूप से व्याप्ति होने पर "यत् यत् वेद्यं तत्तत्सर्वमनात्मविषयम्" इस प्रकार की व्याप्ति ज्ञान आत्मविषय के पक्ष में भी हो सकती है अन्यथा वेद्यत्व की अनात्मविषयत्व के साथ व्याप्ति होने से उससे ही अप्रतिपत्ति का प्रसंग आयेगा।व्याप्ति ज्ञान के आत्मविषयत्व होने पर वेद्यत्व हेतु व्यभिचारी हो जाता है व्याप्ति ज्ञान से अपने को विषय करने का अभाव होने पर भी वेद्यत्व हेतु के होने से।ईश्वर ज्ञान के साथ भी वेद्यत्व हेतु व्यभिचारी है क्योंकि वह अनात्मविषय नहीं है अन्यथा वह सभी विषय को जानने वाला नहीं हो सकता।।26।।

तथा च कथं तस्य [3]तज्ज्ञानेन सर्वज्ञत्वं?तेन तदपरस्य सकलस्य [4] तस्य च तदन्येन ग्रहणादिति चेत्, कथं तदन्येनाप्यस्वविषयेण स्वविषयतया परस्परपरिज्ञानमित्यप्रतिपत्तिरेव। तेन तस्यासकलप्रतिपत्तेरनभ्युपगमादित्यतोऽस्ति तस्याऽऽत्मविषयत्वं।[5]तथा चैत्किमपराद्धं [6]तद्विषयेण ज्ञानेन [7]यत्तस्यैवात्मविषयत्वं नेष्यते इति सिद्धम् तेनापि व्यभिचारित्वं वेद्यत्वस्य।तत्रानात्मविषयत्वाभावेऽपि तस्य भावादिति।।27।।

अर्थज्ञान के स्वविषयत्व नहीं होने पर द्वितीय ज्ञान के द्वारा सर्वज्ञत्व कैसे हो सकता है।प्रथम ज्ञान के द्वारा अन्य सकल वस्तु का और प्रथम ज्ञान का अन्य ज्ञान से ग्रहण होने से यदि यह कहो तो फिर उस अन्य ज्ञान को भी स्व को विषय न करने वाला होने से स्वविषय रूप से परस्पर ज्ञान कैसे होगा?अतः स्व ज्ञान की अप्रतिपत्ति ही होगी।सर्वज्ञ के ज्ञान के द्वारा असकल प्रतिपत्ति नहीं मानी गई है. अतः ज्ञान का

---

[1] व्याप्तिज्ञानं।
[2] व्याप्तिज्ञानस्यात्मविषयत्वेन।
[3] द्वितीयज्ञानेनेत्यर्थः।
[4] वस्तुनः।
[5] द्वितीयज्ञानस्यात्मविषयत्वेन।
[6] द्वितीयज्ञानविषयेण।
[7] यस्मात् हेतोः।

आत्मविषयत्व सिद्ध होता है।यदि द्वितीय ज्ञान को आत्मविषयत्व मानते हो तो द्वितीय ज्ञान के विषय प्रथम ज्ञान ने ही क्या अपराध किया है, जिससे उसी को आत्मविषयत्व नहीं मानते।अतः इससे भी वेद्यत्व हेतु का व्यभिचारित्व सिद्ध होता है, अनात्मविषयत्व के अभाव में भी वेद्यत्व हेतु के होने से।।27।।

नानुमानादप्यनात्मविषयत्वमर्थज्ञानस्यात्मविषयत्वं तु तस्यानुभवप्रसिद्ध-मतः किं तत्रानुमानेन, यदि निर्बन्धस्तदुच्यत एव। अर्थज्ञानमात्मविषयमर्थ-विषयत्वात्, यत्पुनर्नात्मविषयं तदर्थविषयमपि न भवति यथा घटादि।अर्थविषयं विवादापन्नं ज्ञानं तस्मादात्मविषयमिति केवलव्यतिरेकी हेतुः, तस्य परैरपि गमकत्वाभ्यनुज्ञानात्।तत्रार्थविषत्वमेव ज्ञानस्येत्युपपन्नं नैयायिकस्य, स्वविषयत्व-स्यापि तत्र भावात्।।28।।

अनुमान से भी अर्थज्ञान को आत्मविषयत्व की सिद्धि नहीं होती, उसका आत्मविषयत्व तो अनुभवप्रसिद्ध है, अतः उसमें अनुमान की क्या आवश्यकता है?यदि आवश्यक ही है तो वह भी कहा जाता है--अर्थज्ञान आत्मविषय वाला है अर्थविषय वाला होने से जो आत्मविषय वाला नहीं है, वह अर्थविषय वाला भी नहीं है जैसे घटादि।अर्थज्ञान अर्थविषय वाला है, अतः वह आत्मविषय वाला भी है, यह केवल व्यतिरेकी हेतु है जो विपक्ष के द्वारा भी स्वीकार किया गया है।अतः नैयायिक का यह कथन कि ज्ञान का विषय केवल अर्थ है, उचित नहीं है, ज्ञान में स्वविषयत्व के भी होने से।।28।।

मीमांसकस्त्वाह।परोक्षमेव सकलमपि ज्ञानं स्वप्रकाशवैकल्यात्, प्रत्यक्षं तु बहिरर्थस्य तेन तस्यैव प्रकाशनात् इति।।29।।

मीमांसक कहते हैं--सभी ज्ञान परोक्ष ही हैं अपने को प्रकाशित नहीं करने के कारण।प्रत्यक्ष तो उससे उस बाह्य अर्थ का प्रकाश करने के कारण है।।29।।

[1]तत्र प्रकाशकत्वे सति कुतस्ततोऽर्थस्यैव प्रकाशो न स्वरूपस्य? [2]शक्तिवैकल्यात्। तथाहि, यद्[3]ऽशक्तं न तत्तस्यप्रकाशकं, यथा चक्षु रसादेरशक्तं च सकलमपि संवेदनं स्वप्रकाशे इति तद्वैकल्यमिति चेत्।अस्यानुमानस्यापि यदि तद्वैकल्यं, अनुमानान्तरात्तस्यापि तदन्तरात्तद्वैकल्यं प्रतिपत्तव्यमिति कथमन-वस्थितिर्नभवेत्?अभि[4]रूच्यभावात्, यावदभिरूचिस्तावदेव भवत्यनुमानस्य प्रबंध-स्तदभावे त्ववस्थितिरेवेति चेत्[5], तर्हि [6]कुतश्चिदपि सकलस्य संवेदनस्य प्रकाशवैकल्यप्रतिपत्तिरिति--कथं तत्र परोक्षत्ववचनं?ततः सकलस्यापि संवेदनस्य

---

[1] जैनः पृच्छति।
[2] मीमांसको वदति।
[3] ज्ञानं न स्वप्रकाशकं तत्र तस्याशक्तत्वात्।
[4] आकांक्षाभावात्।
[5] जैन आह।
[6] अनुमानात्।

स्वप्रकाशवैकल्यमनुमाना[1]दवजिगमिषता स्वप्रकाशकमेव तदभ्युपगन्तव्यम्। तद्वदर्थज्ञानमपि।तस्याप्यनुमानव[2]दन्तोरूपतया परिस्फुटस्यावलोकनात्।तच्छक्तेरपि तत एवाध्यवसायात्। सत्यपि परोक्षत्वे कुतस्तस्य प्रतिपत्तिः अन्यथा तदभ्यनुज्ञानानुपपत्तेः।।30।।

जैनाचार्य कहते हैं—ज्ञान में प्रकाशत्व होने पर उससे अर्थ का ही प्रकाश होता है स्वरूप का नहीं यह कैसे है?यदि यह कहते हो कि शक्ति न होने के कारण।क्योंकि जो जहां शक्त नहीं है, वह उसको प्रकाशित नहीं करता जैसे चक्षु इन्द्रिय रसादि का।सभी ज्ञान स्व को प्रकाशित करने में अशक्त हैं, यह भी शक्ति वैकल्य है यदि ऐसा कहते हो तो इस अनुमान का शक्ति वैकल्य दूसरे अनुमान से और उसका भी दूसरे अनुमान से शक्ति वैकल्य जानना चाहिये।ऐसा होने पर अनवस्था कैसे नहीं होगी?आकांक्षा के नहीं होने से अनवस्था नहीं होगी।जब तक आकांक्षा होगी तब तक ही अनुमान की योजना होगी, आकांक्षा के न होने पर अवस्थिति ही होगी। यदि यह कहते हो तो किसी अनुमान से सभी ज्ञान के प्रकाश रहितता की प्रतिपत्ति नहीं होगी फिर सभी ज्ञान को परोक्ष कैसे कहा जा सकता है?अतः अनुमान से सभी ज्ञान को स्वप्रकाश रहित जानने के इच्छुक को उसे स्वप्रकाशक ही मानना चाहिये।उसी प्रकार अर्थज्ञान को भी स्वप्रकाश मानना चाहिए।उसको भी अनुमान के समान अन्तर्मुख रूप से स्वयं को स्पष्ट रूप से जानने के कारण उसकी शक्ति का भी उसी से निश्चय होने के कारण।यदि परोक्ष मान भी लें तो उसकी प्रतिपत्ति कैसे होगी? प्रतिपत्ति न होने पर उसको स्वीकार न किये जाने का प्रसंग होने से।।30।।

अर्थप्रकाशादेव[3] तस्य तदन्यथानुपपन्नतया निर्णयादिति चेन्न[4]तत्प्रकाशस्य ज्ञानधर्मत्वे ज्ञानवत्परोक्षस्यैव भावात्, तत्र च तदन्यथानुपपत्तेर्निर्णयः [5]परिज्ञात एव तदुपपत्तेः।परिज्ञात एवायं [6]स्वत इति चेत्, न तर्हि परोक्षत्वं ज्ञानस्य। तद्धर्मस्यार्थप्रकाशस्य स्वप्रकाशत्वे तदव्यतिरेकिणो ज्ञानस्यापि तदुपपत्तेः। अन्यतस्तस्य परिज्ञानमिति चेत् किं[7] पुनरत्र तदन्यत् प्रत्यक्षमिति चेन्न तस्येन्द्रियसंप्रयोगादुत्पत्तेः ज्ञानधर्मे चार्थप्रकाशे तदभावात् कथं तत्र प्रत्यक्षत्वं सत्यपि [8]तस्मिंस्तत्प्रकाशवत्तद्धर्मिणो[10] ज्ञानस्यापि तत एव प्रतिपत्तेर्व्यर्थमनुमानं भवेत्[11]।तत्र ज्ञानधर्मस्तत्प्रकाशः।भवत्वर्थस्यैव सधर्म इति चेत्, न, तस्यापि स्वतः प्रतिपत्तिरर्थस्याचेतनत्वेन तदनुपपत्तेः।चेतनत्वे तु विज्ञानस्यैवावस्थितेः।न बहिरर्थो

---

[1] ज्ञातुमिच्छता मीमांसकेन।
[2] अंतर्मुखरूपतया।
[3] तत्प्रतियत्तिरिति शेषः।
[4] जैन आह।
[5] निश्चिते वस्तुनि।
[6] स्वतः परतो वा इति शंकायां स्वत इति चेत्।
[7] जैन आह।
[8] प्रवर्त्तत इति शेषः।
[9] प्रत्यक्षे।
[10] अर्थप्रकाशधर्मिणः।
[11] मयि ज्ञानमस्ति अर्थप्रकाशाद्यन्यथानुपपत्तेः।

नामेति तन्निबन्धनः कश्चिदपि क्रियाविधिः स्यात्।परतः प्रतिपत्तावपि [1]तस्मादात्म[2]ज्ञानस्यैव कुतोऽनुमानं, न [3]परज्ञानस्य ततोऽपि तत्प्रकाशसंभवात्। तस्याप्रत्यक्षत्वेन तत्कृतस्य तत्प्रकाशस्याशक्यप्रतिपत्तिकत्वादिति चेन्न, आत्म-ज्ञानस्याप्यप्रत्यक्षत्वाविशेषात्। तन्नार्थधर्मस्यापि तस्य कुतश्चित्सिद्धिः, नचासिद्धस्यान्यथानुपपत्तिनिर्णयो ·····तदनुमानमर्थज्ञानस्य ·····तनुकूलम्। "अन्यथानुपपन्नत्वमसिद्धस्य न सिद्धयतीति" ततोऽर्थस्य प्रत्यक्षत्वमन्विच्छता प्रत्यक्षमेतज्ज्ञानमभ्युपगन्तव्यम्। अनुभवस्यापि तथैव भावात्।।31।।

अर्थप्रकाश से ही उसकी प्रतिपत्ति हो जायेगी।ज्ञान के बिना अर्थप्रकाश की उत्पत्ति न होने का निर्णय होने से।जैनाचार्य कहते हैं यह कहना भी उचित नहीं है। अर्थप्रकाश को ज्ञान का धर्म होने से उसको भी ज्ञान के समान परोक्ष होने से।यदि यह कहो कि अर्थप्रकाश के अन्यथानुपपत्ति का निर्णय ज्ञात ही है उसकी उत्पत्ति होने से तो यह बताओ कि वह परिज्ञात स्वतः है या परतः।यदि स्वतः परिज्ञात है तो फिर ज्ञान को परोक्षत्व नहीं सिद्ध होगा, ज्ञान के धर्म अर्थप्रकाश को स्वप्रकाशक होने पर उससे अभिन्न ज्ञान को भी स्वप्रकाशक होने का प्रसंग होने से।यदि अन्य ज्ञान से उसका ज्ञान कहते हो तो वह अन्य ज्ञान क्या है?प्रत्यक्ष तो हो नहीं सकता क्योंकि वह तो तुम्हारे यहां इन्द्रियों का संबंध होने पर होता है और ज्ञान के धर्म अर्थप्रकाश में इन्द्रियों का संबंध नहीं होता फिर उसे प्रत्यक्ष कैसे मानोगे?प्रत्यक्ष के होने पर भी अर्थप्रकाश के समान अर्थप्रकाश के धर्मी ज्ञान की भी उसी से प्रतिपत्ति हो जाने पर अनुमान व्यर्थ हो जायेगा।अतः अर्थप्रकाश ज्ञान का धर्म नहीं है।मीमांसक कहते हैं—अर्थप्रकाश को अर्थ का ही धर्ममान लो तो जैनाचार्य कहते हैं कि उसकी भी स्वतः प्रतिपत्ति नहीं होगी, अर्थ के अचेतन होने से स्वतः प्रतिपत्ति नहीं होने से चेतन तो ज्ञान ही होता है।फिर कोई बाह्य अर्थ नहीं होगा जिसके कारण कोई क्रियाविधि हो।परतः प्रतिपत्ति मानने पर भी उससे आत्मज्ञान का ही अनुमान क्यों है?परज्ञान का क्यों नहीं क्योंकि पर ज्ञान से भी अर्थप्रकाश संभव है पर ज्ञान के परोक्ष होने के कारण उसके द्वारा किये गए उसके प्रकाश की प्रतिपत्ति नहीं होने से यह कहना भी ठीक नहीं है, आत्म ज्ञान के भी पर ज्ञान के परोक्षत्व की समानता होने से। अतः अर्थधर्म की भी किसी प्रमाण से सिद्धि नहीं होती।असिद्ध के अन्यथानुपपत्तिका निर्णय नहीं किया जाता, जिससे अर्थज्ञान के विषय में पूर्वोक्त अनुमान का प्रयोग हो।कहा भी है—"अन्यथानुपपत्वमसिद्धस्य न सिद्धयतीति" अतः अर्थ को प्रत्यक्ष सिद्ध करने के इच्छुक को अर्थ ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मान लेना चाहिये।अनुभव भी ऐसा ही होने के कारण।।31।।

न[4] चैवं स्वपरविषयतया मरीचिकातोयादिवेदनस्यापि प्रामाण्यप्रसङ्गः। समीचन[5] एव तदुपगमात्।न च तद्वेदनस्य सम्यक्त्वं बाधकत्वात्। न[6] समानविषयेण बाधस्ततः संवादेन सम्यक्त्वस्यैवोपपत्तेः।नाऽपि विसदृशविषयेण नीलज्ञानेन

---

[1] क्रियाविधेः।
[2] स्वकीयस्य।
[3] परकीयस्य।
[4] उक्तप्रकारेण ज्ञानस्य स्वप्रकाशकत्वे सति।
[5] ता–षष्ठी–सत्यस्येत्यर्थः।
[6] प्रभाकर आह।

पीतज्ञानेन पीतज्ञानस्य तत्प्रसंगात् ।बाधोऽपि न स्वरूपापहार [1]उत्पत्तिसमये तद्भावे तस्यानुत्पत्तिप्रसंगात् । अन्यदा च [2]स्वयमेव नाशात । नापि विषयापहारस्तस्य मरीचिपधर्मत्वेन ज्ञानेष्वसंभवात् । न च फलापहारः फलस्यापि विषयपरिच्छेदप्रवृत्त्यादेस्ततो दर्शनात् । न चापरो बाधप्रकार इति चेन्न, तद्विषयासत्त्वज्ञापन[3]स्यैव बाधकत्वात्, तस्य च मरीचिकाप्रत्यये सति नेदं तोयं किंतु मरीचिका इत्याकारस्यावलोकनात् । कर्तव्यश्चैवमभ्युपगमोऽन्यथाबा[4]धासत्त्व स्यापि अवबोध –नानुपपत्तेः न समानविषयेणेत्यादिविचारस्य वैयर्थ्योपनिपातात् ।तत्र विपर्ययस्य प्रामाण्यमसम्यक्त्वात्, एवमव्युत्प[5]त्रसंशययोरपि तत्रापि यथातत्त्व – निर्णयस्य सम्यक्त्वस्याभावात् । ।32 । ।

इस प्रकार ज्ञान के स्वपर विषय वाला होने से मृगजल के ज्ञान को भी प्रमाणता का प्रसंग नहीं हो सकता ।समीचीन ज्ञान में ही प्रमाणता मानी जाने से ।मृगजल का ज्ञान सम्यक्त्व नहीं है, बाधा होने से ।प्रभाकर कहते हैं समान विषय के कारण बाधा है कि असमान विषय के कारण?समान विषय के कारण तो बाधा हो नहीं सकती उससे सम्यक्त्व की ही उत्पत्ति होने से ।असमान विषय से नीलज्ञान से पीत ज्ञान होने के कारण पीतज्ञान को बाधा का प्रसंग आयेगा ।बाधा स्वरूपापहार नहीं हो सकता ।यदि स्वरूपापहार बाधा है तो यह उत्पत्ति के समय है कि अनुत्पत्ति के समय?उत्पत्ति के समय मानने पर उसकी उत्पत्ति ही नहीं होगी ।अनुत्पत्ति के स्वयं का ही नाश हो जायेगा ।विषयापहार भी नहीं कह सकते निश्चय रूप से ज्ञान में उसके संभव नहीं होने से ।फलापहार भी नहीं है विषयज्ञान की प्रवृत्ति आदि फल भी उसमें देखे जाने से ।अन्य कोई बाधा का प्रकार नहीं है ।आचार्य कहते हैं ऐसा नहीं कह सकते, उसके विषय के न होने का ज्ञान ही बाधक होने से ।उसके मृगजल होने का ज्ञान होने पर यह जल नहीं है किंतु मृगजल है इस प्रकार का अवलोकन होने से ।यह मान लेना चाहिये अन्यथा बाधा के होने का भी ज्ञान नहीं हो सकेगा ।"न समानविषयेण" इत्यादि विचार भी व्यर्थ हो जायेंगे ।अतः विपर्यय ज्ञान प्रमाण नहीं है, असम्यक्त्व होने से ।इसी प्रकार संशय और अनध्यवसाय में भी प्रमाणता नहीं है वहां भी तत्त्व का यथार्थ निर्णय करने वाले सम्यक्त्व का अभाव होने से । ।32 । ।

ततस्तो[6]यादावेव तत्प्रत्ययस्य तद्भावः तस्य चाभ्यासदशायां स्वत एवावगमोऽन्यथा[7] तु पद्मगन्धोदकाहरणादेर्लिङ्गविशेषात् । न चैवं लिङ्गप्रत्यय– सम्यक्त्वस्याप्यन्यतो लिङ्गादवगमे ऽनवस्थानं दूरानुसरणेऽपि कस्यचिदभ्यस्त– विषयस्य तत्प्रत्ययस्य संभवात् । ततः सुपरिज्ञानत्वात् ज्ञानेषु सम्यक्त्वस्यैवोपपन्नं, इदं सम्यग्ज्ञानमेव प्रमाणं अन्यथा तदनुपपत्तेरिति । ।33 । ।

---

[1] उत्पत्तिसमयेऽन्यदा वा ।

[2] बाधकमंतरेण प्रथमज्ञानस्य ।

[3] निषेदनस्य ।

[4] प्रतियोगिभूतबाधज्ञानाभावे तदभावज्ञानानुपपत्तेः ।

[5] अनध्यवसायः ।

[6] न तु मरीचिकादौ तत्प्रत्ययस्य तद्भावः ।

[7] अनभ्यासदशायां ।

अतः जल आदि में ही जल आदि का ज्ञान प्रमाण है, उसका अभ्यास दशा में स्वतः ही ज्ञान होता है, अनभ्यास दशा में कमल की गंध तथा जल आदि के लाने आदि के अनुमान से।इस प्रकार अनुमान से जानने वाले सम्यक्त्व को अन्य अनुमान से जानने वाले सम्यक्त्व को अन्य अनुमान से जानने पर अनवस्था नहीं होती कहीं दूर जाकर किसी अभ्यस्त विषय का ज्ञान होने से।अतः भली प्रकार जानने के कारण ज्ञानों में सम्यक्ज्ञान को ही प्रमाणता है।यह सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है, सम्यग्ज्ञान के बिना प्रमाणता की उत्पत्ति नहीं होने से।।33।।

देवस्य मतमुद्वीक्ष्य विचारज्ञानिनां प्रभोः।
मयाऽभ्यधायि संक्षिप्य प्रमाणस्येह लक्षणम्।।1।।

प्रभु देव के मत का विचार कर ज्ञानियों के लिए यहां संक्षेप में प्रमाण का लक्षण कहा है।

इति श्रीमद्वादिराजसूरिप्रणीते प्रमाणनिर्णये प्रमाणलक्षणनिर्णयः।।

इस प्रकार श्री वादिराजसूरि द्वारा प्रणीत प्रमाण निर्णय ग्रन्थ में प्रमाण के लक्षण का निर्णय किया गया है।

* * *

प्रत्यक्षनिर्णयः।

प्रत्यक्षनिर्णय

तच्च प्रमाणं द्विविधं, प्रत्यक्षं परोक्षं चेति।तत्र यत्स्पष्टावभासं तत्प्रत्यक्षम्।किं पुनरिदं स्पाष्ट्यं नाम[1]? विशेषावबोध इति चेन्न, सामस्त्येन संसारिज्ञाने क्वचिदपि तदभावात्[2], असामस्त्येन तद्भावस्य परोक्षे प्रत्ययेऽ[3]भिधानस्य मानत्वात्।आलोकपरिकलितग्रहणं तदिति चेन्न, अव्याप्तेः, रूपज्ञान एव तस्य भावात्, न स्पर्शादिज्ञानेषु। न चैतेषामप्रत्यक्षत्वमेव, तत्प्रत्यक्षत्वस्य निर्विवादत्वात्। अव्यवहितग्रहणं तदित्यपि न मन्तव्यं, निर्मलस्फटिकव्यवहितेऽपि वस्तुनि स्पष्टस्यैव तद्भानस्यावलोकनात्।वृक्षोऽयं शिंशपात्वादित्यादेरनुमानस्यापि [4]प्रत्यक्षत्वप्रसक्तिरव्यवहितग्रहणात्, तस्मादन्तर्मलविश्लेषनिबन्धनो विशुद्धिविशेष[5] एव स्पाष्ट्यमित्युपपन्नम्।।34।।

---

[1] विमलं ज्ञानं प्रत्यक्ष भवितुमर्हति विशेषावबोधकत्वात्।

[2] भागासिद्ध इति भावः।

[3] परोक्षप्रमाणनिर्णयप्रस्तावे वक्ष्यमाणत्वा दिति निर्गलितोऽर्थः।

[4] अनैकांतिकदोषो भवेदिति भावः।

[5] प्रतिपक्षमनुवृत्तरूपं सामान्यं परोक्षव्यावृत्तरूपं तदेव विशेषः।

यह प्रमाण दो प्रकार का है--प्रत्यक्ष और परोक्ष।इसमें जो स्पष्ट अवभास है, यह प्रत्यक्ष है।यह स्पष्टता क्या है?विशेष ज्ञान यह नहीं कह सकते, पूर्णरूप से संसारी ज्ञान में कहीं भी उसका अभाव होने से।असंपूर्ण रूप से स्पष्टता का परोक्ष प्रमाण में कथन किया जायगा।प्रकाश से युक्त ग्रहण स्पष्टता है, यह भी नहीं कह सकते व्याप्ति नहीं होने से, रूप ज्ञान में ही आलोक होने से स्पर्शादि ज्ञान में नहीं।स्पर्शादि के ज्ञान को परोक्ष भी नहीं कह सकते, स्पर्शादि के ज्ञान को निर्विवाद रूप से प्रत्यक्ष होने से।आवरण रहित को ग्रहण करना स्पष्टता है, यह भी नहीं मानना चाहिये, निर्मल स्फटिक से आवृत वस्तु में भी स्पष्ट अवभास होने से।यदि अव्यवहित के ग्रहण को स्पष्ट मानोगे तो "यह वृक्ष है शिंशपा होने से" इस अनुमान मात्र को ही प्रत्यक्षत्व का प्रसंग आयेगा।अतः अन्तः करण के मल के पृथक् हो जाने के कारण विशुद्धि विशेष ही स्पष्टता है, यह सिद्ध हुआ।।34।।

[1]सामान्यविशेषः स्पाष्ट्यमिति चेदभिमतमिदं विशुद्धिविशेषस्यैव तत्तत्प्रत्यक्षसदृशतया तद्विशेषत्वात् नित्यनिरवयवरूपस्य च तस्य प्रत्याख्यानात्। कुतः पुनरिदमवगतं स्पष्टत्वेन प्रत्यक्षमिति? द्वि[2]बाहुरेकशिरा नर इत्यपि कुतः? तथैव प्रत्यक्षेणावेक्षणात् ।प्रत्यक्षस्य स्पष्टत्वे[3] स्वानुभवनेन तथैवान्वीक्षणादिति समः समाधिः।।35।।

यौगाचार के अनुसार सामान्य विशेष स्पष्टता है, जैनाचार्य कहते हैं, यह तो हम भी मानते हैं, विशुद्धिविशेष को ही उस प्रत्यक्ष के सदृश होने से सामान्य विशेषत्व होने के कारण।नित्य निरवयवरूप सामान्य विशेष का निराकरण किया गया है।पुनः विपक्षी कहते हैं कि यह कैसे जाना गया कि स्पष्ट ही प्रत्यक्ष है? जैनाचार्य कहते हैं कि एक सिर और दो भुजाओं वाला मनुष्य है यह कैसे जाना गया? यदि यह कहते हो कि ऐसा प्रत्यक्ष से देखा जाने से तो फिर प्रत्यक्ष के स्पष्टत्व में भी स्वानुभव से उसी प्रकार देखा जाने से दोनों का समान समाधान है।।35।।

सम्यग्ज्ञानस्य [4] व्यवसायात्मकत्वे प्रत्यक्षस्यापि दमेदस्य तदात्मकत्वेन भवितव्यं, न च तस्य तदस्ति तेनाभिलापसंबद्धतया [5]स्वविषयस्याग्रहणात् ।तथा तदग्रहणस्यैव [6]व्यवसायत्वादिति चेत्, नैवं[7], व्यवसायस्यैवाभावप्रसंगात् ।अभिलापेन हि तद्गतेनैव विषयस्य संबन्धस्तत्र तदभावात् ।स्मरणोपनीतेन संकेतकाल प्रतिपन्नेनेति चेन्न। स्मरणस्य[8] निर्विकल्पकत्वे तद्विषयस्य स्वलक्षणत्वेन क्वचिदुपनयनानुपपत्तेः ।व्यवसायरूपत्वे च तेनापि स्वविषयस्याभिलापसबंद्धस्यैव

---

[1] यौगमतं सामान्यविशेषेऽर्थात्परसामान्यं।

[2] जैनः प्राह।

[3] अवगतमिति शेषः।

[4] बौद्धो वक्ति।

[5] अभिलापसंबद्धस्य स्वविषयस्येत्यर्थः।

[6] "विकल्पो नाम संश्रितः" इति वचनात्त्वाभिधानविशेषपेक्षा एव निश्चयैर्निश्चीयंते इत्यभ्युपगमात्।

[7] अभिलापसंबद्धस्वविषयग्रहणस्य व्यवसायत्वे।

[8] अनन्यदेशकालाकारत्वेन।

स्मर्त्तव्यं, तथाभिलाषस्यापि तथाविधस्यैव तत्स्मरणस्यैवत्यनवस्थितिप्रसंगात् स्मरणस्य तदनभिसंबद्धवस्तुवेदित्वेपि व्यवसायस्वभावत्वे प्रत्यक्षस्यापि तत्किं न स्यात्?अभिलापसंबन्धवैकल्ये कुतस्तस्यसव्यवसाय इति चेत्, अभिलापस्मरण-स्यापि कुत:?शब्दसामान्यस्य तत्संबधयोग्यस्य तेन ग्रहणादिति चेत्, प्रत्यक्षेऽपि तत[1] एव सोऽस्तु, तेनाऽपिसामान्यस्य वस्तुषु सदृशपरिणामस्य परिच्छेदात्। अन्यथा[2] शुक्तिकादौ रजताद्यपेक्षया साधर्म्यदर्शनस्याभावात् कथं तन्निबन्धनस्तत्र रूप्याद्यारोपः।यत इदं सूक्तं भवेत्, "शुक्तौ वा रजताकारो रूप्यसाधर्म्यदर्शना-दिति"। न च साधर्म्यादपरं सामान्यमपि तस्य नित्यव्यापिस्वभावस्य क्वचिदप्य-प्रतिवेदनात्। तद्विषयत्वेऽपि परामर्शवैकल्यादव्यवसायमेव प्रत्यक्षमिति चेन्न। नीलमिदं पतिमिदं इति तत्र परामर्शस्य प्रतिपत्तेः।प्रत्यक्षादन्य एव सः परामर्श इति चेन्न[3] स्पष्टत्वेन प्रतिभासनात्, स्पाष्ट्यमपि तत्र प्रत्यक्षप्रत्यासत्तेरध्या-रोपितमेव न वास्तवमिति चेत्, प्रत्यक्षस्य चैतन्यमप्यर्थान्तरचेतन-संसर्गादध्यारोपितमेव न वास्तवमिति किं न स्यात्?यतः सांख्य[4]मतस्यानभ्यु-पगमः प्रत्यक्षादिज्ञानव्यतिरेकेण चेतनस्याप्रतिपत्तेरिति चेत्।न।परामर्शव्यतिरेकेण प्रत्यक्षस्याप्रतीतेः।।36।।

बौद्ध कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान के व्यवसायात्मक होने पर प्रत्यक्ष को भी जो सम्यग्ज्ञान का ही भेद है, व्यवसायात्मक ही होना चाहिये किंतु वह व्यवसायात्मक नहीं है, उसके द्वारा अभिलाप संबद्ध अभिधेय का प्रतिपादन करने संबंधी अपने विषय को ग्रहण नहीं करने से।अभिलाप संबद्ध स्वविषय को ग्रहण करना ही व्यवसाय है।आचार्य कहते हैं कि अभिलाप संबद्ध स्वविषय को ग्रहण करने को ही व्यवसाय मानने पर व्यवसाय के ही अभाव का प्रसंग आ जायगा।अभिलाप का उसी के अन्तर्गत होनेवाले विषय से संबंध है, वहां व्यवसाय का अभाव है।स्मरण के द्वारा संकेतकाल की प्राप्ति वहां व्यवसायात्मकता हो जायगी, यह कहना भी ठीक नहीं है स्मरण के निर्विकल्प होने पर अभिलाप के विषय को स्वलक्षण के रूप में ग्रहण नहीं किये जाने से।व्यवसाय रूप होने पर उसके द्वारा भी अभिलाप संबद्ध ही स्वविषय को स्मरण किया जाना चाहिये उस अभिलाप को भी उसी प्रकार के स्मरण के द्वारा इस प्रकार अनवस्था का प्रसंग आयेगा।स्मरण को अभिलाप से असंबद्ध वस्तु को जानने पर भी व्यवसाय स्वभाव वाला मानने पर प्रत्यक्ष को भी व्यवसाय रूपता क्यों नहीं हो जायेगी?अभिलाप संबंध होने पर उसका व्यवसाय किससे जाना जायगा तो अभिलाप स्मरण का भी किससे जाना जायेगा।अभिलाप स्मरण के द्वारा शब्द सामान्य से संबद्ध योग्य विषय को ग्रहण करने से जाना जायगा तो प्रत्यक्ष में भी वस्तुसंबद्ध सामान्य को ग्रहण करने से ही जाना जायगा, प्रत्यक्ष के द्वारा भी वस्तुओं में सदृश रूप सामान्य का ज्ञान होने से।यदि सदृश परिणाम को असामान्य कहते हो तो शुक्तिका आदि में रजतादि की अपेक्षा साधर्म्यदर्शन का अभाव होने से साधर्म्य के कारण शुक्तिका में रजत का आरोप कैसे हो सकता है?जिससे कि यह कहा जाता है "शुक्तौ वा रजतकारो रूप्य

---

[1] वस्तुसंबद्धसामान्यग्रहणादेव।सदृशपरिणामस्यासामान्यत्वे।
[2] कल्पनः इति शेषः।
[3] जैनः।
[4] चेतनसंसर्गाच्चेतना बुद्धिरित्यस्य।

साधर्म्यदर्शनात्" साधर्म्यसे भिन्न तो कोई सामान्य है नहीं, नित्य व्यापी स्वभाव वाले सामान्य का कहीं वेदन नहीं होने से।सदृश परिणाम वाले सामान्य को जानने पर भी परामर्श रहित होने के कारण प्रत्यक्ष अव्यवसायात्मक ही है, यह कहना उचित नहीं है, यह नीला है, यह पीला है, इस प्रकार का प्रत्यक्ष में परामर्श की प्रतिपत्ति होने से।यह परामर्श प्रत्यक्ष से अन्य ही है ऐसा नहीं कह सकते।स्पष्ट रूप से प्रतिभास होने के कारण।स्पष्टता भी वहां प्रत्यक्ष की निकटता के कारण आरोपित ही है वास्तविक नहीं यदि यह कहते हो तो प्रत्यक्ष की चेतनता भी दूसरे चेतन के संसर्ग से आरोपित ही है वास्तविक नहीं, यह क्यों नहीं हो जायेगा? जिससे सांख्यमत का निराकरण हो कि चेतन की प्रतिपत्ति नहीं होने से यह कहना भी ठीक नहीं है परामर्श से भिन्न प्रत्यक्ष की प्रतिपत्ति नहीं होने से।।36।।

[1]विकल्पप्रतिसंहारवेलायां[2] तथैव तस्य प्रतिपत्तिरिति चेत्, न। सकलचित्तवृत्तिविकलवेलायां चेतनस्य तथैवानुभवात्, अत एव एवोक्तं[3] "तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थान" मिति श्रूयत एव केवलं तादृशी वेला न कदाचिदप्युपलभ्यत इति समानमितरवेलायामपि ततो यथा[4] प्रत्यक्षादेरन्यन्न[5] चेतनमनध्यवसितेः[6]। तथा तत एव न परामर्शादन्यत्प्रत्यक्षमपि। अत एव परामर्शात्मकत्वं स्पष्टत्वमेव मानसप्रत्यक्षस्य प्रतिपादितमलङ्कारे।।37।।

बौद्ध कहते हैं संपूर्ण विकल्पों का प्रतिसंहार होने के समय परामर्श रहित ही प्रत्यक्ष की प्रतिपत्ति होती है, यह कहना ठीक नहीं है, संपूर्ण चित्तवृत्तियों से रहित अवस्था में चेतन के परामर्शात्मक ही अनुभव होने से।इसलिए सांख्यो के द्वारा कहा है कि उस समय दृष्टा का अपने स्वरूप में अवस्थान हो जाता है (तदा दृष्टुः स्वरूपेवस्थानं) बौद्ध कहते हैं ऐसी अवस्था केवल सुनी जाती है, कहीं देखी नहीं जाती अतः अन्यसमय में भी समान ही है।अतः जैसे प्रत्यक्षादि से भिन्न चेतन नहीं है, उसी प्रकार उसी से परामर्श से भिन्न प्रत्यक्ष भी नहीं है।अतः अलंकार में परामर्शात्मक स्पष्टता ही मानस प्रत्यक्ष के लिए बताया गया है।।37।।

इदमित्यादि यज्ज्ञानमभ्यासात्पुरतः स्थितें।
साक्षात्करणतस्तत्र प्रत्यक्षं मानसं मतम्।।इति

"सामने स्थित वस्तु में इदं (यह) इत्यादि जो ज्ञान अभ्यास से होता है, उसका साक्षात् करने के कारण उसे मानस प्रत्यक्ष कहा गया है।

---

[1] बौद्धो वदति।
[2] "संहृत्य सर्वतश्चित्तं स्तिमितेनान्तरात्मना।स्थितोऽपि चक्षुषा रूपमीक्षते साऽक्षजा मति" रिति।
[3] सांख्यैरिति शेषः।
[4] यथा शब्देन दृष्टांतः परामृश्यते।
[5] भिन्नं।
[6] अनिश्चयात्।
[7] वस्तुनीति शेषः।

कथं[1] पुनर्व्यवसायात्मकत्वे प्रत्यक्षस्याश्वं विकल्पयतो गोदर्शनं व्यवसायेन गां पश्यतस्तत्र [2]तदन्यारोपस्यासंभवात्।[3] निश्चयारोपमनसोर्बाध्यबाधकभावादिति चेत्। तदा [4]दर्शनेनाश्वसाधर्म्यस्यैव गवि व्यवसायात्तत्र चारोपस्यानुपपत्तेर्विशे-षाकारे[5] तस्यारोपो न च तस्य व्यवसायः।कुतस्तर्हि तत्र तदारोप इति चेत् साधर्म्यनिर्णयादेव तस्य तदनुकूलतया प्रतीतेः। भवतस्तु[6] दुःपरिहर एवायं पर्यनुयोगः। ।38।।

बौद्ध कहते हैं–प्रत्यक्ष के व्यवसायात्मक होने पर घोड़े का विकल्प करते हुए गोदर्शन कैसे होता है।व्यवसाय (निश्चय) से गाय को देखते हुए गाय में अश्व का आरोप असंभव होने से, निश्चय ज्ञान और आरोपित ज्ञान में बाध्य बाधक भाव होने से।यह कहना ठीक नहीं है।उस समय गाय को देखने से अश्व साधर्म्य का ही गाय में निश्चय होने से, वहां आरोप के नहीं होने से (विशेषाकार) खंडमुंडाकार में उसका आरोप है, उसका निर्णय नहीं है।किस कारण गाय में अश्व का आरोप है यदि यह कहो तो साधर्म्य का निर्णय होने से गाय के अश्व समान प्रतीत होने से।बौद्ध कहते हैं कि तुम्हारा यह कथन भी समीचीन नहीं है।।38।।

मानसप्रत्यक्षेण नीलादिवत् क्षणक्षयादेरपि[7] निर्णये कथं तत्राक्षणिकत्वाद्यारोपो यतस्तद्व्यवच्छेदार्थमनुमा[8]नपरिकल्पनमिति।न च तस्य तेनानिर्णयो नीलादावपि तत्प्रसंगात्।असकलप्रतिपत्तेरनभ्युपगमात्[9]।।39।।

मानस प्रत्यक्ष से नीलादि के समान स्वर्गप्राप्ति आदि का भी निर्णय होने पर वहां अक्षणिकत्व आदि का आरोप क्यों किया गया, जिससे उसका निराकरण करने के लिए "सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्" इस अनुमान की कल्पना की गयी?मानस प्रत्यक्ष से स्वर्गप्राप्ति आदि का अनिर्णय नहीं है नीलादि में भी उसका प्रसंग आने से, बौद्धों के यहां वस्तुको निरंश मानने से असकल प्रतिपत्ति नहीं मानी गयी है।।39।।

न चास्माकं परामर्शभावेन प्रसिद्ध[10], मनोव्यवसायस्य विनापि तेनाव्युत्पत्त्यादिविरोधरूपतयैवोपपत्तेः। अतद्रूपस्य तु न प्रामाण्यं अविसंवाद-वैकल्यात्। तथाहि।यदविसंवादविकलं न तत्प्रमाणं, यथा अज्ञस्य विषदर्शनं,

---

[1] बौद्धो वदति।
[2] गवि अश्वोऽयमित्याद्यारोपस्य।
[3] निश्चयज्ञानारोपज्ञानयोः।
[4] गोरिति शेषः।
[5] खंडमुंडाकारे।
[6] बौद्धस्य मानसं प्रत्यक्षं व्यवसायात्मकमिति सौगतमतम्।
[7] स्वर्गप्रापणादि।
[8] सर्वं क्षणिकं सत्त्वादित्यादि।
[9] तस्माददृष्टस्य भावस्य दृष्ट एवाखिलो गुणः।अतेर्निश्चयते नेति साधनं संप्रवर्त्तते।इति बौद्धैर्वस्तुनो निरंशत्वाभ्युपगमात्।
[10] नित्यप्रसक्तं संबद्धमित्यर्थः।

तद्विकलं च सौगतपरिकल्पितं दर्शनमविसंवादो हि इत्थं गेयमित्थं चित्र[1]मित्यभिसन्धिकरणमेवा– "भिप्रायनिवेदनादविसंवादन"–मिति वचनात् न च तन्निवेदनमव्यवसायस्य, अज्ञविषदर्शनस्यापि तत्प्रसंगात् ।अव्यसायस्यापि[2] दर्शनस्य व्यवसायजननात्तन्निवेदनमिति चेन्न। अव्यवसायाद् व्यवसायस्य गर्दभादश्वस्येवा– नुपपत्तेः। व्यवसायवासनोन्मील[3]नेनाव्यवसायस्यापि व्यवसायहेतुत्वं दर्शनस्येति चेन्न ।तद्वदर्थस्यैव तद्धेतुत्वप्रसंगेन अन्तर्गडुनो[4] दर्शनस्याकल्पनापत्तेः। [5]व्यवसाय– हेतुत्वेन चाविसंवादित्वमौपचारिकमेव दर्शनस्य स्यात् ।मुख्यतः सन्निपत्याभिप्राय निवेदनेन व्यवसायस्यैव तदुपपत्तेः ।न च ततस्तस्य प्रामाण्यं। [6]सन्निकर्षादावपि तत्प्रसङ्गात् ।तत्तो युक्तमविसंवादवैकल्यादर्शनमप्रमाणमिति तदुक्तम् ।।40।।

हमारे यहां परामर्श भाव नित्यप्रसक्त नहीं है, परामर्श के बिना भी मनोव्यवसाय को अव्युत्पत्ति आदि के विरोधी रूप में ही होने से ।अव्युत्पत्ति आदि के अविरोधी होने पर उसको प्रमाणता नहीं है, अविसंवाद विकल होने के कारण ।कहा भी है– जो अविसंवाद से रहित है वह प्रमाण नहीं है जैसे अज्ञानी का विषदर्शन ।सौगतों द्वारा कल्पित दर्शन अविसंवाद रहित है।"इस प्रकार गाना चाहिये, इस प्रकार चित्र बनाना चाहिये, इस प्रकार का अभिप्रायनिवेदन नहीं है" ऐसा वचन होने से। अव्यवसाय का अभिप्रायनिवेदन नहीं है अन्यथा अज्ञानी के विषदर्शन को भी अभिप्राय निवेदन का प्रसंग आयेगा ।व्यवसायरहित दर्शन भी व्यवसाय को उत्पन्न करने के कारण अभिप्राय निवेदन करता है, यह नहीं कह सकते ।जैसे गधे से घोड़े की उत्पत्ति नहीं हो सकती। व्यवसाय की वासना को प्रकट करने के कारण अव्यवसायरूप दर्शन व्यवसाय का कारण है, यह कहना भी ठीक नहीं है ।इस प्रकार तो दर्शन के समान अर्थ को ही व्यवसाय के हेतु का प्रसंग आने से दर्शन की कल्पना निरर्थक ही हो जायगी ।फिर व्यवसाय का कारण होने से दर्शन को अविसंवादता औपचारिक ही होगी, मुख्यतः अभिप्राय निवेदन करने के कारण व्यवसाय को ही अविसंवादित्व होगा ।औपचारिकरूप से अविसंवादिता होने से दर्शन को प्रमाणता नहीं हो सकती ।यदि औपचारिक रूप से अविसंवादित्व के कारण दर्शन को प्रमाण माना जायगा तो सन्निकर्ष आदि में भी प्रमाणता का प्रसंग आयेगा।।40।।

विषदर्शनवत् सर्वमज्ञस्यां कल्पनात्मकम्।
दर्शनं न प्रमाणं स्यादविसंवादहानितः।।1।।इति

अतः ठीक ही कहा है कि अविसंवाद रहित होने के कारण दर्शन अप्रमाण है ।कहा भी है—

---

[1] अभिप्रायकरणमेव।
[2] वसः, दर्शनस्येत्यर्थः।
[3] प्राकट्येन।
[4] निरर्थकस्य।
[5] अव्यवधानेन।
[6] अन्यथेति शेषः।
[7] अव्यवसायात्मकम्।

अज्ञानी के विष दर्शन के समान अविसंवाद रहित होने के कारण अव्यवसायात्मक दर्शन प्रमाण नहीं है।

प्रामाण्याभावे च दूरतः प्रत्यक्षत्वं, तस्य तद्विशेषत्वेन तदभावेऽनुपपत्तेरतः प्रत्यक्षाभासं तदिति प्रतिपत्तव्यं ।।41।।

प्रमाणता नहीं होने पर प्रत्यक्षता तो दूर ही है। दर्शन को प्रमाणता के अभाव में प्रमाण विशेष प्रत्यक्षत्व नहीं होने से वह प्रत्यक्षाभास है, यह जानना चाहिये।।41।।

भवतु तर्हीन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षः प्रत्यक्षं, वस्तुसाक्षात्करणस्य सर्वत्र तत एव भावादिति चेन्न। तस्याचेतनतया वस्तुप्रमितौ साधकतमत्वानुपपत्त्या प्रामाण्यस्यैव प्रतिक्षेपात्। न च ततः एव साक्षात्करणं विषयस्य, तदभावेपि चक्षुषा घटस्य तत्प्रतिपत्तेः। अस्त्येव चक्षुषस्तद्विषयेण सन्निकर्षः, प्रत्यक्षस्य तत्रासत्वेऽप्यनुमानतस्तदवगमात्। तच्चेदमनुमानं, चक्षुः सन्निकृष्टमर्थं प्रकाशयति बाह्येन्द्रियत्वात्स्पर्शनादिवत्। इतिचेत्, अत्र न तावद्गोलकमेव चक्षुस्तद्विषयसन्निकर्षप्रतिज्ञानस्य प्रत्यक्षेण बाधनात्तेन तत्र तदभावस्यैव प्रतिपत्तेर्हेतोश्च तद्बाधितकर्मनिर्देशानन्तरं प्रयुक्ततया कालात्ययापदिष्टतोपनिपातात्। न तन्मात्रं चक्षुस्तद्रश्मिकलापस्य तत्त्वात्तस्य च रश्मिपरीतं चक्षुस्तैजसत्वात् प्रदीपवदित्यतस्तैजसत्वस्यापि तैजसं चक्षुः रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात्तद्वदित्यनुमानतोऽवगमादिति चेत्। किं पुनरत्र चक्षुर्यत्र तैजसत्वं साध्यं? न गोलकमेव तस्यरूपप्रकाशकत्वासिद्धेः, रश्मिपरिकल्पनावैफल्यप्रसंगात्। रश्मिपरिकरितमिति चेन्न, तस्याद्याप्यसिद्धत्वेन रूपादीनामित्यादेर्हेतोराश्रयासिद्धदोषात्। व्यभिचारी चायं हेतुः—स्वच्छजलेन तस्य तदन्तर्गतरूपमात्रप्रकाशत्वेऽपि तैजसत्वाभावान्न तैजसत्वाद्रश्मिवत्वं चक्षुषः।।42।।

तब इन्द्रिय और अर्थ का सन्निकर्ष प्रत्यक्ष है, सब जगह वस्तु का साक्षात्कार सन्निकर्ष से ही होने से। आचार्य कहते हैं यह कथन समीचीन नहीं है। इन्द्रिय के अचेतन होने के कारण वस्तु की प्रमिति में साधकतम नहीं होने से उसकी प्रमाणता का ही निराकरण किया जाने से। इन्द्रिय सन्निकर्ष से ही विषय का साक्षात्कार नहीं होता, सन्निकर्ष के अभाव में भी चक्षु के द्वारा पट की प्रतिपत्ति होने से। यदि यह कहो कि चक्षु का उसके विषय के साथ सन्निकर्ष होता ही है, प्रत्यक्ष से सन्निकर्ष का ज्ञान न होने पर भी अनुमान से उसको जाना जाने से। यह अनुमान भी है—चक्षु सन्निकृष्टअर्थ को प्रकाशित करता है, बाह्येन्द्रिय होने के कारण स्पर्शन आदि इन्द्रियों के समान। तो चक्षु क्या है? गोलक को तो चक्षु कह नहीं सकते उसका विषय के साथ सन्निकर्ष होता है इस प्रतिज्ञा की प्रत्यक्ष से बाधा होने से, प्रत्यक्ष से अर्थ के साथ उसके सन्निकर्ष के अभाव की ही प्रतिपत्ति होने से। प्रत्यक्ष से सन्निकर्ष के अभाव का प्रतिपादन करने के बाद प्रयुक्त होने के कारण हेतु को

---

[1] तस्य विषयेण सह सन्निकर्षप्रतिज्ञानस्य, चक्षुः सन्निकृष्टमर्थं प्रकाशयतीति प्रतिज्ञाया इत्यर्थः।

[2] विषयकथनपश्चात्।

[3] अतोऽनुमानात्।

[4] तदसिद्धौ तैजसत्वासिद्धिः, तदसिद्धौ च रश्मिपरिकल्पितत्वस्यासिद्धिः।

[5] चक्षुः।

कालात्यापदिष्टता का प्रसंग आता है।यदि यह कहो कि गोलक मात्र चक्षु नहीं है, चक्षु तो रश्मि समूह को चक्षु होने से, अनुमान भी है "रश्मिपरीतं चक्षुस्तैजसत्वात्प्रदीपवत्" तैजसत्व के लिए भी अनुमान है– तैजसं चक्षुः रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात्तद्वत् इस अनुमान से ज्ञात होने से।तो यह बताओ कि चक्षु क्या है? जिसमें तैजसत्व को सिद्ध करना है– गोलक तो है नहीं गोलक के रूप प्रकाशकत्व की असिद्धि होने से, रश्मि की कल्पना को भी विफल होने का प्रसंग होने से।रश्मि से युक्त चक्षु चक्षु है यह कहना भी ठीक नहीं है, उसके अभी तक सिद्ध नहीं होने से रूपादीनां मध्ये इत्यादि हेतु को आश्रयासिद्ध के दोष होने से।यह हेतु व्यभिचारी भी है।स्वच्छ जल से चक्षु के जल के अन्तर्गत रूप मात्र का प्रकाशक होने पर भी तैजसत्व का अभाव होने से तैजसत्व के कारण चक्षु को रश्मिवत्व नहीं सिद्ध होता।।42।।

अरश्मिवता[1] कुतो न तेन व्यवहितस्यापि ग्रहणमप्राप्तेरविशेषात्? रश्मिवतापि[2] कुतो न स्वसन्निकृष्टस्यांजनादे[3]रंजनशलाकादेः प्रदीपादिनैव ग्रहणं प्राप्तेर[4]भेदात्?तथा स्वाभाव्यात्, इति समानमन्यत्रापि समाधानम्।ततो गोलकमेव केवलं चक्षुर्नच तस्य विषयसंनिकर्ष।इति सिद्धम् विनापि तेन तद्विषयस्य साक्षात्करणं। तथा सुखादेरपि। तद्वेदनमपि संनिकर्षजमेव वेदनत्वात् घटादिवेदनवत्। सन्निकर्षोऽपि तत्र संयुक्तसमवायो मनः संयुक्ते आत्मनि सुखादेः समवायादिति चेन्न। दृष्टान्तस्य साध्यवैकल्यात्तत्र सन्निकर्षाभावस्य निरूपितत्वात् ।।43।।

बौद्ध कहते है अरश्मिवान चक्षु के द्वारा आवृत वस्तु का भी ग्रहण क्यों नहीं होता अप्राप्ति के समान रूप से होने से।आचार्य कहते हैं कि यदि रश्मियुक्त चक्षु है तो वह अपने से सन्निकृष्ट अंजन तथा अंजनशलाका आदि को क्यों नहीं जानता प्रदीपादि के समान दोनों में प्राप्ति का कोई भेद नहीं होने से।यदि यह कहो कि उसका ऐसा ही स्वभाव होने के कारण तो यह समाधान तो अन्यत्र भी समान रूप से ही है।अतः गोलक ही चक्षु है और उसका विषय के साथ सन्निकर्ष नहीं होता।अतः सिद्ध है कि इन्द्रिय का विषय के साथ सन्निकर्ष हुए बिना भी विषय का साक्षात्कार होता है।इसी प्रकार सुखादि का भी।विपक्षी कहते हैं कि सुखादि का वेदन भी सन्निकर्ष से ही होता है।वेदन होने के कारण घटादि के समान।सुखादि के वेदन में संयुक्त समवाय सन्निकर्ष है मन आत्मा से संयुक्त है और आत्मा में सुखादि का समवाय है, आचार्य कहते हैं– यह कहना उचित नहीं है "घटादिवत्" यह दृष्टांत साध्यविकल है, घटादि के वेदन में सन्निकर्ष के अभाव का निरूपण किया जाने से।।43।।

अपि च यदि तद्वेदनादनर्थान्तरं सुखादिर्न तर्हि तेन मनसः संनिकर्षः ततः पूर्वं तस्यैवाभावात्। वेदनसमये भावेऽपि व्यर्थस्तत्संनिकर्षस्तस्य

---

[1] यौगो वदति।

[2] सिद्धान्ती प्राह।

[3] प्रदीपाग्रकज्जलरेखादेः।

[4] यथा घटादौ प्राप्तिस्तथांऽजनादावपीति प्राप्त्यभेदः।

वेदनार्थत्वात्[1]। तस्य च ततः प्रागेवोत्पत्तेः। अर्थान्तरमेव ततः सुखादिरतः प्रागपि तस्य भाव इति चेत्, स यद्यनुभवरहितस्यैव सकलतत्पूर्वसमयेऽपि भाव,इति न [2]चन्दनदहनादेस्तस्योत्पत्तिः शक्यावकॢप्तिः[3]। अनुभवसहितस्यैवेति चेन्न तर्हि तस्मादिन्द्रियसंनिकृष्टादुत्पत्तिस्तद्वेदनस्य समसमयभावित्वात्। अनुभवविरूद्धं च सुखादेस्तद्वेदनादर्थान्तरत्वं स्वसंवेदनरूपस्यैव तस्यानुभवात। कथं[4] तर्हि तद्वेदनस्य प्रामाण्यमात्मवेदनमात्रस्य तदनभ्युपगमात्[5]।"अर्थात्मवेदनं न्याय[6] प्राहु" रित्युक्तत्वादिति चेन्न। अनुग्रहपीडादिरूपेण तस्य तद्वेदनात्कथंचिदर्थान्तरस्यापि भावा[7]दैकान्तिकस्यैव ..... तत्तस्तद्वेदनस्य ..... उक्त ..... तदनुभवाभावेन प्रत्याख्यानादित्युपपन्नमव्यापकत्वं संनिकर्षस्य। तदभावे घटादौ सुखादौ च प्रत्यक्षस्योक्तयोपपत्त्या व्यवस्थापनात्। यदि च संनिकर्षस्य प्रत्यक्षत्वं तर्हि चक्षुषः रूपवद्रसादेरपि ग्रहणप्रसंगस्तस्य तत्रैवेत्ररत्रापि संयुक्तसमवायेन संनिकर्षात्, तद्विशेषस्यामावात्।नो चेत्तस्यैव तर्हि प्रत्यक्षत्वं, सति तस्मिन्विषयसंवित्तेर्नियमात्।न संनिकर्षस्य विपर्ययादित्यनुपपन्नं तल्लक्षणत्वं प्रत्यक्षस्य।।44।।

और यदि सुखादि के वेदन से सुखादि अभिन्न हैं तो उसका मन से सन्निकर्ष नहीं होगा, वेदन से पूर्व सुखादि का ही अभाव होने से।वेदन के समय सुखादि के होने पर भी उसका सन्निकर्ष व्यर्थ ही होगा उसके वेदन को उत्पन्न करने वाला होने से, वेदन से पूर्व ही उसकी उत्पत्ति होने से।वेदन से सुखादि भिन्न ही हैं, अतः वेदन से पूर्व भी वह रहता है यदि यह कहते हो तो यदि अनुभव रहित के भी संपूर्णपूर्व समय में भी वह रहता है तो फिर चंदन से सुख की और अग्नि से दुःख की उत्पत्ति की कल्पना नहीं की जा सकती।यदि अनुभव सहित को ही पहले से सुखादि होता है।तो फिर इन्द्रिय सन्निकर्ष से उसकी उत्पत्ति नहीं होगी सुखादि और सुखादि के वेदन को समसमय वाला होने से।सुखादि का सुखादि के वेदन से भिन्न होना अनुभवविरूद्ध भी है, सुखादि को स्वसंवेदन रूप ही अनुभव किया जाने से।अन्यमत वाले कहते हैं फिर उस ज्ञान को प्रमाण कैसे माना जा सकता है? क्योंकि जैनों के द्वारा केवल स्व को जानने वाले ज्ञान को प्रमाण नहीं माना गया है।उनके द्वारा *"अर्थात्मवेदनं न्यायंप्राहुः"* ऐसा कहा गया है।आचार्य कहते हैं—यह कहना भी ठीक नहीं है।अनुग्रह, पीडा आदि के रूप में सुखादि को उसके वेदन से कथंचित् भिन्न भी माना गया है, एकांत रूप से ही वेदन से सुखादि की भिन्नता का इस प्रकार के अनुभव का अभाव होने से निराकरण किया गया है।अतः सन्निकर्ष की अव्यापकता सिद्ध हुई।सन्निकर्ष के अभाव में घटादि में तथा सुखादि में भी प्रत्यक्ष की ऊपर कहे अनुसार व्यवस्थापना होने से।यदि सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष मानते हो तो चक्षु से रूप के समान रसादि के भी ग्रहण का प्रसंग आयेगा।चक्षु का रूप के समान रसादि में भी

---

[1] उत्पादकत्वात्।
[2] द्वंद्वसमास कार्यः, चदनात्सुखस्य दहनात्—अग्नेः दुःखस्य।
[3] शक्यया कल्पना।
[4] अन्यः प्राह।
[5] जैनैः।
[6] प्रमाणम्।
[7] एकांतेन निश्चयेन भवः तस्यैकांतिकस्य।

संयुक्त समवाय सन्निकर्ष होने से, कोई विशेषता नहीं होने से।यदि चक्षु से रसादि का ग्रहण नहीं होता तो अन्तर्मल विश्लेष से होने वाली विशुद्धिविशेष रूपी स्पष्टता को ही प्रत्यक्षत्व सिद्ध होता है उसके होने पर ही विषय के ज्ञान का नियम होने से।सन्निकर्ष प्रत्यक्ष नहीं है विपर्यय होने से।अतः इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं है।।44।।

यत्पुनर्मीमांसकस्य मतं "इन्द्रियविषयसंप्र[1]योगादुत्पन्नं ज्ञानं प्रत्यक्षं" इति, तदपि न युक्तम्। संप्रयोगस्य संनिकर्षार्थत्वे नैयायिकवद्दोषात्। यदि चेन्द्रिय-सन्निकर्षात्तदवाच्छिन्न एवात्मप्रदेशे ज्ञानं, तर्हि तदपेक्षया पर्वतादेः प्रत्यासन्न[2]-त्वात्तत्रकिमपेक्ष्य दूरादिप्रतिपत्तिः। गोलकाधिष्ठानं शरीरमपेक्ष्येति चेन्न, तस्या[3]सन्निकृष्टतया तज्ज्ञा[4]नेनाग्रहणात्। नचागृहीते तस्मिंस्ततोऽयमतिदूर इति भवति प्रतीतिः[5]अन्तरेणापि संनिकर्षं तस्य ग्रहणे पर्वतादेरपि स्यादिति न युक्तं तत्र तत्कल्पनं।गोलकाधिष्ठान एवात्मप्रदेशे ततस्त[6]ज्ज्ञानमिति चेत्कथमिन्द्रिया-ग्रवर्तिनस्तस्मात्तन्मूलगते तत्र विषय[7]ज्ञानमिन्द्रियान्तरेष्वेवमदर्शनात्[8]। तत्रादृ[9]ष्टस्यापि चक्षुष्किल्पनायां वरमप्राप्यकारित्वमेव कल्पितमप्राप्यकारिण एव गोलकस्य प्रतीतेः।।45।।

मीमांसक का यह कथन कि इन्द्रियों का अर्थ में व्यापार होता हैउससे उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है, यह भी ठीक नहीं है।इन्द्रियव्यापार का अर्थ के साथ सन्निकर्ष मानने पर भी सन्निकर्ष के समान ही दोष होने से।यदि इन्द्रिय का सन्निकर्ष होने से उससे भिन्न आत्मप्रदेश में ही ज्ञान होता है तो आत्मा के सर्वव्यापी होने के कारण उसकी अपेक्षा पर्वत आदि के निकट होने से किस अपेक्षा से पर्वतादि के दूरादि का ज्ञान होता है।गोलक से युक्त शरीर की अपेक्षा से यह नहीं कह सकते, उसके सन्निकृष्ट नहीं होने के कारण सन्निकर्ष ज्ञान से उसका ग्रहण नहीं होने से।उसके ग्रहण नहीं होने पर भी उससे यह बहुत दूर है, ऐसी प्रतीति नहीं होती।सन्निकर्ष के बिना भी विषय का ग्रहण होने पर पर्वतादि का भी ग्रहण हो जायगा, अतः वहां सन्निकर्ष की कल्पना करना ठीक नहीं है।गोलक में स्थित आत्मप्रदेश में ही इन्द्रिय व्यापार से विषय का ज्ञान होता है, यदि यह कहो तो इन्द्रिय के अग्रभाग में रहने वाले गोलक से उसके अंदर रहनेवाले आत्मप्रदेश में विषय का ज्ञान कैसे होगा?दूसरी इन्द्रियों में ऐसा नहीं देखा जाता।दूसरी इन्द्रियों में ऐसा न देखे जाने पर भी चक्षु में उसकी कल्पना करने की अपेक्षा उसको अप्राप्यकारित्व की कल्पना ही ठीक है, गोलक के अप्राप्यकारी होने की ही प्रतीति होने से।।45।।

---

[1] इन्द्रियाणामर्थे व्यापारः, तत्प्रगुणतयाऽवस्थानं, कार्याऽवसेया शक्तिर्वासंप्रयोगः।
[2] आत्मनः सर्वगतत्वात्।
[3] संनिकर्षाभावेन।
[4] सन्निकर्षज्ञानेन।
[5] विनेत्यर्थः।
[6] विषयज्ञानं।
[7] अर्थज्ञानं।
[8] अनुपलब्धेः।
[9] अनुपलब्धस्यापि विषयज्ञानस्य।

न च गोलकं चक्षुस्तद्रश्मिप्रसरस्य तत्त्वादिति चेत्, कथं तर्हि चक्षुरर्थस्य[1] चिकित्साविधेर्गोलके करणमन्यार्थस्यान्यत्र तदनुपपत्तेः। चक्षुरर्थस्य पादे कथमभ्यङ्गस्य करणमिति चेन्न, पादाभ्यक्तस्य स्नेहस्य तन्नाडीरन्ध्रद्वारेण चक्षुरवाप्तस्य तदुपकारित्वात्। न चैवं गोलकाभ्यक्तस्यांजनादेस्तद्बहिर्गतरश्मि प्रसरावाप्तिस्तदनुपलंभात्। न च शक्योपलंभस्यानुपलब्धिर[2]लक्षणाभावं संभवति, तत्र संप्रयोगस्य संनिकर्षार्थत्वम्।।46।।

गोलक चक्षु नहीं है, उसकी किरणों के चक्षु होने से यदि ऐसा कहते हो तो फिर चक्षु के लिए की जानेवाले चिकित्सा में गोलक में क्यों चिकित्सा की जाती है?अन्य के प्रयोजन से की जानेवाली चिकित्सा अन्यत्र नहीं की जाती।आँखों के लिए पैर में मालिश क्यों की जाती है?यह कहना भी ठीक नहीं है।पैर में मालिश किये जानेवाले तेल के उसकी नाड़ी के छिद्रो द्वारा चक्षु में पहुंचने से उसके चक्षु के लिए उपकारी होने से।इस प्रकार गोलक में लगाये जाने वाले अंजन आदि की उसके बाहर रहने वाले किरणों को प्राप्ति नहीं होती है ऐसा उपलब्ध नहीं होने से।जहां उपलब्धि संभव है वहां उसका अभाव हुए बिना अनुपलब्धि नहीं होती।अतः इन्द्रिय व्यापार का अर्थ से संबंध नहीं होता।।46।।

अनुकूलमर्थत्वमिति चेत्, [3]स्यान्मतं।ग्रहणानु[4]कूल्येनावस्थानमेव विषय विषयिणोः संप्रयोग इति तन्न, विषयानुकूल्यग्रहणं प्रत्यनुपयोगात्[5]।अन्यथा तद्रहितस्य द्विचंद्रादेरग्रहणप्राप्तेः।असतस्तद्रहितस्यापि ग्रहणं न सत इति च विभागपरिकल्पनस्य निर्बन्धनत्वात्[6]।तत्र संप्रयोगस्यापि प्रत्यक्षत्वं।।47।।

यदि अनुकूल विषय को इन्द्रियवृत्ति ग्रहण करती है तो माना जा सकता है।ग्रहण करने की योग्यता के कारण ही विषय विषयी का संबंध स्थापित किया जाता है, यह भी ठीक नहीं हैं अनुकूलविषयता का ग्रहण के प्रति कोई उपयोग नहीं होने से।यदि ऐसा नहीं मानोगे तो अनुकूल विषयता से रहित द्विचन्द्रादि का ग्रहण नहीं हो सकेगा।विषयानुकूलता के बिना भी असत् का ग्रहण हो जाता है सत् का नहीं इस प्रकार के विभाग की कल्पना भी निरर्थक ही है।अतः इन्द्रिय व्यापार भी प्रत्यक्ष नहीं है।।47।।

भवतु व्यवसायस्यैव विषयाकारपरिणतिविशेषात्मनो बुद्धिव्यापारस्य प्रत्यक्षत्वं, प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टमितिवचनाद्, दृष्टमितिच प्रत्यक्षस्याभिधानादिति चेन्न। विषयाकारपरिणामे बुद्धेर्दर्पणादिवदेव तस्याः प्रामाण्यान्मूर्त्तत्वेना चेतनत्वापत्तेः। अचेतनैव बुद्धिरनित्यत्वात्कलशादिवदिति चेत्। कथमिदानीं दर्पणा दिवदेव तस्याः प्रामाण्यं यतस्तद्व्यापारविशेषस्य प्रत्यक्षत्वं, तस्य तद्विशेषत्वेन

---

[1] चक्षुर्निमित्तस्य।
[2] अभावं विनेति भावः।
[3] जैनो वदति।
[4] ग्रहणयोग्यतया।
[5] अर्थानिमित्तकत्वात्।
[6] निःकारणत्वात्।

तदभावेऽनुपपत्तेः।चेतनसंपर्काच्चेतनैव बुद्धिरिति चेत्।कुतो न दर्पणादिरप्येवं? चेतनस्य व्यापकत्वेन तत्संपर्कस्य तत्रापि भावात्।बुद्धावेव तद्विशेषस्य भावादिति चेत्।स कोऽपरोऽन्यत्र तत्स्वाभाव्यादिति चेतनात्मैव बुद्धिः।न चैवं तत्र विषयाकारकल्पनमुपपन्नं मूर्त्तत्वाभावात्, मूर्त्तेषु एव दर्पणादिषु मूर्त्तमुखाद्याकारस्योपलंभादिति न [1]तदाकारस्य[2] व्यवसायत्वेन प्रत्यक्षत्वकल्पनमुपपत्तिमत्। कुतो वा बुद्धेरन्यस्य चेतनस्य भावे तत एव न विषयप्रतिपत्तिर्यतो बुद्धेस्त दर्थान्तरस्य कल्पनं। बुद्धिकरणकादेव ततस्तत्प्रतिपत्तिकरणस्य तत्र तदव्यापारस्यासंभवात्ततो बुद्ध्यध्यवसितं [3]बुद्धिप्रतिसंक्रान्तमेव चेतनः [4]प्रतिपद्यते ततो युक्तमेव तत्कल्पनं साफल्यादिति चेन्न।[5]बुद्ध्यप्रतिपत्तौ तत्प्रतिसंक्रान्तमुख प्रतिपत्तेरप्रतिपत्तेः। तत्प्रतिपत्तिश्च यदि बुद्ध्यन्तरप्रतिसंक्रमद्वारेण, भवत्यनवस्थानं, तदन्तरस्यापि तदपरतत्प्रतिसंक्रमद्वारेणैव प्रतिपत्तेः।अतद्वारायां तु प्रतिपत्तौ विषयप्रतिपत्तेरपि बुद्धिप्रतिसंक्रमनिरपेक्षाया एवोपपत्तेः कथं न व्यर्थैव बुद्धिपरि कल्पना भवेत्। बुद्धेर्विषयप्रतिपत्तिवत् स्वप्रतिपत्तावपि स्वयमेव करणत्वादुपपन्नं तत्प्रतिपत्तेस्तदन्तरप्रतिसंक्रमनिरपेक्षणं।न चैवं विषयप्रतिपत्तेर्विषयस्य ग्राह्यतया कर्मत्वेन स्वप्रतिपत्तौ करणत्वानुपपत्तेरिति चेत्, कथमिदानीं बुद्धेरपि तत्प्रतिपत्तौ करणस्यकर्मत्वं यतस्तद्ग्राह्यता भवेत्, कर्मणः करणत्ववत् करणस्यापि कर्मत्वानुपपत्तेः।बुद्धावु[6]भयधर्मोपपत्तौ विषयेऽपि स्यादविशेषात्।विषयस्य स्वप्रतिपत्तिकरणत्वे सर्वोपि विषयः सर्वस्य प्रतिपन्न एव भवेत्तत्प्रतिपत्तिकरण भावस्य सर्वत्र तत्र भावादिति चेन्न, बुद्धावप्येवं प्रसंगात्।।४३।।

इन्द्रिय व्यापार को प्रत्यक्ष न मानो किंतु विषयाकार परिणति विशेषात्मक बुद्धि का व्यापार रूप व्यवसाय ही प्रत्यक्ष है।"विषय के प्रति अध्यवसाय ही प्रत्यक्ष है" ऐसा वचन होने से।"दृष्ट" यह प्रत्यक्ष के लिये कहा गया है, ऐसा नहीं कह सकते।बुद्धि के विषयाकार परिणाम होने पर दर्पणादि के समान ही उसकी प्रमाणता होने से मूर्तता के कारण उसके अचेतनत्व का प्रसंग हो जायगा।यदि यह कहो कि बुद्धि अचेतन ही है अनित्य होने से कलशादि के समान तो दर्पण आदि के समान ही बुद्धि की प्रमाणता कैसे सिद्ध होगी, जिससे उसके व्यापार विशेष को प्रत्यक्षत्व हो, प्रमाणता के बिना प्रमाण विशेष नहीं होने से।चेतन के संसर्ग से बुद्धि चेतन ही है ऐसा कहते हो तो दर्पण आदि भी चेतन के संपर्क से चेतन क्यों नहीं हो जायेंगे?चेतन के व्यापक होने से उसका संपर्क दर्पण में भी होने से।बुद्धि में ही यह विशेषता होती है यदि यह कहते हो तो वह उसके स्वभाव के अतिरिक्त अन्य कौन है?अतः बुद्धि चेतनात्मा ही है।

इस प्रकार बुद्धि में विषयाकार की कल्पना भी नहीं उत्पन्न होती, बुद्धि के मूर्त नहीं होने के कारण, मूर्त दर्पण आदि में ही मूर्त मुखादि आकार की प्राप्ति होने से।अतः तदाकार को व्यवसाय होने के कारण प्रत्यक्षत्व की कल्पना नहीं हो सकती।बुद्धि से भिन्न चेतन के होने पर

---

[1] सांख्यो वक्ति।
[2] बुद्धिव्यापारस्य।
[3] बुद्धिप्रतिबिंबितमेव विषयं।
[4] जानाति।
[5] प्रतीता अप्रतीता वेति विकल्पद्वयं कल्पयन्नाह।
[6] कर्मत्वकरणत्वे।

उससे ही विषय की प्रतिपत्ति क्यों नहीं हो जायगी, जिससे चेतन से भिन्न बुद्धि की कल्पना की जाय।बुद्धि व्यापार से ही चेतन के विषय की प्रतिपत्ति करने से चेतन में विषय प्रतिपत्ति का व्यापार नहीं होने से बुद्धि से निश्चित किये हुए और बुद्धि में प्रतिबिंबित विषय को ही चेतन जानता है, अतः बुद्धि की कल्पना उचित ही है, सफलता होने से यह कहना भी ठीक नहीं है।बुद्धि की प्रतिपत्ति नहीं होने पर उसमें प्रतिबिंबित विषय की भी प्रतिपत्ति नहीं हो सकेगी। दर्पण की प्रतिपत्ति नहीं होने पर उसमें प्रतिबिंबित मुख की प्रतिपत्ति नहीं होने से।यदि बुद्धि की प्रतिपत्ति दूसरी बुद्धि में उसके प्रतिबिंबित होने से कहो तो अनवस्था हो जायेगी।क्योंकि उस दूसरी बुद्धि को भी दूसरी बुद्धि में प्रतिबिंबित होने से ही प्रतिपत्ति होने से।यदि दूसरी बुद्धि के बिना ही बुद्धि की प्रतिपत्ति होती है तो विषय की प्रतिपत्ति भी बुद्धि में प्रतिबिंबित होने की अपेक्षा के बिना ही हो जायगी फिर बुद्धि की कल्पना व्यर्थ क्यों नहीं हो जायगी।बुद्धि के विषय के ज्ञान के समान अपने ज्ञान में भी स्वयं कारण होने से सिद्ध हो जाता है कि उसका ज्ञानअन्य बुद्धि में प्रतिबिंबित होने की अपेक्षा नहीं रखता।

ऐसा नहीं है--विषय की प्रतिपत्ति में विषय के ग्राह्य होने से कर्मत्व होने के कारण स्वयं का ज्ञान करने से वह करण नहीं हो सकेगा यदि ऐसा कहते हो तो फिर बुद्धि को भी उसके ज्ञान के लिए करण को कर्मत्व होगा, जिससे यह ग्राह्य हो सके , जिस प्रकार कर्म करण नहीं हो सकता, उसी प्रकार करण भी कर्म नहीं हो सकता।यदि बुद्धि में कर्मत्व और करणत्व दोनों धर्ममानते हो तो विषय में भी दोनों धर्म हो जायेंगे, समान होने से।विषय भी यदि अपना ज्ञान स्वयं करने लगेंगे तो सभी विषय सभी के द्वारा ज्ञात हो जायेंगे जानने का भाव सर्वत्र होने से ऐसा नहीं कह सकते, बुद्धि में भी यह प्रसंग आने से।।49।।

अथ या यस्य बुद्धिः सैव तस्य तत्प्रतिपत्तौ करणं नापरा तदयमदोष इति। यस्येति[1] कुतः?कुश्चित्प्रत्यासत्तिविशेषादिति चेन्न, विषयेऽपि तुल्यत्वात्। तस्यापि हि यो यस्य प्रत्यासन्नः स एव तस्य तत्प्रतिपत्तौ करणं नापर इति वक्तुं शक्यत्वात्।सर्वोपि सर्वात्मानं प्रति प्रत्यासन्न एवात्मनो व्यापकत्त्वेन सर्वत्र तत्र भावादित्यपि समानं बुद्धिष्वपि। तत्र विषयप्रतिपत्तौ विषयवद्बुद्धेरपि करणत्वमिति[2] न तद्व्यापारस्य प्रत्यक्षत्वं, प्रागुक्तस्य सम्यग्ज्ञानस्यैव स्पष्टावभासिनस्तदुपपत्तेः।।49।।

यदि यह कहो कि जो जिस की बुद्धि है, वही उसके जानने में साधन है, दूसरी नहीं अतः कोई दोष नहीं है तो यह कैसे कहा?किसी निकटता के कारण यह नहीं कह सकते विषय में भी यह बात समान होने से।उसके लिए भी यह कहा जा सकता है कि जो जिसके निकट है, वह ही उसकी प्रतिपत्ति में करण है दूसरा नहीं।सभी सभी के निकट हैं आत्मा के व्यापक होने से सर्वत्र सब के होने से, यह बात बुद्धि में भी समान है।अतः विषय जैसे विषय का ज्ञान नहीं कर सकता , उसी प्रकार बुद्धि भी स्वयं को नहीं जान सकती।अतः बुद्धि के व्यापार को प्रत्यक्ष नहीं कह सकते, पूर्व में कहे गये स्पष्टावभासी सम्यक्त्व को ही प्रत्यक्षत्व होने से।।49।।

[1] स्याद्वादी आह।

[2] बुद्धेरतत्त्वाभ्युपगमादिति शेषः।

अथ प्रत्यक्षस्य भेदद्वयवर्णनं विधीयते।
अब प्रत्यक्ष के दो भेदों का वर्णन करते हैं।

तच्च प्रत्यक्षं द्विविधं, सांव्यवहारिकं मुख्यं चेति। सांव्यवहारिकमपि द्विविधं, इन्द्रियप्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षं चेति।तत्रेंद्रियस्य चक्षुरादेः कार्यं यद्बहिर्नीलादिसंवेदनं तदिन्द्रियप्रत्यक्षम्।कथं[1] पुनस्तस्य विषयनियमः?कथं[2] च न स्यात्? संवेदनात्मना नीलादिवत्तदपरनिरवशेषविषयापेक्षयाऽपि तस्य [3] तुल्यत्वादिति चेन्न, शक्तिनियमतस्तदुपपत्तेः।नियतशक्तिका हि संवित्तयः [4]स्वहेतुसामर्थ्यादुपजायंते संसारिणामतो नियतस्यैव विषयस्य प्रतिपत्तिर्न सर्वस्य। [5]यावन्नियतशक्तिकत्वात्तत्र विषयनियमं[6]स्तावन्नियतविषयसारूप्यादेवेति[7] कुतो न भवेत्।[8]भवति हि नीलसारूप्ये संवेदनस्य नीलस्यैवेदं संवेदनं न पीतादेरिति तन्नियम, इति चेत्, किं पुनस्तस्य तत्सारूप्यं? न तावत्सदादिरूपं तस्यापिसर्वत्र साधारणत्वेन नियामकत्वानुपपत्तेः। नीलरूपमेव तदिति चेन्न।तस्य बहिरेव दर्शनान्न संवेदने, तस्या[9]न्तरत[10]द्रूपस्यैवोपलंभात्।प्रतिपादितश्च तस्य संवेदनबहिर्भावः पुरस्तात्। कुतो न वा नीलसंवेदनं नीलेनैव पीतादिनाऽपि [11]संरूपं?तस्यैव तत्कारणत्वादिति चेत्, किं न चक्षुरादिनापि तस्यापि तद्धेतुत्वाविशेषत्। नीलानुकरण एव तस्य शक्तिरिति चेत्, व्यर्थमिदा[12]नीं तत्र तत्सारूप्यं, शक्तित एव नियमवत्या विषयनियमोपपत्तेः। एवं हि पारंपर्यपरिश्रमः परिहृतो भवति, शक्तिनियमात्सारूप्यनियमस्ततोऽपि विषयनियम इति।सत्यपि सारूप्ये किंवा तन्नीलंयन्नीलस्येत्युक्तं।न संवेदनगतं, तत्र भेदाभावेन व्यतिरेकविभक्तेरनुपपत्तेः। बहिर्गतमिति चेत्, तत्रापि कुतः संवेदनं?तस्य तद्विषयत्वादिति चेत्तदपि कुतः? साक्षादेव तेन तस्य ग्रहणादिति चेन्न, बहिरन्तारूपतया नीलद्वयस्याप्रतिवेदनात्। तत्सरूपत्वात्तद्विषयत्वं न साक्षादिति चेन्न, तथा तदप्रतिपत्तौ तत्सरूपत्वस्यैव दुरवबोधत्वात्।द्वयोर्हिप्रतिपत्तौ भवति तद्गतस्य सारूप्यस्य प्रतिपत्तिर्नाप्रतिपत्तौ, "द्विष्ठसारूप्यसंवित्तिर्नैकरूपप्रवेदनात्, द्वयोः स्वरूपग्रहणे सति सारूप्यवेदनम्" इति न्यायात्।ततो युक्तं शक्तिनियमादेव विषयनियमः संवेदनस्येति।।50।।

---

[1] सौगतः पृच्छति।
[2] जैनः पृच्छति।
[3] चक्षुरादिकार्यसंवेदनस्य।
[4] ज्ञानावरणवीर्यांतरायकर्मक्षयोपशमसामर्थ्यात्।
[5] यथा।
[6] तथा।
[7] विषयनियमः।
[8] सति।
[9] मध्ये इत्यर्थः।
[10] अनीलरूपस्य।
[11] समानरूपं।
[12] शक्तिप्रतिपादनसमये।

यह प्रत्यक्ष दो प्रकार का है—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और मुख्य प्रत्यक्ष।सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष।उसमें चक्षु आदि इन्द्रियों का जो कार्य है, बाह्य नीलादि का ज्ञान करना, वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है।सौगत पूछते हैं, उसके विषय का नियम कैसे है? स्याद्वादी कहते हैं—कैसे नहीं है?बौद्ध कहते हैं संवेदनात्मक चक्षु आदि के द्वारा नीलादि के समान अन्य समस्त विषयों की अपेक्षा भी चक्षु आदि के संवेदन कार्य के समान होने से।स्याद्वादी कहते हैं . यह कहना ठीक नहीं है, शक्ति की अपेक्षा ज्ञान की उत्पत्ति होने से।संसारी जीवों का ज्ञान अपने अपने ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम के अनुसार सीमित शक्ति वाला होता है अतः सीमित विषयों का ही ज्ञान कर सकता है सबका नहीं।बौद्ध कहते हैं— जैसे सीमित शक्ति के कारण ज्ञान के द्वारा सीमित विषय का जानने का नियम है उसी प्रकार सीमित विषयों को समानता के कारण ही सीमित विषयों का ज्ञान क्यों नहीं हो जायगा?संवेदन के नील सारूप्य होने पर नील का ही संवेदन होगा, पीतादि का नहीं, यह नियम है यदि यह कहते हो तो नील का तत्सारूप्य क्या है?सदादि रूप तो कह नहीं सकते, उसके सर्वत्र साधारण रूप से नियामक नहीं होने से।नीलरूप ही सारूप्य है—यह कहना भी ठीक नहीं है, वह बाहर ही दिखाई देता है संवेदन में नहीं।संवेदन में तो अनीलरूप की ही प्रतीति होती है।पहले ही नीलादि को संवेदन से बाहर बताया जा चुका है।नीलसंवेदन नील के समान पीतादि के समान रूप क्यों नहीं है? नील के ही नील संवेदन का कारण होने से यदि यह कहते हो तो फिर चक्षु आदि से भी नियत विषय का ही ज्ञान क्यों नहीं होगा?वहां भी समान हेतु होने से।नीलानुकरण में ही उसकी शक्ति है तो फिर सारूप्य का कहना व्यर्थ है।नियमवती शक्ति से ही विषय के नियम की उत्पत्ति होने से।इस प्रकार शक्ति के नियम से सारूप्य का नियम और सारूप्य के नियम से विषय का नियम इस परिश्रम की परंपरा का परिहार हो जाता है।सारूप्य के होने पर भी वह नील क्या है?जिसके लिए नीलरूप ऐसा कहा है?संवेदनगत तो हो नहीं सकता, संवेदन में भेद का अभाव होने से भिन्न वस्तु की उत्पत्ति नहीं होने से।यदि बहिर्गत कहते हो तो वहां भी संवेदन कैसे होगा?उसको संवेदन का विषय होने से यदि यह कहते हो तो यह भी कैसे?साक्षात् ही उसके द्वारा उसका ग्रहण होने से यह कहना भी ठीक नहीं है, बाह्य और अन्तरंग रूप से नील और नीलसारूप्य का प्रतिवेदन नहीं होने से।उसके सदृश होने से वह उसका विषय होता है साक्षात् नहीं यह भी नहीं कह सकते।विषयरूप से उसकी प्रतिपत्ति नहीं होने पर उसके सादृश्य का ही कठिनाई से बोध होने से।दोनों की प्रतिपत्ति होने पर ही उसके सारूप्य की प्रतिपत्ति होती है, अप्रतिपत्ति होने पर नहीं एक रूप के जानने पर दोनों सारूप्य की संवित्ति नहीं होती। दोनों के स्वरूप को ग्रहण करने पर सारूप्य का वेदन होता है।यह नियम है।अतः संवेदन के द्वारा शक्ति के अनुसार ही विषय का ज्ञान होता है यह ठीक ही है।।50।।

तदाकारत्वेन तु तस्य तन्नियमे केशमशकादौ कुतस्तत्संवेदनस्य नियमः। नहि तत्र तदाकारत्वं, केशमशकादेरसद्रूपतया तदर्पकत्वानुपपत्तेः। अतः सकलस्याप्यसतस्तद्विषयत्वेन भवितव्यम्।अतदाकारतया विवक्षितवदिदंतरनिरवशेषाविद्यमानापेक्षयापि तस्याविशेषात्।न वा कस्यचिदपीत्यप्रतिवेदनमेवासद्रूपस्येति न प्रत्यक्षलक्षणे तद्व्यवच्छेदार्थमभ्रांतग्रहणमुपपन्नम्।स्वयमेवासति तद्वेदने व्यवच्छेदनस्य किंशुकेरागार्पणवदनुपपत्तेः।।51।।

तदाकार होने से संवेदन के द्वारा विषय ज्ञान का नियम मानने पर केशमशकादि में उनके संवेदन का क्या नियम है? केशमशकादि में तदाकारत्व तो हो नहीं सकता, केशमशकादि के असत् रूप होने से वहां तदाकारत्व की उत्पत्ति नहीं होने से। केशमशकादि में तदाकारत्व मानने पर तो सभी असत् संवेदन के विषय हो जायेंगे। अतदाकार मानने पर केशमशकादि के समान संपूर्ण अविद्यमान का भी संवेदन होना चाहिये, समानता होने से। किसी का भी प्रतिवेदन नहीं होता। अतः असत् रूप का प्रतिवेदन नहीं होता। अतः प्रत्यक्ष के लक्षण में उसका खंडन करने के लिए अभ्रान्त ग्रहण उत्पन्न नहीं होता। स्वयं ही वेदन नहीं होने पर उसका खंडन करना उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे कि किंशुक के स्वयं लाल होने पर उसको लाल रंग से रंगना व्यर्थ है।।51।।

कथं पुनरसतः केशादेराकारार्पणवद्विषयत्वमपीति चेत्, स्यादयं प्रसंगो यदि तस्य स्वशक्तितो विषयत्वं। न चैवं। वेदनसामर्थ्यादेव तद्भावात्तादृशं तत्सामर्थ्यमन्यांतराददृष्टविशेषाद्वा यदि ... बलात्काराद्बलादेरिति प्रतिपत्तव्यं मनुमंतव्यं चेदमित्थम्। अन्यथा क्वचित्कस्यचिदपि व्यामोहस्यानुपपत्त्या तद्व्यवच्छेदार्थस्य शास्त्रस्य[1] वैफल्योपनिपातात्। असदर्थप्रतिवेदनादपरस्य[2] च व्यामोहस्यानुपपत्तेः। ततः स्थितं स्वशक्तितो विषयनियमः[3] संवेदनस्यतत्त्वाद् – सद्विषय नियमवदिति। न कस्याप्यसतः संवेदनं केशादेरपि देशांतरादौ सत एव [4]कामलिना प्रतिवेदनादिति केचित्[5]। तत्र। तद्वेदनस्य [6]यथावस्थिततत्केशादि विषयत्वे विभ्रमत्वाभावापत्तेः। अतद्देशादित्वेन ग्रहणाद्विभ्रमत्वमिति चेत्, न, अतद्देशत्वादेस्तत्रासत्त्वात्। सतोपि तस्य ग्रहणे केशादेरेव किं न स्यात्[7], यतस्तत्प्रतिपत्तिरसत्ख्यातिरेव न भवेत्। अर्थविषयैव तद्विप्रतिपत्तिरर्थस्य त्वलौकिकत्वात्तत्र विभ्रमाभिमानो लोकस्येति मतं यस्य तस्यापि किमिदं तदर्थस्यालौकिकत्वं? [7]समानदेशकालैरप्य[8]न्यैस्त[9]द्दर्शननिमित्ताभावेना[10]दृश्यत्वमिति चेत्, किं पुनस्तन्निमित्तं यदभावात्[11] स्यादृश्यत्वं। काचादिरेव कारणदोष इति चेत्, व्याहतमिदं वस्तुसद्विषयवेदनहेतोर्दोषत्वमिति चक्षुरादेरपि [12]तत्त्वापत्तेः। न चासावदोष[13] एव तच्चिकित्सायामनर्थक्यप्रसंगात्।।52।।

[1] "प्रामाण्यं व्यवहारेण शास्त्र मोहनिवर्त्तनमिति वाक्यात्।
[2] सख्यातिरसत्ख्यातिः प्रसिद्धार्थख्यातिरात्मख्यातिर्विपरीतार्थख्याति स्मृतिप्रमोष इत्येवंरूपस्यापरस्येति भाव।
[3] भवतीति शेषः।
[4] पुंसा।
[5] सांख्याः। 6. यथार्थस्थित
[6] तथा च न कस्याप्यसतः संवेदनमित्यादि न स्यात्।
[7] धर्म. प्राह।
[8] पुंभि.।
[9] केशादिदर्शन।
[10] विषयस्य।
[11] केशादे।
[12] वस्तुसद्विषयवेदनहेतुत्वाविशेषत्।
[13] गुण.।

फिर कैसे असत् केशादि को आकारादि के आरोप के समान विषयत्व भी है यदि यह कहते हो तो कथंचित् यह मान्य हो सकता है, यदि वह अपनी शक्ति से विषय हो तो।किंतु ऐसा नहीं है संवेदन की समर्थता से ही उसके विषयत्व होने से।उस प्रकार की उसके संवेदन की समर्थता उसके अन्तरंग अदृष्ट विशेष से तथा बाह्य विष के आस्वादन तथा कामलादि रोग से होती है, यह जानना और मानना चाहिये।अन्यथा कहीं किसी के अज्ञान की उत्पत्ति नहीं होने से उसको दूर करने वाले शास्त्र की विफलता का प्रसंग आने से।असत् अर्थ के प्रतिवेदन से भिन्न सत्ख्याति, असत्ख्याति, प्रसिद्धार्थख्याति, विपरीतार्थख्याति, स्मृतिप्रमोष आदि किसी अज्ञान के उत्पन्न नहीं होने से।अतः अपनी शक्ति से ही विषय का नियम सिद्ध होता है संवेदन के वैसा होने से असत् विषय के नियम के समान।

सांख्य कहते हैं—असत् का संवेदन किसी के नहीं होता, केशादि का भी दूसरे देश आदि में सत् का ही कामलि आदि के द्वारा प्रति वेदन होता है।यह कहना ठीक नहीं है।उस ज्ञान के यथार्थ स्थित केशादि का विषयत्व मानने पर विभ्रम का अभाव हो जायगा।दूसरे देश आदि से ग्रहण के कारण विभ्रमत्व है, यह कहना भी उचित नहीं है, दूसरे देश आदि के वहां नहीं होने से।

असत्देशादि के ग्रहण करने पर केशादि के ही असत् का ग्रहण क्यों नहीं हो जायगा, जिससे वह प्रतिपत्ति असत्ख्याति नहीं होगी।अर्थ को ही विषय करने वाली वह प्रतिपत्ति है, उस अर्थ के अलौकिक होने से संसार को विभ्रम का अनुभव होता है, जो ऐसा कहते हैं उनके यहां अर्थ का अलौकिकत्व क्या है?समान देशकालवाले भी अन्य पुरूषों के द्वारा केशादि के दर्शन का निमित्त नहीं होने से केशादि विषय का अदृश्यत्व है यदि यह कहते हो तो वह निमित्त क्या है?जिसके अभाव से केशादि का अदृश्यत्व है?काचादि (नेत्र रोग विशेष) कारण दोष यदि यह कहो तो वस्तु के सन्निधय के लिये यह दोष व्यर्थ ही है।चक्षु को भी सत् वस्तु के ही वेदन का हेतु होने में समानता होने से।यह दोष रहित भी नहीं है उसकी चिकित्सा को व्यर्थ होने का प्रसंग होने से।।52।।

अलौकिकत्वं लोके तस्याविद्यमानत्वं, तदपि तत्प्रयोजनानिष्पादनादिति[1] चेत्, असद्विषयैव तर्हि तत्प्रतीतिरिति स्पष्टमभिधातव्यं, किं[2]मलौकिकार्थख्यातिरित्यभिधीयते। स्मृतिरेवेयं प्रागनुभूतस्यैव केशादेः काचादिमता[3]ऽपि प्रतिवेदनान्नासतोऽतिप्रसंगादित्यपि कस्यचिद्वचनमसमीचीनमेव, स्मृतित्वे पुरोवर्तितया तस्याप्रतिवेदनप्रसंगात्।प्रमोषवशात्तथा तत्प्रतिवेदनमिति चेत्, कः पुनरयं प्रमोषो नाम? स्वरूपात्प्रच्युतिरिति चेन्न तर्हि स्मृतिरिति कथं तया केशादेः प्रतिवेदनं।।53।।

अलौकिकपना उसका लोक में विद्यमान न होना है उस केशादि से अर्थक्रिया लक्षण प्रयोजन के निष्पन्न नहीं होने से यदि यह कहते हो तो वह प्रतीति असद्विषयक ही है यह स्पष्ट कहना चाहिये।फिर अलौकिक अर्थकी ख्याति यह क्यों कहते हो? यदि कोई कहे कि यह स्मृति ही है, पहले अनुभव किये हुए केशादि का ही काचादि दोष वाले से भी

[1] तेन केशादिना प्रयोजनस्यार्थक्रियालक्षणस्यानिःपादनात्।
[2] किमर्थमित्यर्थः।
[3] पुंसो

प्रतिवेदन होने से असत् का नहीं, अतिप्रसंग होने से तो उसका यह कथन भी समीचीन नहीं है, स्मृति होने से पहले उसके अप्रतिवेदन का प्रसंग होने से।

प्रमोष के कारण उसका प्रतिवेदन होता है, यदि यह कहते हो तो यह प्रमोष क्या है? स्वरूप से पतन यह कहते हो तो फिर स्मृति ही नहीं होगी, फिर उससे केशादि का प्रतिवेदन कैसे होगा।।53।।

स्वरूपात्प्रच्युताप्यस्ति स्मृतिर्यदि मते तव।
सुप्तो न किं प्रबुद्धोऽस्तु जीवितोऽस्तु मृतो न किम्।।

यदि तुम्हारे यहां स्वरूप से पतन होना भी स्मृति है तो फिर सोया हुआ जागा हुआ क्यों नहीं हो जायगा और मरा हुआ भी जीवित क्यों नहीं हो जायगा?

अथ स्वविषयस्य[2] पुरोवर्तित्वेन ग्राहकत्वादेः[3] [4]कुतश्चित्कारणात् प्रमोषः, तन्न। पुरोभावस्यासत्त्वे[5] ग्रहणानुपपत्तेः, अन्यथा[6] केशादेरेवासतस्तत्संभवादसत् ख्यातिरेव संभवेन्न स्मृतिप्रमोषः।ततः स्थितं यथा स्वहेतुसामर्थ्यादेवासदवभासिन इन्द्रियज्ञानस्य विषयनियमस्तथा सदवभासिनोऽपि। तत्र, सारूप्यात्तत्कल्पनमुपपन्नं। इति निरूपितमिंद्रियप्रत्यक्षम्।।54।।

असत् देशत्व से अनुभव किये हुए अपने विषय को पूर्ववर्ती होने से ग्रहण करना ही किसी कारण से स्मृति का प्रमोष है, यह कहना भी ठीक नहीं है, पहले विद्यमान न होने पर उसका ग्रहण नहीं होने से।यदि पुरोभाव के न होने पर भी उसका ग्रहण होता है तो फिर असत् केशादि का भी ग्रहण संभव होने से असत्ख्याति ही संभव होगी, स्मृतिप्रमोष नहीं।अतः जैसे अपने कारण सामर्थ्य से असत् को जानने वाले इन्द्रिय ज्ञान का विषय नियम है उसी प्रकार सत् को अवभास करने वाले इन्द्रिय ज्ञान का भी है।अतः सारूप्य से विषयग्रहण की कल्पना सिद्ध नहीं होती।इस प्रकार इन्द्रिय प्रत्यक्ष का निरूपण किया।।54।।

❋ ❋ ❋

अधुना अनिंद्रियप्रत्यक्षस्वरूपकथनार्थमाह।

अब अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष का स्वरूप कहने के लिए कहते है–

किं पुनरनिंद्रियप्रत्यक्षमिति चेत्, सुखादेः स्मरणादिज्ञानस्य च स्वरूपवेदनमेवं तत्र स्पष्टावभासितया प्रत्यक्षव्यपदेशोपपत्तेः।अनिंद्रियं चेह

[1] सुप्तश्चेत्प्रबुद्धस्तर्हि तस्य स्मरणेन भवितव्यं तच्च तस्य नास्तीति कथं तस्य तत्त्वमिति कस्यचित्प्रश्नस्यापि स्वरूपात्प्रच्युता स्मृतिरस्तीत्युत्तरं वाच्यं।एवमग्रस्थे चतुर्थांशेऽपि।
[2] अतद्देशत्वेनानुभूतस्य।
[3] ग्रहणमेव।
[4] कारणादिति शेषः।
[5] पुरोविद्यमानत्वस्य।
[6] पुरोभावस्यासत्त्वेऽपि तद्ग्रहणात्।

पौद्गलिकं मनः प्रतिपत्तव्यं, तदायत्तजन्मजत्वे सुखादिस्मरणादीनां काकादिष्व-मनस्केषु तदभावानुषंगात्।न च तत्र न संत्येव तानि, स्मरणप्रत्यभिज्ञानादि-निबंधनतयास्वदेहोपलब्धस्य प्रवृत्त्यादेस्तत्रापि प्रतिपत्तेरतःक्षयोपशमविशेष लिंगितः कश्चिदात्मप्रदेश एवानिंद्रियं, तत्प्राधान्येन सुखाद्युत्पत्तेः काकादिष्वप्युपपत्तेरत एव गुरूभिरनंतवीर्यदेवैरपि तस्यैवानिंद्रियत्वमभ्यनुज्ञातम्।।55।।

अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है?यदि यह कहते हो तो सुखादि तथा स्मरणादि ज्ञान के स्वरूप का वेदन ही अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष है वहां स्पष्ट अवभासी होने के कारण उसे प्रत्यक्ष नाम दिया जाने से, यहां अनिन्द्रिय पौद्गलिक (अष्टदल कमलाकार) मन नहीं जानना चाहिये, यदि पौद्गलिक मन से प्रत्यक्ष ज्ञान मानोगे तो अमनस्क कौए आदि में सुखादि स्मरणादि के ज्ञान के अभाव का प्रसंग आयेगा।काकादि में सुखादि स्मरणादि का ज्ञान नहीं है ऐसा नहीं है वहां सुखादि स्मरणादि ज्ञान होते हैं स्मरण प्रत्यभिज्ञान आदि के कारण अपने शरीर की प्रवृत्ति आदि वहां भी होने से।अतः क्षयोपशम विशेष से संबंधित आत्म प्रदेश ही अनिन्द्रिय है, उसी की प्रधानता से सुखादि की उत्पत्ति होने से काकादि में भी उत्पत्ति होने से।अतः अनन्तवीर्य गुरू ने भी उसी को (क्षयोपशम विशेष से संबंधित आत्मप्रदेश को) ही अनिन्द्रिय माना है।।56।।

किं पुनरेवं[1] द्रव्यमनसः परिकल्पनेनेति चेत्, द्रव्येन्द्रियस्य चक्षुरादेरपि किं? न किंचित्, अत एव तद्व्यापाराभावेऽपि सत्य स्वप्नादावन्तरंगाद्धि शुद्धिविशेषादेव रूपादिदर्शनं।तदिंद्रियस्य तु जाग्रदशाभाविनि तद्दर्शने तद्धेतोर्विशुद्धि विशेषस्य तदधिकरण[2]जीवप्रदेशाधिष्ठानत्वेन निमित्तमात्रत्वादेव[3] कल्पनमत एव गवाक्षस्थानीयतां तत्र व्यावर्णयंति तत्त्ववेदिन इति चेत्, तर्हि द्रव्यमनसोऽपि परिकल्पनं क्वचित्सकलेंद्रियस्य[4] सुखादिवेदने तदवष्टब्धजीव-प्रदेशाश्रयविशुद्धिविशेषनिबंधने निमित्ततयैव।न च निमित्तेन सर्वदा [5]तत्कार्ये भवितव्यमिति नियमो गवाक्षादिना व्यभिचारात्।कुतः पुनः शक्तिविशेषस्य क्षयोपश-मात्मनोऽवगमो यतस्तत्प्रभवत्वमिंद्रियादिप्रत्यक्षस्येति चेत्, तत एव प्रत्यक्षात्।न तावत्तदहेतुकं कादाचित्कत्वात्।नापि द्रव्येंद्रिय मात्रा[7]त्तदभावेऽपि [8]क्वचिदुत्पत्तेः, [9]कदाचित्तद्भावेऽप्यनुत्पत्तेः।[10]तादृशं च तदात्मनि कारणान्तरस्य प्राधान्यमावेदयति। तच्च यथोक्तशक्तिविशेष एवेत्युपपन्नमिंद्रियादिप्रत्यक्षस्य तत्प्रभवत्वमिति।।56।।

[1] अष्टदलकमलाकारं।
[2] क्षयोपशमविशेषलिंगितात्मप्रदेशस्यानिंद्रियत्वे।
[3] पंचेंद्रियस्य।
[4] जीवस्येति।
[5] जीवस्येति।
[6] वितक्षित इति शेषः।
[7] द्रव्येंद्रियाभावेपि।
[8] सत्यस्वप्नादौ।
[9] अन्यवस्तुगतचित्तकाले।
[10] द्रव्येंद्रियभावाभावाभ्यामुत्पत्त्यनुत्पत्तिधिकल्पं।

यदि क्षयोपशम विशेष से आलिंगत आत्मप्रदेश ही अनिन्द्रिय है तो फिर द्रव्यमन की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है?यदि यह कहते हो तो फिर द्रव्येन्द्रिय चक्षु आदि की कल्पना की भी क्या आवश्यकता है?कोई आवश्यकता नहीं।क्षयोपशम विशेष से आलिंगत आत्मप्रदेश से ही चक्षु आदि के व्यापार के बिना भी सत्यस्वप्नादि में अन्तरंग विशुद्धि विशेष से ही रूपादि का दर्शन होता है, चक्षु इन्द्रिय की तो जाग्रत दशा में रूपादि के दर्शन में उसके कारण विशुद्धि विशेष के आधार जीव प्रदेश का आधार होने के कारण निमित्त मात्र के रूप में ही कल्पना की गयी है, इसीलिए तत्त्वज्ञानी चक्षु इन्द्रिय को प्रकाश में गवाक्ष के समान निमित्त मात्र कहते हैं, यदि यह कहते हो तो द्रव्यमन की कल्पना भी कहीं पंचेन्द्रिय जीव के सुखादि के वेदन में वहां पर स्थित जीवप्रदेश के आश्रित रहने वाले विशुद्धि विशेष को ही कारण होने पर निमित्त मात्र के लिए ही की गयी है।निमित्त का विवक्षित कार्य में सदैव होना आवश्यक नहीं है, गवाक्षादि के साथ व्यभिचार होने से।

क्षयोपशम विशेषात्मक शक्ति विशेष का ज्ञान किससे होता है?जिससे इन्द्रियादि प्रत्यक्ष को उससे उत्पन्न माना जाय यदि यह कहते हो तो उसी प्रत्यक्ष से वह शक्ति विशेष कभी कभी होने से अकारण भी नहीं है।द्रव्येन्द्रिय मात्र से प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, द्रव्येन्द्रिय नहीं होने पर भी कहीं सत्यस्वप्नादि में प्रत्यक्ष ज्ञान होने से और कहीं अन्य वस्तु में उपयोग होने पर द्रव्यमन के होने पर भी ज्ञान नहीं होने से। इस प्रकार द्रव्येन्द्रिय के न होने पर भी ज्ञान के होने और द्रव्येन्द्रिय के होने पर भी ज्ञान के न होने के कारण दूसरे कारण को प्रधान माना गया है और वह प्रधान कारण ऊपर कहा हुआ शक्ति विशेष ही है।अतः इन्द्रियादि प्रत्यक्ष उसी से उत्पन्न होता है, यह सिद्ध हुआ।।56।।

कुतः पुनस्तदुभयस्यापि मुख्यमेव प्रत्यक्षत्वं न भवतीति चेत्, वैशद्यसाकल्यस्य तन्निबंधनस्य तत्राभावात्। व्यवहारिकत्वं तु तत्र तस्य वैशद्ये लेशोपाश्रयेण लोकस्य प्रत्यक्षव्यवहारप्रसिद्धेः।।57।।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अनिंद्रिय प्रत्यक्ष इन दोनों को मुख्य प्रत्यक्ष क्यों नहीं कहा? यदि यह कहते हो तो संपूर्ण विशदता का जो मुख्य प्रत्यक्ष का कारण है वहां अभाव होने से। व्यावहारिकत्व तो वहां किंचित् विशदता होने के कारण संसार में व्यवहार की प्रसिद्धि होने से कहा गया है।।57।।

तत्पुनरुभयमपि[1] प्रत्यक्षं प्रत्येकमवग्रहेहाऽवायधारणाविकल्पाच्चतुर्विधं। तत्र विषयविषयिस[2]न्निपातानंतरभाविसत्ता[3]लोचनपुरःसरो मनुष्यत्वाद्यवांतर सामान्याध्यवसायिप्रत्ययोऽवग्रहः। तदवगृहीतविशेषस्य देवदत्तेन भवितव्यमिति भवितव्यतामुल्लिखंती प्रतीतिरीहा। तद्विषयस्य देवदत्त एवायमित्यवधारणावानध्यवसायोऽवायः। तस्यैव[4] कालांतरस्मरणयोग्यतया ग्रहणं धारणा। तदेतेषामवग्रहादि विकल्पानां पूर्वपूर्वस्य प्रमाणत्वमुत्तरोत्तरस्य च तत्फलत्वं प्रतिपत्तव्यम्।

[1] इंद्रियानिंद्रियप्रत्यक्षभेदात्।
[2] योग्यदेशावस्थान।
[3] दर्शन।
[4] अवायविषयस्यैव।

स्वार्थव्यवसायस्याव्युत्पत्त्यादिव्यवच्छेदात्मनस्तद्गतस्यापि कथंचित्पूर्वपूर्वस्मादुत्पत्तेः विषयभेदनिबंधनश्चावग्रहादीनामस्ति संख्याविकल्पः सोन्यत्र प्रतिपत्तव्य।इति व्याख्यातं व्यवहारिकमिंद्रियप्रत्यक्षमनिंद्रियप्रत्यक्षं च।।58।।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष दोनों ही अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से चार प्रकार के हैं।वहां विषय विषयी के योग्य देश में संबंध होने पर सत्ता मात्र के अवलोकन पूर्वक बाद में मनुष्यत्व आदि अनेक सामान्य को ग्रहण करने वाला ज्ञान अवग्रह है, वह अवग्रहित विषय देवदत्त होना चाहिये, इस प्रकार भवितव्यता की ओर उन्मुख प्रतीति ईहा है और उस विषय को यह देवदत्त ही है इस प्रकार की निश्चयात्मक धारणा अवाय है और उसी को कालान्तर में भी स्मरण रखने की योग्यता पूर्वक ग्रहण करना धारणा है।

इन अवग्रहादि विकल्पों को पूर्वपूर्व की प्रमाणता है और उत्तरोत्तर का फलत्व है, ऐसा जानना चाहिये।अनध्यवसाय आदि का निराकरण करने वाले स्वार्थव्यवसाय के भी कथंचित् पूर्वपूर्व से उत्पन्न होने से।विषय भेद के कारण अवग्रह आदि के कितने भेद हैं उन्हें अन्यत्र जानना चाहिये।

इस प्रकार व्यावहारिक इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष का वर्णन किया गया।।58।।

अधुना मुख्यप्रत्यक्षस्वरूपप्रतिपादनायाह।

अब मुख्य प्रत्यक्ष का स्वरूप बताने के लिये कहते हैं–

मुख्यं तु प्रत्यक्षमतींद्रियप्रत्यक्षं।तद् द्विविधं, सकलं विकलं चेति। विकलमपि द्विविधमवधिर्मनःपर्ययश्चेति। तत्रावधिर्नामावधिज्ञानावरणवीर्यांतराय क्षयोपशमविशेषापेक्षया प्रादुर्भावोरूपाधिकरणभावगोचरो[1] विषदावभासी प्रत्ययविशेषः। स च त्रिविधः, देशावधिपरमावधिसर्वावधिविकल्पात्।तत्र देशावधेर्मतिज्ञानविषयस्यास[2]र्वपर्यायद्रव्यलक्षणस्यानंतैकभागः[3], तदनंतैकभागःपरमावधेः, तदनंतैकभागश्च सर्वावधेर्विषयः प्रतिपत्तव्यः। विशुद्ध्यतिशयश्च[4] पूर्वस्मादुत्तरोत्तरस्येति।।59।।

मुख्य प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है।वह दो प्रकार का है– सकलप्रत्यक्ष और विकलप्रत्यक्ष।विकलप्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है–अवधि और मनःपर्यय।अवधि ज्ञान अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न रूपी पदार्थ को स्पष्ट प्रकाशित करनेवाला प्रतीति विशेष है।वह अवधि ज्ञान तीन प्रकार का है–देशावधि, परमावधि और सर्वावधि के भेद से। देशावधि का विषय मतिज्ञान के विषय द्रव्य की कुछ पर्यायों का अनन्तवां भाग है, उसका अनन्तवां भाग परमावधि का विषय है और उसका भी अनन्तवां

[1] रूपार्थ।
[2] असर्वपर्यायं द्रव्य लक्षणं यस्येति समासो विधेयः।
[3] सूक्ष्मरूपतया।
[4] भवतीति शेष।

भाग सर्वावधि का विषय है।विशुद्धिरूपी अतिशय भी पूर्वपूर्व की अपेक्षा उत्तर उत्तर में अधिक है।देशावधि से अधिक विशुद्ध परमावधि और परमावधि से अधिक विशुद्ध सर्वावधि है।।59।।

तथा मनःपर्ययोऽपि [1]संयमैकार्थसमवायी तदावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशम विशेषनिबन्धनः परमनोगतार्थसाक्षात्कारी प्रत्ययः। सोऽपि द्वेधा, ऋजुमतिर्विपुल मतिश्चेति। तत्र [2]प्रगुणमनोवाक्का[3]यैर्निर्वर्तितोऽर्थः[4] पूर्वस्य, प्रगुणैरित[5]रैर्वा मनोवाक्कायैर्निर्वर्तितोऽनिर्वर्तितश्चार्थः पश्चिमस्य विषयः। सूक्ष्मतया तु सर्वावधि – विषयानंतैकभागे पूर्वस्य तदनंतैकभागेपरस्य निबंधः[6]।तथा विशुद्ध्यतिशयविशेष– वत्त्वादप्रतिपातित्वाच्च पूर्वस्मादुत्तरस्य विशेषो वेदितव्य।इति व्याख्यातं विकलमतींद्रियप्रत्यक्षम्।।60।।

मनःपर्यय ज्ञान भी संयम के साथ समवाय रूप से रहनेवाला मनः पर्यय ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला दूसरे के मन के विषय को साक्षात् करने वाला ज्ञान है।यह भी दो प्रकार का है–ऋजुमती और विपुलमती।सरल मन वचन काय से किये गये विषय को ऋजुमती जानता है तथा सरल और वक्र मन वचन काय से किये गये अथवा न किये गये दूसरे के मन के विषय को विपुलमती जानता है।सूक्ष्मता की दृष्टि से सर्वावधि के विषय का अनन्तवां भाग ऋजुमति का विषय है, और ऋजुमति के विषय का अनंतवाँ भाग विपुलमती का विषय है।विशुद्धि रूपी अतिशय तथा अप्रतिपातित्व (केवल ज्ञान होने तक न छूटना) की अपेक्षा ऋजुमती की अपेक्षा विपुलमती में अधिक विशेषता है।इस प्रकार विकल अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष का वर्णन किया।।60।।

सकलं तु तत्प्रत्यक्षं प्रक्षीणाशेषाघातिमलस[7]मुन्मीलितं सकलवस्तु याथात्म्यवेदिनिरतिशयवैशद्यालंकृतं केवलज्ञानं। तद्वतः पुरुषस्य सद्भावे किं प्रमाणमिति चेत्। इदमनुमानं–अस्ति सर्वज्ञो निर्बाधप्रत्ययविषयत्वात् सुखादिनीलादिवत्। न च तत्प्रत्यये विवादस्तन्निषेधवादिनोऽपि तद्भावादन्यथा तन्निषेधस्यैव तद्विषयपरिज्ञानाभावेनासंभवप्रसंगात्। निर्बाधत्वमपि तस्य प्रत्यक्षा– दीनामन्यतमस्यापि तद्बाधकत्वासंभवात् तद्बाधकत्वं नाम तद्विषयासत्त्वनिवेदनमेव। तच्च प्रत्यक्षेण यदि क्वचित् कदाचित्किंचिदनिष्टमभ्युपगमात्। सर्वत्र सदापीति चेन्न, तस्य सर्वविषयत्वप्रसंगात्। अन्यथा तत्र तेन तन्निवेदनानुपपत्तेः। भूतलमवलोक्य[8]तैव तेन तत्र घटाद्यसत्त्ववेदनस्य प्रतीतेः।प्रत्यक्षाभावे च

[1] आत्मलक्षणार्थे।
[2] ऋजु।
[3] परैश्च।
[4] निष्पन्नः।
[5] वक्रैः।
[6] प्रवृत्तिः।
[7] प्रादुर्भूतम्।
[8] पुंसः।

तत्पूर्वकत्वेनानुमानस्याप्यसंभवात्, न तस्यापि तद्बाधकत्वं। यदपि विवादापन्नः सर्वोपि देशादिः सर्वज्ञविकलो देशादित्वात् प्रसिद्धदेशादिवदिति, तदपि न साधु। देशादेः सर्वस्याप्रतिपत्तौ हेतोराश्रयस्वरूपासिद्धदोषोपनिपातात्, प्रतिपत्तौ च तत्प्रतिपत्तिमतः सर्वज्ञत्वापत्त्या सर्वज्ञनिराकरणानुपपत्तेः ।।61।।

सकल प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है, जो संपूर्ण घातिया कर्म रूपी मल के क्षय हो जाने पर संपूर्ण वस्तुतत्व को यथार्थ जानने वाला अत्यधिक निर्मलता से अलंकृत होता है।केवल ज्ञान वाले पुरुष के होने का क्या प्रमाण है?यदि यह प्रश्न करते हो तो यह अनुमान प्रमाण है—सर्वज्ञ है निर्बाध ज्ञान का विषय होने से, सुखादि तथा नीलादि के समान।उसके ज्ञान में विवाद भी नहीं है, जो उसका निषेध करनेवाले हैं उनके भी निर्बाध ज्ञान वाला होने से उसका निषेध ही उस विषय के ज्ञान के बिना असंभव हो जायगा।प्रत्यक्षादि किसी प्रमाण को उसका बाधक नहीं होने के कारण उसकी निर्बाधता भी है।बाधकत्व उस विषय के असत्व का निवेदन ही है।वह प्रत्यक्ष से कहीं कदाचित् किंचित् कहो तो ठीक है, सर्वत्र सर्वदा बाधकत्व नहीं कह सकते, जो सर्वत्र सर्वदा सर्वज्ञ का अभाव मानते हैं—उन्हीं के सभी विषय को जानने का प्रसंग होने से।अन्यथा उसके द्वारा सर्वत्र सर्वदा सर्वज्ञ का अभाव नहीं कहा जा सकता।पृथ्वी को देखते हुए ही उसके द्वारा वहां घटादि के न होने के वेदन की प्रतीति होने से।प्रत्यक्ष के अभाव में प्रत्यक्ष पूर्वक होने वाला अनुमान भी नहीं हो सकता।अतः अनुमान भी सर्वज्ञ का बाधक नहीं है।जो यह अनुमान है कि विवादापन्न सभी देशादि सर्वज्ञ से रहित हैं देशादि होने के कारण प्रसिद्ध देशादि के समान।वह भी ठीक नहीं है।सभी देशादि के न जानने पर हेतु के आश्रयासिद्ध और स्वरूपासिद्ध का प्रसंग आने से। सभी देशादि की प्रतिपत्ति वाले को ही सर्वज्ञत्व होने से सर्वज्ञ का निराकरण नहीं हो सकने से।।61।।

यदपीदं—विवादापन्नः सर्वज्ञो न भवति पुरुषत्ववक्तृत्वादेरथ्यापुरुषवदित्यनुमानं तदपि न तस्य बाधकं।पुरुषत्वादेर्हेत्वाभासतया निरूपयिष्यमाणत्वेन तदुद्भावितस्य तस्याप्यनुमानाभासत्वेनैवावस्थितेः। नाप्यर्थापत्ति[2]स्तदुत्थापकस्य सर्वज्ञाभावमंतरेणानुपपन्नस्य कस्यचिदर्थस्यानध्यवसायात्।नाप्यहमिव सर्वे पुरुषाः प्रतिनियतमर्थमिंद्रियैः पश्यंतीत्युपपन्नमु[3]पमानमपि, सर्वपुरुषाणां कुतश्चिद्विषयीकरणे स्वसर्ववेदित्वापत्तेरविषयीकरणे त्वस्मृतिविषयत्वेनोपमेयत्वानुपपत्तेः। स्मरणविषयत्वेन हि तेषां स्वसादृश्यविशिष्टतयोपमेयत्वं।।62।।

जो यह अनुमान है कि विवादापन्न सर्वज्ञ नहीं होता, पुरुषत्व वक्तृत्वआदि के कारण रथ्यापुरुष के समान, यह भी सर्वज्ञ का बाधक नहीं है।पुरुषत्व आदि को हेत्वाभास के रूप में बताया जायेगा।अतः उसके द्वारा होने वाला अनुमान भी अनुमानाभास ही होगा।अर्थापत्ति भी सर्वज्ञ का बाधक नहीं है।सर्वज्ञ के अभाव के बिना उत्पन्न न होने वाले किसी विषय को उसके उत्थापक का निश्चय नहीं होने से।मेरे समान सभी पुरुष

[1] उच्यते इति शेष।
[2] अर्थापत्तिलक्षणमद.—प्रमाणषट्विज्ञातो यत्रार्थो नान्यथा भवेत्।अदृष्टं कल्पयेदेनं सार्थापत्तिरुदाहृता।
[3] उपमानलक्षणमद.—दृश्यमानाद्यदन्यत्र विज्ञानमुपजायते।सादृश्योधाधि तत्त्वज्ञैरुपमानमिहोच्यते।

सीमित विषय को ही इन्द्रियों से देखते हैं, एवं उपमान भी सर्वज्ञ का बाधक नहीं है।सभी पुरूषों को किसी के द्वारा विषय करने से उसी के सर्वज्ञत्व का प्रसंग आने से विषय नहीं करने में स्मृति का विषय नहीं होने से उपमेयत्व की उत्पत्ति भी नहीं होगी।स्मरण का विषय होने पर ही उनके अपने सादृश्य की विशिष्टता होने से उपमेयत्व हो सकता है।।62।।

तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम्।
प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम्।।इति वचनात्।।

इसलिए जो स्मरण किया जाता है, वह सादृश्य के कारण उपमान का विषय हो सकता है, उपमान का विषय सादृश्य या उससे युक्त ही होता है, ऐसा वचन होने से।

शाब्दं[2] प्रमाणं सकलदर्शिनः सत्ताविषयमेव "हिरण्यगर्भ प्रकृत्य सर्वज्ञ इत्यादेस्तस्यैव श्रवणात्।न च प्रत्यक्षादेर[3]भावविषयत्वं भावप्रमाणकल्पना वैफल्यप्रसंगात्। भवत्वभावादेव प्रमाणात्सर्वज्ञस्याभावप्रतीतिः, स च तद्विषय प्रत्यक्षादिनिवृत्तिरूपोऽनुपलंभ[4] इति चेन्न, तस्यात्म[5]संबंधिनः परचेतोवृत्ति-विशेषैर्व्यभिचारात्, विद्यमानेष्वपि तेषु तस्य भावात्। तद्विद्यमानतायाश्च पश्चात्कुतश्चित्कार्यविशेषतोऽध्यवसायात्।[6]सर्वसंबंधिनश्चयासिद्धेः सर्वज्ञस्या भावासिद्धौ तस्य स्वयं सर्वज्ञान्तरेणाप्युपलम्भसंभवात्। अभावसिद्धौ तस्य सिद्धत्येव सर्वसंबंधी तदनुपलंभ इति चेत्, न। सिद्धात्ततः तदभावसिद्धिस्ततश्च तत्सिद्धिरिति परस्पराश्रयोपनिपातात्। अन्यवस्तुनि विज्ञानं तर्हि तदिति चेत्, किं तदन्यद्वस्तु? नियतो देशादिश्चेत्, न। ततस्तत्र तदभावस्येष्टत्वात्।सर्व इति चेन्न तज्ज्ञानवतः सर्वज्ञत्वप्रसंगात्। अतो न कुतश्चिदप्यभाववेदनं सकलवेदिन इति सिद्धं तस्य निर्बाधप्रत्ययविषयत्वं। नापि हेतोराश्रयासिद्धत्वमतः[7] प्रागपि सकलज्ञप्रतीतेः प्रतिपादितत्वात्।यद्येवं किमनेनेति चेन्नातस्तत्सत्त्वव्यवस्थापनात्। [8]प्राक्तन्या तु तत्प्रतीत्या नित्यानित्यत्वविकल्पसाधारणस्य शब्दस्येव सदसत्त्व विकल्पसाधारणस्यैव तस्योपदर्शनात्।न चाश्रयबलाद्धेतोर्गमकत्वं यतस्तद्रहितत्वं तस्य दोषः स्यादपित्वन्यथानुपपत्तिसामर्थ्यात्।तच्चानाश्रयत्वेऽपि[9], निवेदयिष्यते चैतत्।।63।।

[1] विषयं।
[2] शाब्दलक्षणं यथा—शब्दाद्यदुदितं ज्ञानमप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि।शब्दं तदिति मन्यंते प्रमाणांतरवादिनः।
[3] प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव इष्यते।सात्मनो परिणामो वा विज्ञानं वाऽन्यवस्तुनि।।1।।प्रमाणपंचकं यत्र वस्तुरूपे न जायते वस्तुसत्त्वावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता।।2।।
[4] नास्ति सर्वज्ञोऽस्मत्प्रत्यक्षादिप्रमाणैरनुपलभ्यमानत्वात्।
[5] प्राभाकरमते सर्वज्ञबाधकप्रमाणाभावं प्रतिपाद्य, भाट्टमतमिदानीमाह।
[6] प्रत्यक्षाद्यनुपलम्भस्य।
[7] अस्मादनुमानात्।
[8] पूर्वस्मिन् जातया।
[9] धर्मसाधनाख्यहेतुस्वरूपानिरूपणावसरे।

शाब्द प्रमाण सर्वज्ञ का सत्ता विषय है।हिरण्यगर्भ प्रकृत्य इत्यादि उसी से (शब्द प्रमाण से ही) सुने जाने से।प्रत्यक्षादि का उसमें विषय नहीं है, भावप्रमाण की कल्पना के व्यर्थ होने का प्रसंग होने से भाट्ट मतावलम्बी कहते हैं—अभाव प्रमाण से ही सर्वज्ञ के अभाव की-- प्रतीति होती है, वह प्रत्यक्षादि से उस विषय का निवृत्तिरूप अनुपलंभ है, "नास्ति सर्वज्ञोऽस्मत्प्रत्यक्ष प्रमाणैरनुपलभ्यमानत्वात्" यह कहना भी ठीक नहीं है, अनुपलभ्यमान हेतु आत्मसंबंधी है, दूसरे की चित्तवृत्ति विशेष से वह व्यभिचारी है, सर्वज्ञ के सद्भाव में भी आत्मसंबंधी अनुपलंभ होने से।सर्वज्ञ की विद्यमानता का बाद में किसी कार्यविशेष से निश्चय होने से।प्रत्यक्षादि से अनुपलभ्यमान हेतु सर्व संबंधी सिद्ध नहीं हो सकता।सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि नहीं होने पर उसके स्वयं दूसरे सर्वज्ञ के रूप में उपलब्ध होने की संभावना होने से।सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि होने पर सभी के द्वारा उसका उपलब्ध न होना सिद्ध ही होता है, यह कहना ठीक नहीं है।सर्वसंबंधी अनुपलंभ सिद्ध हो तब सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि हो और सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि हो तब सर्वसंबंधी अनुपलंभ सिद्ध हो इस प्रकार इतरेतराश्रय दोष का प्रसंग होता है।अन्य वस्तु में उसके अभाव का ज्ञान है यदि यह कहते हो तो वह अन्य वस्तु क्या है?नियतदेशादि कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि नियत देशादि में तो सर्वज्ञ का अभाव हमें भी इष्ट है।सभी देशादि यह नहीं कह सकते, सभी देशादि में सर्वज्ञ के अभाव को जानने वाले को ही सर्वज्ञत्व का प्रसंग होने से।अतः किसी भी प्रमाण से सर्वज्ञ के अभाव का ज्ञान नहीं होता, इसलिए सर्वज्ञ का निर्बाधज्ञान विषयत्व सिद्ध होता है।हेतु आश्रयासिद्ध भी नहीं है, इससे पूर्व भी सर्वज्ञ की प्रतीति को?प्रतिपादित किया जाने से।यदि पहले ही सर्वज्ञ की प्रतीति का प्रतिपादन किया जा चुका है तो फिर इस अनुमान की क्या आवश्यकता है, यह कहना ठीक नहीं है, इससे उसके सद्भाव का व्यवस्थापन होने से।पहले ही उसकी प्रतीति से नित्य अनित्य विकल्प साधारण शब्द के समान सत् असत् साधारण विकल्प को ही दिखाया जाने से। आश्रय के बल से भी हेतु को गमकत्व नहीं है जिससे बाधा रहितत्व उसका दोष हो अपितु अन्यथानुपपत्ति की सामर्थ्य से हेतु गमक है, वह आश्रय के बिना भी हो सकता है, यह धर्म साधन नामक हेतु का स्वरूप बताते समय बताया जायेगा।।63।।

भवतु कश्चित्सर्वज्ञः, सतु भगवान्नार्हन्नेवेति कुतः?सुगतादेरपि तत्त्वेन प्रसिद्धेरिति चेत्, उच्यते।भगवानर्हन्नेव सर्वज्ञ सर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्तेः। तथाहि—सुगतस्य तावन्निर्विकल्पकं वेदनं, न तेन सुषुप्तादिवेदनवद्वस्तुपरिच्छित्तिः। सत्यामपि तस्यां न सर्वविषयत्वं कारणस्यैव विषयत्वोपगमात्[1]। न च कारणमेव सर्वं तस्य समसमयस्योत्तरसमयस्य चाकारणत्वात्।अन्यथा "प्राग्भावः सर्वहेतुना" मित्यस्य व्यापत्तेः[2] न चैकस्वभावत्वे ततो नानार्थपरिच्छित्तिर्नित्यादप्येकस्वभावादेव हेतोर्देशादिभेदभिन्नानेकवस्तुप्रादुर्भावोपनिपातेन तन्निषेधाभावप्रसंगात्। प्रतिव्यक्तितदाभिमुख्याभावे पृथगर्थदेशनानुपपत्तेश्च ।।64।।

विपक्षी कहते हैं—मान लो कि कोई सर्वज्ञ है किंतु वह भगवान अर्हन्त ही हैं, यह कैसे जाना सुगतादि को भी सर्वज्ञत्व के रूप में प्रसिद्ध होने से।यदि ऐसा कहते हो तो कहते हैं—भगवान अर्हन्त ही सर्वज्ञ हैं, सर्वज्ञत्व अन्यथा नहीं होने से।सुगत का तो

[1] साकारणं विषय इति।
[2] विरोधात्।

निर्विकल्प ज्ञान है उससे सुषुप्तादि के ज्ञान के समान वस्तु का ज्ञान नहीं होता। सर्व परिच्छित्ति होने पर भी सब वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता, कारण को ही विषय माना जाय से।सभी कारण नहीं हैं समसमय और उत्तर समय को अकारण होने से।अन्यथा "प्राग्भाव सर्वहेतूनां" इसका विरोध हो जायगा।निर्विकल्पक ज्ञान के एक स्वभाव वाला होने से उससे अनेक अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता, नित्य एक स्वभाव वाले हेतु से भी देशादि भिन्न अनेक वस्तु की उत्पत्ति का प्रसंग होने से, उसके निषेध के अभाव का प्रसंग होने से।

प्रति व्यक्ति की प्रतिपदार्थ की मुख्यता के अभाव में पृथक अर्थ के उपदेश को भी नहीं होने से।।64।।

[1]भवत्वेकमनेकस्वभावमेव तद्वेदनं युगपन्नानाकारतया स्वतस्तस्य [2]संवेदनादिति चेन्न। क्रमेणापि तद्रूपतया तस्य तत एव प्रतिपत्तिसंभवात्। [3]तादृशसंवेदनात्मा भगवानर्हन्नेव न सुगतस्तस्य तद्विलक्षणतया तद्वादिभिरभ्यनुज्ञानात्। तत्र सुगतस्य सर्वज्ञत्वं, नापि हरिहरादीनामन्यतमस्य, तद्वेदनस्यापि सकलविषयस्य प्रत्यर्थमाभिमुख्याभावे सतीदंतयेदंतया वस्तुपरिच्छित्तेरनुपपत्त्या तथा तद्देशनाभावप्रसंगात्।प्रतिव्यक्त्यभिमुखतया तस्य मेचकत्वे च क्रमेणापि तादूप्योपपत्त्या पूर्ववदर्हत एव तादृश एवात्मन सर्वज्ञत्वोपपत्तेः। नेश्वरादेस्तस्य तद्रूपतया परैरनभ्युपगमात्। ततो नैकस्याप्येकांतवादिनः सर्ववेदित्वमित्युपपन्नमर्हत एव भगवतस्तद्वेदित्वं, तत्रैव स्याद्वादन्याय नायके जगदुदरविवरवर्तिनिरवशेषपदार्थसार्थसाक्षात्करणस्याक्षूणस्याध्यक्षस्य तस्योपपत्तेरितरत्र विपर्यासादिति।।65।।

सौगत कहते हैं—एक तथा अनेक स्वभाव वाला उनका ज्ञान हो यही मान लो, एक साथ नाना आकार रूप से स्वतः उसकी प्रतीति होने से यह कहना भी ठीक नहीं है, क्रम से भी नाना आकार रूप से उसको उसी ज्ञान से प्रतिपत्ति की संभावना होने से।क्रम और युगपत् रूप से अनेक रूप का संवेदन करने वाले भगवान अर्हन्त ही हैं, सुगत नहीं है उसको उससे विलक्षण रूप से सौगत के द्वारा स्वीकार किये जाने से।अतः सुगत सर्वज्ञ नहीं हैं, न हरिहरादि में से ही कोई सर्वज्ञ है, उनके ज्ञान को सकल विषयों के प्रति मुख्यता के अभाव में इदंतया इदंतया वस्तु का ज्ञान न होने से।उस प्रकार उनके उपदेश के अभाव का प्रसंग होने से।प्रति व्यक्ति की अभिमुख्यता से हरिहरादि के ज्ञान को अस्पष्टहोने पर क्रम से भी उसी प्रकार उनके उपदेश को उपपत्ति होने से पहले के समान (अशेष घातिया कर्मरूपी मल के क्षय से यथार्थ वस्तु को जानने वाले अतिशय निर्मल ज्ञान वाले) भगवान अर्हन्त को ही सर्वज्ञत्व का उपपत्ति होने से।ईश्वर को सर्वज्ञत्व नहीं है उसको उक्त प्रकार का पर मतावलंबियों के द्वारा नहीं माना जाने से।अतः किसी भी एकान्तवादी को सर्वज्ञत्व नहीं सिद्ध होता। अतः भगवान अर्हन्त को ही सर्वज्ञत्व सिद्ध होता है उन्हीं स्याद्वाद न्याय के नायक भगवान अर्हन्त में संसार में रहनेवाले संपूर्ण पदार्थ को

[1] सुगतः।
[2] प्रतीतेः।
[3] क्रमयौगपद्याभ्यामनेकरूपसंवेदनात्मा।
[4] पूर्णस्य।

उसी स्वभाव सहित साक्षात्कार करने में दक्ष संपूर्ण प्रत्यक्ष की उत्पत्ति होने से, अन्यत्र ऐसा नहीं होने से।।65।।

मुख्यसंव्यवहाराभ्यां प्रत्यक्षं यन्निरूपितम्।
देवैस्तस्यात्र संक्षेपान्निर्णयो वर्णितो मया।।

मुख्य और व्यवहार के भेद से जो देव (अनन्त वीर्य) के द्वारा प्रत्यक्ष का वर्णन किया गया है, यहां मेरे द्वारा संक्षेप में उसके निर्णय का वर्णन किया गया है।

इति श्रीमद्वादिराजसूरिविरचिते प्रमाणनिर्णये प्रत्यक्षनिर्णयः।।

इस प्रकार श्रीमदवादिराज सूरि प्रणीत प्रमाण निर्णय ग्रन्थ में प्रत्यक्ष निर्णय प्रकरण समाप्त हुआ।

)))

संप्रतिपरोक्षस्य प्रमाणनिर्णयः।

(अब परोक्ष प्रमाण का निर्णय)

तच्च तस्य परोक्षत्वं न सामान्यविषयत्वं, सामान्यस्य निर्विशेषस्य[1] क्वचिदप्यनवलोकनात्। सविशेषे तु तद्विषयत्वं तु प्रत्यक्षत्वेऽपि। नापि व्यामलाकारत्वं[2] प्रमाणस्य निराकारस्यैव प्रतिपत्तेः। अत एव तदाकारतया[3] तत[4] उत्पत्तिरपि मिथ्याज्ञान एव च तदा तदुत्पत्तिरपि[5] संभवेन्न प्रमाणे। तस्मादंतरंगमलविश्लेषविशेषोदयनिबंधनः कश्चिदस्पष्टत्वापरनामा स्वानुभववेद्यः प्रतिभासविशेष एव तस्य परोक्षत्वं।।66।।

वह प्रमाण का परोक्षत्व सामान्य विषयत्व नहीं है।विशेष रहित सामान्य का कहीं भी अवलोकन नहीं होने से।विशेष सहित सामान्य का विषयत्व प्रत्यक्ष में भी है।अस्पष्ट विषयाकारत्व भी नहीं है, निराकार प्रमाण की ही प्रतिपत्ति होने से।अतः विषय से विषयाकारतया उत्पत्ति भी नहीं होती, मिथ्या ज्ञान में ही उसकी उत्पत्ति हो सकेगी, प्रमाण में नहीं।अतः अन्तरंग मल के विश्लेष विशेष के उदय के कारण होने वाला कोई अस्पष्टत्व अपर नाम वाला अपने अनुभव से जानने योग्य प्रतिभास विशेष ही प्रमाण का परोक्षत्व है।।66।।

[1] यतः विशेषपदार्थसहितसामान्यविषयत्वं भवति।
[2] अस्पष्टविषयाकारत्वं।
[3] विषयाकारतया।
[4] विषयात्।
[5] न केवलं प्रतिपत्तिरेव।

तच्च द्विविधमनुमानमागमश्चेति।अनुमानमपि द्विविधं, गौणमुख्यविकल्पात्। तत्र गौणमनुमानं त्रिविधं, स्मरणं प्रत्यभिज्ञा तर्कश्चेति।तस्य चानुमानत्वं यथापूर्वमुत्तरोत्तरहेतुतयाऽनु[1]माननिबंधनत्वात्।तत्र[2] [3]किमिदं स्मरणं नाम? तदित्यतीतावमासी प्रत्यय इति चेत्, न[4] तर्हि तस्य प्रत्यक्षपूर्वकत्वं तदव[5]गृहीतविषयत्वे सत्येव तदुत्पत्तेः।नचातीतस्य तदवगृहीतत्वमिति चेत्सत्यमेव तस्यापूर्वार्थत्वोपपादनात्।तत्पूर्वकत्वं तु तस्य नीलधवलादिना तद्विषयस्यैव तेनापि ग्रहणात्। एवमपि[7] कथं तस्य प्रामाण्यं?अविसंवादनस्य विषयप्राप्तिलक्षणस्य तत्राभावात्, सोऽपि प्राप्तिकाले तस्यासंनिपातादिति चेत्, प्रत्यक्षस्यापि कथं?तद्विषयस्यापि तत्काले संनिपाताभावात्।भावे स्मरणविषयस्यापि स्यात्। निक्षेपादेस्तद्विषयस्यापि प्राप्तिप्रतीतेः। ततो युक्तमविसंवादात्तस्य प्रामाण्यम्।।67।।

यह परोक्ष प्रमाण दो प्रकार का है—अनुमान और आगम।अनुमान भी दो प्रकार का है—गौण और मुख्य के भेद से।गौण अनुमान भी तीन प्रकार का है, स्मरण प्रत्यभिज्ञान और तर्क।गौण अनुमान को पूर्वपूर्व को उत्तरोत्तर का हेतु होने के कारण अनुमान का कारण होने से अनुमानत्व है।सौगत पूछते हैं—स्मरण क्या है?'वह' इस प्रकार अतीत को प्रकाशित करने वाला ज्ञान है, यदि यह कहते हो तो वह प्रत्यक्ष पूर्वक नहीं हो सकता, प्रत्यक्ष के द्वारा ग्रहीत विषय में ही स्मरण की उत्पत्ति होने से।अतीत को प्रत्यक्ष के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता।यदि यह कहते हो तो ठीक ही है, इसलिये तो उसे अपूर्व को जाननेवाला कहा गया है।स्मरण को प्रत्यक्षपूर्वकत्व इसलिए है कि नीलधवलादि के द्वारा प्रत्यक्ष के विषय को ही स्मरण भी ग्रहण करता है।नीलधवलादि स्वरूप के होने पर भी उसको (स्मरण को) प्रमाणता कैसे है?विषय की प्राप्ति स्वरूप अविसंवादन का वहां अभाव होने से।प्राप्ति के समय विषय के नहीं रहने से अविसंवादन रूप प्राप्ति लक्षण का अभाव है।आचार्य कहते हैं कि यदि ऐसा कहते हो तो प्रत्यक्ष को भी कैसे प्रमाणता है? उसके विषय को भी (तुम्हारे मतानुसार) प्रत्यक्ष के समय नहीं होने से।होने पर स्मरण के विषय को भी हो जायगा।उसके विषय निक्षेपादि की प्राप्ति की प्रतीति होने से।अतः अविसंवाद के कारण स्मरण की प्रमाणता ठीक ही है।।67।।

तथा प्रत्यभिज्ञानस्य, तस्यापि पूर्वापरप्रत्ययाप्रतीता[8]भेदसा[9]दृश्यादि विषयत्वेनापूर्वार्थत्वादविसंवादाच्च। प्रत्यभिज्ञानमेव[10] नास्ति, सो[1]ऽयमित्ययमिव

[1] मुख्यानुमाननिबंधनत्वात्।
[2] तेषु स्मरणादिषु।
[3] सौगतः पृच्छति।
[4] सौगतो वदति।
[5] ज्ञातविषयत्वे।
[6] प्रत्यक्षानवगृहीतविषयत्वादेव।
[7] नीलधवलादिस्वरूपेणाऽपि।
[8] एकत्वप्रत्यभिज्ञानस्य।
[9] सादृश्यप्रत्यभिज्ञानस्य।
[10] बौद्धो वदति।

स इत्यादौ स इत्ययमित्यनयोः स्मरणप्रत्यक्षाकारतयाभिन्नप्रतिभासत्वेन परस्परतोऽर्थांतरत्वादन्यस्य च तदाकारस्याप्रतिवेदनात् कथं तत्र प्रामाण्यपरिचिंतनम्, इति चेन्न तर्हि स इतिस्मरणमपि, सकारानुविद्धादकारानुविद्धस्य संवेदनस्यान्यत्वात्। अन्यथा तदुभयानुविद्धतया प्रतिभासभेदस्याभावप्रसंगादक्षणिकत्वापत्तेश्च। एवमयमित्यत्रा[3]ऽपि प्रतिपत्तव्यं। तथा च कुतो वस्तुप्रतिपत्तिरयमिति प्रत्यक्षस्याव्यवस्थितौ तत्पूर्वकत्वेनानुमानस्याप्यसंभवात्। अथाऽयमित्यकारादिवर्ण भेदेऽपि तदनुविद्धमेकमेव संवेदनं तथैव तस्य निर्बाधमनुभवात्, तर्हि सिद्धः स एवाऽयमित्यादिरपि प्रत्यय एक एव तथा तस्यापि निर्बाधावबोधगोचरत्वात्। अन्यथा समारोपस्यापि तद्रूपस्यामावान्न तद्व्यवच्छेदार्थमनुमानमात्मदर्शनस्य तल्लक्षणस्याभावान्न तन्निबंधनः संसारोऽपीति न तत्प्रहाणाय मुमुक्षूणां चेष्टितमुपपद्यते।।68।।

प्रत्यभिज्ञान को भी प्रमाणता है, उसको भी 'यह अमुक प्रत्यय से अप्रतीत एकत्व, सादृश्य आदि को विषय करने से अपूर्व अर्थ वाला तथा अविसंवादी होने से।बौद्ध कहते हैं—प्रत्यभिज्ञान ही नहीं है, वह यह है, इसके समान वह है इत्यादि में वह तथा यह इन दोनों में स्मरण तथा प्रत्यक्ष रूप से भिन्न प्रतिभास होने से परस्पर एक दूसरे से भिन्न होने के कारण तदाकार का प्रतिवेदन नहीं होने से उसमें प्रमाणता की कल्पना कैसे की जा सकती है।आचार्य कहते हैं—यह कहना ठीक नहीं है।तब "स" यह स्मरण भी नहीं होगा।सकार से युक्त ज्ञान से अकार से युक्त ज्ञान के भिन्न होने से क्रमोच्चारित अनेक वर्णों से युक्त होने के कारण भिन्न प्रतिभासमान ज्ञान को एक मानने पर उस एक के अनेकाक्षर व्यापित्व होने से अक्षणिक का प्रसंग आयेगा।इसी प्रकार 'अयम्' इस प्रत्यक्ष में भी जानना चाहिये।फिर वस्तु की प्रतिपत्ति कैसे होगी?'अयम्' इस प्रत्यक्ष के अव्यवस्थित होने पर प्रत्यक्षपूर्वक होने के कारण अनुमान भी नहीं हो सकेगा।यदि 'अयम्'यहां अकारादि वर्ण भेद होने पर भी उससे युक्त एक ही संवेदन होता है, उसी प्रकार उसका निर्बाध अनुभव होने से तब 'स एवायम्' इत्यादि ज्ञान भी सिद्ध हो जाता है एक ही वस्तु में उसका निर्बाध ज्ञान होने से।।68।।

भवतु स एवायमिति ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानमयमिव स इत्यस्माद्विसदृशः स इति तु ज्ञानं न प्रत्यभिज्ञानं तस्योपमानत्वादिति चेत्, तर्हि तदस्मादुन्नतमवनतं स्थूलमल्पं ह्रस्वं दीर्घमित्यादिज्ञानानामुपमानत्वस्यामावात् कथं न प्रमाणांतरत्वं? [4]प्रतिपन्नस्यैवापेक्षोपनीतेनोन्नतत्वादिना परिवृत्त्य परिज्ञानेन प्रत्यभिज्ञानत्वस्यैव तत्रोपपत्तिरिति चेत्, सिद्धमुपमानस्यापि प्रत्यभिज्ञानत्वं, तेनाऽपि तथा तस्य तादृशेनैव सादृश्यादिना परिज्ञानात्।।69।।

[1] सोऽयमित्याकारवेदनस्य।
[2] क्रमोच्चारितानेकवर्णानुविद्धतया भिन्नप्रतिभासात्मनो ज्ञानस्यैकत्वाभ्युपगमे तस्यैकस्यानेकाक्षरव्यापित्वस्यावश्यंभावादक्षणिकत्वापत्तिरित्यर्थः।
[3] प्रत्यक्षेऽपि।
[4] परिज्ञातवस्तुनः।

अन्यथा तद्रूप समारोप का अभाव होने से उसका निराकरण करने के लिये अनुमान भी नहीं होगा।आत्म दर्शन रूप उस लक्षण का अभाव होने से उसके कारण होने वाला संसार भी नहीं होगा, फिर उस संसार को नष्ट करने के लिए मोक्षार्थियों की चेष्टा भी नहीं होगी

मीमांसक कहते हैं– "स एवाय" इस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान मान भी लें किंतु अयमिव के समान वह अथवा इससे विलक्षण वह है यह ज्ञान प्रत्यभिज्ञान नहीं हैउसके उपमान होने से।यदि ऐसा कहते हो तो–तर इतने समान है, या अन्तर है स्थूल है अल्प है, ह्रस्व है, दीर्घ है इत्यादि ज्ञान के उपमानत्व का अभाव होने से दूसरा प्रमाण क्यों नहीं माना जायगा?ज्ञात वस्तु की अपेक्षा जाने गये उन्नतत्व आदि से युक्तज्ञान से वहां प्रत्यभिज्ञानत्व की ही उपपत्ति होती है यदि यह कहो तो उपमान को भी प्रत्यभिज्ञानत्व सिद्ध ही है, उसके द्वारा भी उस प्रकार उसका उसके समान ही सादृश्यादि से ज्ञान होने से।।69।।

[1]भवतु तर्हि गौरिव गवय इत्यागमाहितसंस्कारस्य[2] पुनर्गवयदर्शने सोऽयं गवयशब्दस्यार्थ[3] इति शब्दतदर्थसंबंधपरिज्ञानमुपमानमिति चेत् न, तत्राऽपि सामान्यतः प्रागागमावगतस्यैव पुनः सन्निहितविशेषविशिष्टतया परिज्ञानतः प्रत्यभिज्ञानत्वस्यैवोपपत्तेः। अन्यथा षड्भिः चरणैश्चंचरीकः, क्षीरनीरविवेचनचतुरचंचुर्विहंगमो हंसः, एकविषाणो मृगः खड्गीतिवचनोपजनितवासनस्य पुनस्तद्दर्शने सोऽयं चंचरीकादिशब्दस्यार्थ इति वाच्यवाचकसंबंधपरिज्ञानस्याप्युपमानवदप्रत्यभिज्ञानत्वे प्रमाणांतरस्य प्रमाणचतुष्टयनियमव्याघातविधायिनः प्रसंगात्। तत्र प्रत्यभिज्ञानादन्य[4]दुपमानमित्युपपन्नं प्रत्यभिज्ञानतयैव तस्यापि प्रामाण्यम्।।70।।

नैयायिक कहते हैं कि फिर तो गौ के समान गवय होता है इस प्रकार आगम से संस्कार प्राप्त पुरुष के पुनः गवय को देखने पर वह यह गवय शब्द का अर्थ है इस प्रकार शब्द और उसके अर्थ के संबंध का ज्ञान उपमान है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है।वहां भी सामान्यतः पहले आगम से जाने हुए का ही बाद में प्राप्त विशेष का विशिष्ट ज्ञान होने से प्रत्यभिज्ञानत्व की ही उपपत्ति होने से।अन्यथा छः चरणों वाला भौंरा है, क्षीर नीर का ज्ञान करने में प्रवीण चोंच वाला पक्षी हंस है, एक श्रृंग वाला हिरण है, यह तलवार वाला है, इत्यादि वचनों से उत्पन्न संस्कार वाले व्यक्ति के पुनः उसके देखने पर वह यह चंचरीकादि शब्द का अर्थ है, इस प्रकार वाच्य वाचक संबंध ज्ञान के भी उपमान के समान प्रत्यभिज्ञानपना नहीं होने से दूसरे प्रमाण को मानना पड़ेगा जिससे आप द्वारा मान्य प्रत्यक्ष, अनुमान , उपमान और आगम के भेद से चार प्रमाण के नियम का व्याघात होगा।अतः प्रत्यभिज्ञान से भिन्न उपमान नहीं है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान के रूप में उपमान को भी प्रमाणता सिद्ध हो जाती है।

[1] नैयायिको वदति।
[2] पुंस इति शेषः।
[3] वस्तुनः।
[4] प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदात्।
[5] सादृश्यमात्रेणोपमानेऽव्यंतर्भावाभावात् , प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानमिति स्वयमेवाभिधानात्।

तर्कश्चेत्थमेव संभवति नान्यथेति व्याप्तिपरिज्ञानात्मा, प्रमाणं, विना तेन लिंगसाध्याविनाभावस्य दुरवबोधत्वात्। न हि प्रत्यक्षतस्तस्यावबोधस्तेन [1]संनिहितविषयबलभाविना देशकालानवच्छेदेन[2] तस्यानवगमात्। तदवच्छेदेनावगतात्तु ततो नानुमानमन्यत्राऽन्यदा तदभावेऽपि तद्भावशंकनस्यानिवृत्तेः।[3]

तर्क भी ऐसा ही हो सकता है, दूसरे प्रकार का नहीं इस प्रकार व्याप्ति का ज्ञान कराने वाला प्रमाण है।उसके बिना हेतु और साध्य के अविनाभाव का ज्ञान कठिन होने से।प्रत्यक्ष से तो हेतु और साध्य के अविनाभाव का ज्ञान होता नहीं, प्रत्यक्ष से चक्षु आदि से संबद्ध वर्तमान विषय को ही जानने वाला होने से दूसरे देश और काल की बात को नहीं जानने से।देशकाल से भिन्न को प्रत्यक्ष के जानने पर अनुमान नहीं होगा।

प्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पात् तर्हि तथा तस्यावगमः। प्रत्यक्षं पौनःपुन्येन साधनस्य साध्यान्वयव्यतिरेकानुविधानमन्वीक्षमाणं सर्वत्र सर्वदाप्येतदेतेन बिना न भवतीतिविकल्पकं ज्ञानमुपजनयति इति चेन्न, [4]तेनाप्यप्रमाणेनतदवगमानुपपत्तेः। प्रमाणत्वमापे न तस्य[5] प्रत्यक्षत्वेन विधारकत्वात्तद्वतः[6] [7]सर्वदर्शित्वापत्तेश्च। नाप्यनुमानत्वेनानवस्थापत्तेः। तदनुमानलिंगाविनाभावस्याप्यन्यस्मादनुमानादवगम इत्यपरापरस्यानुमानस्यापेक्षणात्। तस्मात्प्रत्यक्षानुमानाभ्यामन्यतयैवायं विकल्पः प्रमाणयितव्य, इत्युपपन्नं तस्यापि तर्काभिधानस्य प्रामाण्यम्, [8]अन्यथा लिंगसाध्या विनाभावनियमस्य ततोऽनवगमप्रसंगात्।ततो युक्तं स्मृत्यादेरौपचारिकस्यानुमानस्य प्रामाण्यम्।।71।।

दूसरे देश और दूसरे काल में विषय के नहीं होने पर भी उसके होने की शंका का निवारण नहीं होने से।

सौगत कहते हैं--प्रत्यक्ष के बाद होने वाले विकल्प ज्ञान से उसका ज्ञान होता है।प्रत्यक्ष (निर्विकल्पक ज्ञान) बारबार हेतु का साध्य के साथ अन्वय और व्यतिरेक को देखते हुए सर्वत्र सर्वदा यह इसके बिना नहीं होता, इस विकल्प ज्ञान को उत्पन्न करता है, उनका यह कहना भी ठीक नहीं है, उस अप्रमाण रूप विकल्प ज्ञान से उसके ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होने से।विकल्प ज्ञान को सुगत के यहां प्रमाण नहीं माना है, निर्विकल्प को ही प्रमाण माना गया है और निर्विकल्प ज्ञान वाले को इस प्रकार सर्वदर्शित्व का प्रसंग आता है।अनुमान से भी नहीं कह सकते, अनवस्था का प्रसंग होने से।उस अनुमान के साधन के अविनाभाव का अन्य अनुमान से ज्ञान होगा, इस प्रकार दूसरे दूसरे अनुमान की अपेक्षा होने

---

[1] अवलंबनसामर्थ्यात्, संबद्धं वर्तमानं च चक्षुरादिना गृह्यत इति वचनात्।
[2] अनियमेन।
[3] सौगतः।
[4] विकल्पज्ञानेन।
[5] स्वयं।
[6] पुरुषस्य।
[7] त्रैलोक्यत्रैकाल्यवर्त्यस्मदादिप्रत्यक्षागोचरे
सकलसाध्यसाधनव्यक्तिसाक्षात्करणवदशेषातीन्द्रियार्थसाक्षात्करणोपपत्तेरिति भावः।
[8] तर्कत्वेन प्रामाण्याभावे।

से।इसलिए प्रत्यक्ष और अनुमान से भिन्न इस अन्य विकल्प को प्रमाण मानना चाहिये, इस प्रकार तर्क की भी प्रमाणता सिद्ध होती है।तर्क को प्रमाण नहीं मानने पर हेतु और साध्य के अविनाभाव नियम का ज्ञान नहीं होने का प्रसंग होगा।अतः स्मृति आदि को औपचारिक अनुमान की प्रमाणता ठीक ही है।।71।।

एवं मुख्यस्यापि[1] ।किं तदिति चेत्, साधनात्साध्ये विज्ञानमेव ।साधनं साध्याविनाभावनियमलक्षणं तस्मान्निश्चयपथप्राप्तात्साध्यस्य साधयितुं शक्यस्या[2]-प्रसिद्धस्य[3] यद्विज्ञानं तदनुमानं।।72।।

इसी प्रकार मुख्य अनुमान को भी प्रमाणता है। वह क्या है?ऐसा कहते हो तो साधन से साध्य का ज्ञान ही अनुमान प्रमाण है।साध्य के साथ अविनाभाव लक्षण वाला साधन है निश्चय मार्ग को प्राप्त उस साधन से अबाधित और असिद्ध साध्य को सिद्ध करने के लिए जो ज्ञान है, वह अनुमान है।।72।।

किं[4] तेन?प्रत्यक्षत एव पृथिव्यादितत्त्वस्य प्रतिपत्तेरिति चेन्न, ततोऽप्यनिश्चितप्रामाण्यात्तदनुपपत्तेः।न च प्रतीतिमात्रात्तन्निश्चयो मिथ्याप्रतिभासेष्वपि तद्भावात्। अविसंवादात्तन्निश्चय[5]स्तस्याभ्यस्तविषयेवेदनेषु प्रामाण्यव्याप्ततया प्रतिपत्तेरिति चेत्, आगतमनुमानं, निश्चितव्याप्तिकादर्थादर्थान्तरप्राप्तेरेवानुमानत्वात्। अनुमानमभ्युपगम्यत एव परप्रसिद्धयेति चेत्, कुतो न स्वप्रसिद्धया?वस्तुतस्तस्याप्रामाण्यादिति चेत्, न तर्हि ततः प्रत्यक्षप्रामाण्यनियमोऽप्रमाणात्तदनुपपत्तेः। अन्यथा पृथिव्यादेरपि तत एव प्रतिपत्त्या प्रत्यक्षप्रामाण्यकल्पनस्यापि वैफल्योपनिपातात्।।73।।

चार्वाक कहते हैं-अनुमान की क्या आवश्यकता है? प्रत्यक्ष से ही पृथ्वी आदि तत्व की प्रतिपत्ति होने से।आचार्य कहते है, यह कहना समीचीन नहीं है, अनिश्चित प्रमाण होने से प्रत्यक्ष से भी उसकी प्रतिपत्ति नहीं होने से।प्रतीति मात्र से प्रमाणता का निश्चय नहीं होता, मिथ्या प्रतिभास में भी प्रतीति होने से।यदि यह कहो की अविसंवाद से प्रमाणता का निश्चय होता है उसका अभ्यस्त विषय के जानने में प्रमाणता की व्याप्तता रूप से प्रतिपत्ति होने से तो अनुमान ही आ गया।निश्चित व्याप्ति वाले विषय से विषयान्तर की प्राप्ति को ही अनुमान होने से।पर प्रसिद्धि से अनुमान माना ही जाता है यदि यह कहते हो तो स्व प्रसिद्धि से क्यों नहीं मानते?वास्तविक रूप से उसको अप्रमाण होने से यदि यह कहते हो तो उससे प्रत्यक्ष प्रमाण का निर्णय नहीं हो सकता, अप्रमाण से प्रमाणता की उपपत्ति नहीं होने से अन्यथा पृथ्वी आदि की भी उसी से प्रतिपत्ति होने से प्रत्यक्ष के प्रमाणत्व की कल्पना को व्यर्थता का प्रसंग आयेगा।।73।।

---

[1] प्रामाण्यमिति शेषः।
[2] अबाधितस्येति भावः।
[3] प्रतिवादिनं प्रतिअसिद्धस्य।
[4] चार्वाको वदति।
[5] कुत इति शेषः।

कुतो च तस्याप्रामाण्यं?संभवद्व्यभिचारित्वाल्लिंगस्य, व्यभिचरति हि लिंगं भूयः क्वचिन्नि[1]यमवत्तेनोपलब्धस्या[2]प्यन्यत्राऽन्यदा च तद्वैपरीत्येन[3] प्रतिपत्तेरिति चेत्, कुतः पुनर्व्यभिचारत्वेऽपि तस्याप्रामा[4]ण्यं?तस्य[5] तन्ना[6]न्तरीयकतया प्रतिपत्तेरिति चेत् आगतं पुनरप्यनुमानम्[7] ।अतो नानुमानमंतरेण क्षणमपि जीवनं चार्वाकस्य। ।74 ।।

अनुमान प्रमाण कैसे है?लिंग के व्यभिचारी होने की संभावना से, लिंग कहीं-कहीं व्यभिचारी होता है, बार-बार शिंशपा आदि के वृक्ष रूप में नियम से उपलब्ध होने पर भी किसी अन्य स्थान पर और अन्य समय में उसके लतादि स्वभाव से ज्ञात होने से यदि ऐसा कहते हो तो व्यभिचारी होने पर भी अनुमान अप्रमाण कैसे है?व्यभिचारी लिंग के अविनाभाव रूप से प्रतिपत्ति नहीं होने से यदि ऐसा कहते हो तो पुनः अनुमान आ जाता है।अतः चार्वाक भी अनुमान के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। ।74 ।।

कुतो वा परस्य[8] प्रतिपत्तिर्यतस्तत्प्रसिद्धमनुमानस्य प्रत्यक्षत इति चेन्न, [illegible] शरीरस्यैव परिच्छेदकस्य तस्य ।तस्य तदनर्थांतरत्वात् स एव तस्यापि परिच्छेद इति चेन्न, शरीरप्रत्यक्षत्वेऽपि बुद्धिविकल्पे संशयात् न हि शरीरं पश्यतः पंडितोऽयं मूर्खो वा साधुरयमसाधुर्वेति निश्चयो भवति परीक्षानिरपेक्षं तत्संभा[9]वनापमानयोः प्रसंगात् मामूत्परस्य प्रतिपत्तिस्तत्प्रसिद्ध मप्यनुमान[10]मिति चेत्कथमनुमानाभावे शास्त्रं?तस्यानुमाने प्रसिद्धभूतोपादानचैतन्यादि विषयत्वेन तदभावे निर्विषयत्वेनानुपपत्तेः ।किमर्थं वा तत्? न तावदात्मा[11]र्थमात्मनः प्रागेवावगततदर्थत्वादन्यथा तत्प्रणयनानुपपत्तेः तादृ[12]शस्यापि क्रीड़नार्थं तदिति[13] चेन्न, विचारोपन्यासात्[14]। न हि विचारः क्रीड़नांगं, [15]कर्कशत्वेन चित्तपरितापहेतुत्वात्। नाऽपि परार्थं परस्याप्रतिपत्तेः। अस्त्येव तत्प्रतिपत्तिर्व्यापारादेर्लिंगात्तस्य बुद्धिपूर्वकत्वेन स्वशरीरे प्रतिपत्तरिति

---

[1] वृक्षादिस्वभावतया।
[2] शिंशपात्वादेः।
[3] लतादिस्वभावत्वेन।
[4] अनुमानस्य।
[5] व्यभिचारवतो लिंगस्य।
[6] अविनाभावरूपतया।
[7] "अनुमानमप्रमाणं संभवद्व्यभिचारलिंगत्वात् प्रसिद्धानैकांतिकलिंगवत्।"
[8] इतरवादिनः।
[9] स्यात्कारावज्ञयोः।
[10] मा भूदिति शेषः।
[11] शास्त्रं।
[12] अवगतशास्त्रार्थस्याऽपि पुंसः।
[13] तत् शास्त्रप्रणयनं।
[14] शास्त्रे इति शेषः।
[15] विचारस्येति।

चेदागतं पुनरप्यनुमानम्, अवधृतव्याप्तिकादर्थाद्[1] अर्थांतरप्रतिपत्तेरेव तत्त्वात्। न[2] चैवं प्रत्यक्षादनुमानवदनुमानादर्थापत्तिरप्यन्यन्यदेव प्रमाणं, तदविशेषात्[3]। कथमविशेषे बहिर्व्याप्तेरनुमानस्यांतर्व्याप्तेश्चार्थापत्तेर्भावादिति चेन्न। अध्यनुमानेऽप्यंतर्व्याप्तेरेव गमकांगत्वेन [4]निवेदयिष्यमाणत्वात्। ततः पर्वतोऽयमग्निमान् धूमवत्त्वादिति वाऽग्निरयं दाहशक्तियुक्तो दाहदर्शनादित्यप्यनुमानमेव नापरं प्रमाणम्।।75।।

इतरवादियों को पर (आत्मा) की प्रतिपत्ति किससे होती है जिससे वे अनुमान को अप्रमाण मानते हैं, प्रत्यक्ष से, यह नहीं कह सकते प्रत्यक्ष से शरीर का ही ज्ञान होने से ज्ञानात्मक आत्मा का नहीं।आत्मा के शरीर से अभिन्न होने के कारण शरीर का ज्ञान ही आत्मा का ज्ञान है, यह कहना उचित नहीं है, शरीर के प्रत्यक्ष होने पर बुद्धि के विकल्प में संशय होने से।शरीर को देखने से यह पंडित है, यह मूर्ख है, यह सज्जन है, यह असज्जन है, यह निश्चय नहीं होता, बिना परीक्षा के सम्मान और अपमान का प्रसंग आता है।शरीर से भिन्न की प्रतिपत्ति मत हो, अनुमान भी न हो यदि ऐसा कहते हो तो अनुमान के अभाव में शास्त्र भी कैसे प्रमाण होगा?शास्त्र के अनुमान में प्रसिद्ध भूत उपादान चैतन्य आदि का विषय होने से, अनुमान के अभाव में निर्विषय होने का प्रसंग होने से शास्त्र ही नहीं होगा।और फिर वह शास्त्र किस लिए होगा, अपने लिए तो होगा नहीं, स्वयं को पहले से ही उसके अर्थ को जानने से।यदि वह स्वयं नहीं जानेगा तो उससे शास्त्र का प्रणयन नहीं हो सकेगा।शास्त्र को जानने वाला पुरूष भी क्रीड़ा के लिए शास्त्र बनाता है, यह कहना भी ठीक नहीं है, शास्त्र में विचार होने से।विचार को कर्कश तथा चित्त को कष्ट देने के कारण होने से वह क्रीड़ा का अंग नहीं हो सकता।पर के लिए भी शास्त्र का प्रणयन नहीं हो सकता पर की प्रतिपत्ति नहीं होने से।पर की प्रतिपत्ति होती है, व्यापारादि हेतु से।बुद्धिपूर्वक अपने शरीर में प्रतिपत्ति होती है यदि यह कहते हो तो पुनः अनुमान आ गया।ग्रहण किये गये व्याप्ति हेतु से साध्य की प्रतिपत्ति को ही अनुमानत्व होने से।पुनः प्रभाकर मत का निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार प्रत्यक्ष से अनुमान प्रमाण की सिद्धि के समान अनुमान से अर्थापत्ति भी अन्य प्रमाण है, समानता होने से यह भी नहीं कह सकते।समानता कैसे है?अनुमान की बहिर्व्याप्ति होने से और अर्थापत्ति की अन्तर्व्याप्ति होने से यह कहना भी ठीक नहीं है, अनुमान में भी अन्तर्व्याप्ति के गमक होने का, आगे वर्णन किया जाने से। अतः यह पर्वत अग्नि वाला है धूमवाला होने से तथा यह अग्नि दाह शक्ति युक्त है, दाह (जलन) के देखने से यह अनुमान ही प्रमाण है, अन्य नहीं।।75।।

[5]अभावस्तर्हि प्रमाणांतरं प्रत्यक्षादावनंतर्भावात् इति चेत् न, [6]तस्याज्ञानत्वेन प्रामाण्यस्यैवासंभवात्[7] ।ज्ञानमेवासौ, भूतले तज्ज्ञानादेव[1] घटा—

---

[1] लिंगात्।

[2] प्रभाकरमतमाशंक्य निराकरोति।

[3] अर्थापत्तेः।

[4] सर्वमनेकांतात्मकं सत्त्वादित्यादिसपक्षविपक्षलक्षणोदाहरणादिष्वभिधास्यमानत्वात्।

[5] भाट्ट आह।

[6] अभावप्रमाणं ज्ञानमज्ञानं वेति विकल्पद्वयं मनसि निधाय प्राह जैन।

[7] अज्ञानस्य प्रामाण्यासंभवः प्रागेव समर्थितः।

—भावस्यावगमादिति चेत्, ननु[1] तस्याभावो नाम भूतलस्य कैवल्यमेव नापरोऽप्रतिवेदनात्तत्र[2] च तज्ज्ञानं प्रत्यक्षमेव। न तत्कैवल्यमात्रस्यज्ञान —मभावज्ञानमपि तु घटो नास्त्यत्रेत्याकारमिति चेत्, तत्यागेनोपलभ्यमाणघटा —विशिष्टतयोपलभ्यमानतत्कैवल्यपरामर्शिनः प्रत्यभिज्ञानत्वेन तदंतरत्वानुपपत्तेः, नाऽस्त्यत्र घटोऽनुपलब्धेर्गगनकुसुमवदित्याकारत्वेऽपि तस्यानुमान एवांतर्भावादिति न प्रमाणांतरत्वमभावस्यापि। ।76।।

भाई कहते हैं—तब अभाव प्रमाणान्तर है, प्रत्यक्षादि में उसका अन्तर्भाव नहीं होने से, यह कहना भी ठीक नहीं है।अभाव को प्रमाण मानते हो तो वह ज्ञान है या अज्ञान?यदि वह अज्ञान है तब तो प्रमाण हो ही नहीं सकेगा।यदि यह कहो कि वह ज्ञान ही है, भूतल में भूतल के ज्ञान से ही घटाभाव का ज्ञान होने से।जैनाचार्य कहते हैं घट का अभाव तो केवल भूतल का होना ही है, अन्य नहीं, अन्य का प्रतिवेदन नहीं होने से।केवल भूतल के होने से ही घटाभाव का ज्ञान तो प्रत्यक्ष ही है।पुनः विपक्षी कहते हैं कि भूतल कैवल्य का ही ज्ञान नहीं होता अपितु घटाभाव का भी ज्ञान होता है "यहाँ घड़ा नहीं है" इस प्रकार का ज्ञान होता है यह कहना ठीक नहीं है।केवल भूतल को ग्रहण करने तथा घट से अविशिष्ट भूतल के स्मरण करने से प्रत्यभिज्ञान होने से अन्य प्रमाण की उपपत्ति नहीं होने से।"यहाँ घट नहीं है" आकाश कुसुम के समान अनुपलब्ध होने से इस प्रकार का ज्ञान होने पर भी उसका अनुमान में अन्तर्भाव हो जाने से अभाव को अन्य प्रमाण नहीं कहा जा सकता। ।76।।

किं लक्षणं तत्तर्हि साधनं यतोऽनुमानमिति चेत्, पक्षधर्मत्वं सपक्ष एव सत्त्वं विपक्षे वाऽसत्त्वमेवेति त्रिलक्षणमिति [6]केचित्। तदसत्। एवं सत्युदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयादित्यस्य पक्षधर्मत्वाभावेनागमकत्वोपपत्तेस्तदभावश्च शकटे धर्मिण्युदेष्यत्वे साध्ये कृत्तिकोदस्य हेतोरभावात्।नायं दोषः, कालस्य धर्मित्वात्तत्र च तद्भावात्, तथा च प्रयोगो मुहूर्त्तपरिमाणः कालः शकटोदयवान् भवति कृत्तिकोदयत्वात् प्रवृत्ततत्कालवदिति चेन्न, [7]एवमप्ययस्कारकुटीरधूमेन पर्वतपावकस्यानुमानापत्तेस्तदुभयगर्भस्य विस्तारिणःपृथिवीतलस्य धर्मित्वेन हेतोः पक्षधर्मत्वोपपत्तेः।नायं[8] दोषस्तस्य तदविनाभावनियमाभावादिति चेत्, न तर्हि कालादिधर्मिकल्पनयाऽन्यत्रापि[9] पक्षधर्मत्वोपपादनेन* किंचित्सतोऽपि तस्य

---

[1] विज्ञानं वाऽन्यवस्तुनि।
[2] जैनो वदति।
[3] घटाभावस्य भूतलकैवल्ये सति।
[4] "गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनं मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेक्षानपेक्षया"।
[5] उपलभ्यमानभूतलकैवल्यं पश्चात्स्मर्यमाणघटाविशिष्टतया परिवृत्य जानीत इत्यर्थः।
[6] बौद्धाः।
[7] मुहूर्तपरिमाणकाले धर्मिण्यपि।
[8] तदुभयगर्भं विस्तारि भूतलं पर्वताग्निमत् अयस्कारकुटीरधूमवत्त्वादिति।
[9] उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयादित्यत्राऽपि।

गमकत्वं प्रत्यनंगत्वात्। नाऽपि सपक्षे सत्वेन, विनाऽपि तेन[1] केवलव्यतिरेकिणो गमकत्वनिवेदनात्। नाऽपि विपक्षासत्वेनासद्विपक्षस्यापि सर्वमनेकांतात्मकं सत्वादित्यादेः स्वसाध्यप्र[2]त्यायनसामर्थ्यस्याग्रे निरूपणात्।नाऽपि पक्षधर्मत्वादि त्रयेण, सत्यपि तस्मिन् सः श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवदित्यत्र[3] तत्वस्यागम--कत्वात्। अस्ति ह्यत्र तत्त्रितयं धर्मिणि सपक्षे च श्यामे तत्पुत्रत्वस्य भावादश्यामादन्यपुत्राद[4]पवृत्तेश्च।।77।।

साधन का क्या लक्षण है, जिससे अनुमान होता है, यह पूछने पर बौद्ध कहते हैं– पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व तथा विपक्ष में असत्व इन तीन लक्षणों वाला हेतु होता है।आचार्य कहते हैं बौद्धों का यह कथन समीचीन नहीं है।ऐसा होने पर रोहिणी का उदय होगा, कृतिका का उदय होने से, यहां पक्षधर्मत्व का अभाव होने से हेतु गमक नहीं होगा।यहां पक्षधर्मत्व का अभाव है, रोहिणी धर्मी में उदय होने वाले साध्य में कृतिकोदय हेतु का अभाव होने से।बौद्ध कहते हैं यह दोष नहीं है, काल को धर्मी होने से काल में उदेष्यति साध्य का सदभाव होने से।ऐसा प्रयोग करना चाहिये।मुहूर्त के बाद का समय रोहिणी उदय से युक्त होगा, कृतिका का उदय होने से पहले देखे हुए रोहिणी के उदय के समान।यह भी ठीक नहीं है, मुहूर्त परिमाण काल के धर्मी होने पर भी लोहार की कुटिया के धुएं से पर्वत में अग्नि के अनुमान का प्रसंग आने से।दोनों ही जगह की पृथ्वी को धर्मी होने से हेतु को पक्षधर्म होने से।यह दोष नहीं है, अविनाभाव नियम का अभाव होने से दोष है, यदि यह कहते हो तो कालादि धर्मी की कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं है"उदेष्यति शकटं कृतिकोदयात" यहां भी पक्ष धर्मत्व को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, पक्षधर्म के किंचित् होने पर भी गमकत्व के प्रति उसके निष्प्रयोजन होने से।सपक्ष में होना भी हेतु का लक्षण नहीं है, सपक्ष में नहीं होने पर भी केवल व्यतिरेकी हेतु को गमकत्व बताया जाने से।विपक्ष में असत्व भी हेतु का लक्षण नहीं है, विपक्ष के न होने पर भी "सर्वमनेकान्तात्मकं सत्वात्" इत्यादि को अपने साध्य को सिद्ध करने में समर्थता का आगे निरूपण किया जाने से।पक्षधर्म, सपक्षसत्व और विपक्षे असत्व इन तीनों से भी कोई प्रयोजन नहीं है, इन तीनों के होने पर भी "सः श्यामः तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" इस अनुमान में तत्पुत्रत्वात हेतु साध्य को सिद्ध नहीं करता।पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व तथा विपक्षे असत्व ये तीनों बातें धर्मी तथा सपक्ष के श्याम होने में तत्पुत्रत्व हेतु होने से किन्तु किसी अन्य पुत्र के अश्याम भी होने से तत्पुत्रत्व हेतु को गमक नहीं होने से।।77।।

स्यान्मतं न पक्षधर्मत्वादिकं साक्षाल्लक्षणं लिंगस्याविनाभावस्यैव तथा तत्वात्तस्य तु तत्रैव[5] भावात्।तदपि तल्लक्षणत्वेनोक्तं, [6]ततोऽविनाभावविरहेऽपि तद्भावो न दोषाय तद्वादिन[7] इति, तत्र।प्रत्येकं पक्षधर्मत्वाद्यभावेऽप्यविनाभावस्य

---

[1] सर्वं जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्वात् व्यतिरेके भस्मवदित्यस्य, सर्वं क्षणिकं सत्वात् तत्र खरविषाणवदित्यस्य।

[2] ज्ञापन।

[3] अनुमाने।

[4] व्यावृत्तेः।

[5] तस्मिन्सत्येव।

[6] "तस्य तु तत्रैव भावा" दित्यनेनाविनाभावस्य व्याप्यत्वं पक्षधर्मत्वादिकस्य व्यापकत्वं चाभिहितं यतः।

[7] सौगतस्य।

निरूपितत्वात्तत्समुदायेन तदभावेऽपि संति प्रमाणानीष्टसाधनादित्यादौ तद्भावात्तत्र त्रैरूप्यं साधनलक्षणम्।।78।।

शायद यह कहो कि हेतु का पक्षधर्मत्वादि साक्षात् लक्षण नहीं है, अविनाभाव ही साक्षात् लक्षण है। अविनाभाव के पक्षधर्मत्वादि के होने पर ही होने से पक्षधर्मत्वादि को भी हेतु का लक्षण कहा है।अतः अविनाभाव के बिना भी त्रैरूप्य का होना सौगत के लिये दोष का कारण नहीं है।पक्षधर्मत्वादि प्रत्येक के अभाव में अविनाभाव को निरूपित करने से तथा तीनों के समुदाय रूप में अभाव होने पर भी "संति प्रमाणानीष्टसाधनात्" इत्यादि में अविनाभाव के होने से।अतः त्रैरूप्य हेतु का लक्षण नहीं है।।78।।

नाऽपि पांचरूप्यं तत्राऽप्यविनाभावस्यानियमात्।पक्षधर्मत्वे सत्यन्व[1]य–व्यतिरेकाववाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं च पांचरूप्यं।न चेह तन्नियमः, प्रकृते हेतौ तदभावेऽपि तद्भावात्, तत्पुत्रादौ तद्भावे तदभावादस्ति हि तत्पुत्रत्वस्य पक्षधर्मत्वमन्वयव्यतिरेकाववाधितविषयत्वमपि सः श्याम इति पक्षस्य प्रत्यक्षादिना बाधानुपलब्धेरसत्प्रतिपक्षत्वमपि श्यामत्वविपर्ययसाधनस्य प्रत्यनुमानस्याप्रतिपत्तेः। तत्र त्रैरूप्यादिकं लक्षणं लिंगस्य साध्याविनाभावनियमस्यैव तत्त्वोपपत्तेः।सति तन्निर्णये त्रैरूप्यादिभावव[2]दभावेऽपि साध्यप्रतिपत्तेरावश्यकात्।।79।।

पांचरूप्य भी हेतु का लक्षण नहीं है, पांचरूप्य के होने पर भी अविनाभाव का नियम नहीं होने से।पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व, विपक्षाद् व्यावृति, अबाधितविषयत्व और असत्प्रतिपक्षत्व ये पांचरूप्य हैं।इन पांचों के होने पर भी अविनाभाव का नियम नहीं है।"संति प्रमाणानीष्टसाधनात्" यहां इष्टसाधनात् हेतु में पांचरूप्य के नहीं होने पर भी अविनाभाव होने से , तत्पुत्रत्वादि में पांचरूप्य के होने पर भी अविनाभाव नहीं होने से।तत्पुत्रत्व हेतु में पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व, विपक्षाद् व्यावृत्ति, अबाधित विषयत्व तथा असत्प्रतिपक्षत्व भी है।सः श्यामः तत्पुत्रत्वात् में पक्ष के प्रत्यक्षादि प्रमाण से कोई बाधा नहीं होने से अबाधित विषयत्व तथा श्यामत्व के विपरीत साधन के प्रति किसी अनुमान की प्रतिपत्ति नहीं होने से असत्प्रतिपक्षत्व भी है।अतः त्रैरूप्य या पांचरूप्य हेतु के लक्षण नहीं हैं, साध्य के साथ साधन के अविनाभाव का नियम से होना ही साधन का लक्षण होने से।अविनाभाव का निर्णय होने पर त्रैरूप्यादि के होने पर जैसे साध्य की प्रतिपत्ति होती है, उसी प्रकार त्रैरूप्यादि के नहीं होने पर भी साध्य की प्रतिपत्ति आवश्यक होने से।।79।।

[3]एवमपि स्वभावकार्यानुपलब्धिभेदेन त्रिविधमेव लिंगं।अविनाभावस्य तत्रैव नियमादिति चेत्, न। रसादे रूपादावतत्स्वभावादेरपिगमकत्वप्रतिपत्तेः। न हि रसादे रूपादिस्वभावत्वं भेदेन प्रतिपत्तेः। नाऽपि तत्कार्यत्वं समसमयत्वात्। तत्कारणकार्यत्वादस्त्येव तस्य तत्कार्यत्वं पारंपर्येणेति चेन्न, [4]इन्धनविकारस्यापि

---

[1] सपक्षे सत्वं विपक्षाद व्यावृत्तिश्च।
[2] त्रैरूप्यादिभावे सति यथा साध्यप्रतिपत्तिः।
[3] बौद्धः प्रत्यवतिष्ठते, अविनाभाव नियमस्य लिंगलक्षणत्वेऽपि।
[4] उत्तररूपलक्षणकारणभूतप्राक्तनरूपलक्षणकार्यत्वात्।

पावकजन्मन एवं धूमकार्यत्वेन तल्लिंगत्वापत्तेः।न चैवं धूमादिनावेन तत्संभवेन[1] व्यभिचारात्, रसादेरपि[2] [3]तत्कारणस्य प्रतिपत्तेरेव [4]रूपादेरपि प्रतिपत्तिस्तस्य तज्जननधर्मतया ततोऽनुमानात्ततः कार्यतयैव तत्र तस्यैव लिंगत्वमिति चेत्ततः कार्यतयैव तत्र तस्यैव लिंगत्वमिति चेन्न, धूमशिंशपादेरप्यग्निवृक्षादि कार्यस्वभावतया प्रतिपत्तेरेवाग्निवृक्षादिप्रतिपत्तित्वापत्त्या लिंगव्यवहारस्यैवाभावोपनिपातात्। रसादिकारणात्तर्हि रूपादेरवगम इति चेन्न, कारणस्य लिंगत्वानभ्युपगमात्। स्वाभावलिंगमेव तत्तत्र साध्यस्य रूपादेस्तन्मात्रेणैव[5] भावात्, स्वसत्तामात्रानुबंधिसाध्यविषयस्य लिंगस्य स्वभावलिंगत्वोपगमादिति चेत्, न। तत एव धूमादेरपि तल्लिंगत्वप्रसंगेन कार्यलिंगस्यामावानुषंगात्र रसादेः कार्यस्वभावयो रंतर्भावो नाऽप्यनुपलंभे[6] विधिसाधनत्वादिति कार्यादिभेदेनात्रैविध्यं लिंगस्य।।80।।

बौद्ध पुनः कहते हैं—अविनाभाव को साधन का लक्षण होने पर भी स्वभाव, कार्य और अनुपलब्धि के भेद से हेतु तीन प्रकार का ही है, अविनाभाव का उसी में नियम होने से यह कहना भी ठीक नहीं है।रसादि के रूपादि में अतत्स्वभाव होने पर भी गमकत्व की प्रतीति होने से रसादि स्वभाव वालेभी नहीं हैं भेद से प्रतिपत्ति होने से।रसादि रूपादि के कार्य भी नहीं हैं, समसमय वाले होने से।बाद के रूप लक्षण का कारण पूर्वरूपलक्षण कार्य के होने से परंपरा से कार्यत्व है, यह भी नहीं कह सकते, इस प्रकार अग्नि से उत्पन्न भस्म को भी उनका कार्य धूआं होने से लिंगत्व का प्रसंग होने से।भस्म से धूमादि की उत्पत्ति नहीं होने से भस्म धूमादि का लिंग नहीं है, अतः व्यभिचार है।

पूर्वरूपादि से रसादि की प्रतिपत्ति से ही रूपादि की प्रतिपत्ति होती है, रूपादि को रसादि के उत्पन्न करने का धर्मवाला होने से अतः अनुमान से कार्यरूप से वहां उसी को हेतुपना है, ऐसा नहीं कह सकते, धूआं और शिंशपा आदि को भी अग्नि और वृक्षादि के कार्य स्वाभाव रूप से प्रतिपत्ति होने से अग्नि वृक्षादि की प्रतिपत्ति का प्रसंग होने से हेतु के व्यवहार का ही अभाव होने का प्रसंग होने से।रसादि कारण से तब रूपादि का ज्ञान होता है यह नहीं कह सकते, कारण को हेतुपना नहीं माना जाने से।स्वभावलिंग ही है रसादि रूपादि का।पूर्वरूप क्षण को उत्तररूपलक्षण का जनक होने का स्वभाव होने से, इस स्वभाव लिंग से रूपादि साध्य के सिद्ध होने से।अपनी सत्ता मात्र से संबंधित साध्य विषय के लिंग को स्वभावलिंगत्व माना जाने से।यह कहना भी ठीक नहीं है, उसी से धूमादि को भी अग्नि आदि के लिंगत्व का प्रसंग होने से, कार्यलिंग के अभाव का प्रसंग होने से।रसादि के कार्य और स्वभाव में अन्तर्भाव नहीं होता, अनुपलंभ में भी अन्तर्भाव नहीं होता, उपलंभ का साधन होने से।अतः कार्य स्वभाव और अनुपलब्धि के भेद से लिंग तीन प्रकार का नहीं है।।80।।

---

[1] भस्मादेरिति भावः।
[2] इत्यत्र तृतीया हेत्वर्थे नतु सहार्थे।
[3] अनुभूयमानात्।
[4] पूर्वरूपादेः।
[5] अनुभूयमानरसलक्षणसमानकालीनस्य।
[6] पूर्वरूपक्षणः उत्तररूपक्षणजनकः पूर्वरूपक्षणत्वात् संप्रतिपन्नवत्।
[7] अंतर्भावः।

नाऽप्यन्वयादिभेदेन संति प्रमाणानीष्टसाधनादित्यस्यागमकत्वप्रसंगात्। नह्यसावन्वयी व्यतिरेकी वा साधर्म्योदाहरणादेरभावादत एव नान्वयव्यतिरेक्यपि। न चासावगमक एवेष्टसाधनस्य प्रमाणसद्भावाविनाभावितया निर्णयात्। प्रमाणनिरपेक्षे हि तत्साधने अतिप्रसंगः तत्त्वोपप्लवसंविदद्वैतादेरिव तद्विपर्ययस्यापि[1] तथा तत्प्रसंगात्।।81।।

अन्वयादि भेद (अन्वय, व्यतिरेक तथा अन्वय व्यतिरेकी आदि) भेद से भी लिंग तीन प्रकार का नहीं है– "संति प्रमाणाभीष्टसाधनात्" यहां "इष्टसाधनात्" हेतु के अगमकत्व का प्रसंग होने से।इष्टसाधनात् हेतु न अन्वयी है न व्यतिरेकी, साधर्म्य वैधर्म्य उदाहरण का अभाव होने से।साधर्म्य वैधर्म्य उदाहरण का अभाव होने से ही यह अन्वय व्यतिरेकी भी नहीं है।यह हेतु अगमक भी नहीं है, इष्टसाधन का प्रमाण के साथ अविनाभाव रूप से निर्णय होने से।प्रमाण के बिना ही इष्ट साधन होने पर अतिप्रसंग हो जायगा। तत्वोपप्लवसंविदद्वैतादि के समान उसके विपरीत तत्वसदभाव पुरुषद्वैतादि के यहां भी उसी प्रकार का प्रसंग होने से।।81।।

नापि [2]संयोग्यादिभेदेन चातुर्विध्यं, तस्य [3] कृत्तिकोदयस्य शकटोदयादावलिंगत्वापत्तेः। नहि तत्र तस्य संयोगो धूमस्येवाग्नौ।नाप्यऽसौ तस्य समवायी गोरिव विषाणादिः।न च तेन सहैकार्थसमवायी[4] रूपादिनेव रसादिः। न च तद्विरोधी तद्विधिलिंगत्वात्।तत्र लिंगे त्रैविध्यादिनियमकल्पनमुपपन्नम्। [5]अतस्त्रिय–तस्यापि साध्याविनाभावनियमविषयस्यानेकस्याभावात्।।82।।

संयोग, समवाय एकार्थसमवाय और विरोधी के भेद से लिंग चार प्रकार का भी नहीं है, कृत्तिकोदय को शकटोदयादि में अलिंगत्व का प्रसंग होने से।शकटोदय आदि में कृत्तिकोदय का अग्नि में धुएं के समान संयोग नहीं है, गाय के विषाणादि के समान समवाय संबंध भी नहीं है, रूपादि के साथ रसादि के समान एकार्थसमवाय संबंध भी नहीं है, वह विरोधी भी नहीं है उसको (प्रमाण को) सिद्ध करने में लिंग होने से।अतः हेतु में त्रैविध्य पांचरूप्य, चातुर्विध्य आदि नियम की कल्पना ठीक नहीं है, त्रैविध्यादि के न होने पर भी साध्य के साथ अविनाभाव रूपी नियम का अभाव होने से।।82।।

संक्षेपेण तु [6]तद्विद्यमानं द्विधा भवति, विधिसाधनं प्रतिषेधसाधनं चेति।विधिसाधनमपि द्वेधा, धर्मिणस्तद्विशेषस्य चेति।धर्मिणो यथा, संति बहिरर्थाः साधनदूषणप्रयोगादिति। कथं[7] पुनरतो भावधर्मिणो बहिरर्थस्य साधनं? कथं[8] च

---

[1] तत्वसद्भावपुरुषद्वैतादेः।
[2] संयोगिसमवायिएकार्थसमवायितद्विरोधि भेदेन।
[3] लिंगस्य।
[4] कृत्तिकोदयः।
[5] न विद्यते त्रैविध्यादि नियतं यत्र।
[6] साधनं।
[7] परः प्राह।
[8] जैन आह।

न स्यात्? अस्य [1] तद्भावधर्मत्वे तद्वदसिद्धत्वापत्तेस्तदभावधर्मत्वे चातस्तदभावस्यैव सिद्धेर्विरुद्धत्वोपनिपातात् तदुभयधर्मत्वे च व्यभिचारप्रसंगादिति चेन्न, [2]प्रत्येको[3]भयधर्मविकल्पविकलस्यैवास्याभ्यनुज्ञानात् ।कथमेवं[4] तस्य बहिरर्थभाव प्रत्येव लिंगत्वं न तदभावं प्रत्यपीति चेन्न, तत्रैव तस्याविनाभाव नियमाद्ध र्मिधर्मस्यापि कृतकत्वादेरनित्यत्वादौ तत एव गमकत्वोपपत्तेर्न धर्म्मिधर्मत्व— —मात्रेण[5]कशाखाप्रभवत्वादापि तदुपनिपातेनातिप्रसंगापत्तेः ।[6]तत्र साधनं नीलादे संवेदनत्वसमर्थनं दूषणं बहिरर्थत्वनिषेधनं तयोः प्रयोगः प्रकाशनं[7] नीलादि संवेदनात् व्यतिरिक्तस्तद्वेद्यत्वात् सुखादिवदित्यादिश्च, कथं पुनरस्य बहिरर्था — भावेऽनुपपत्तिरिति चेत्, अस्य बहिरर्थविशेषा[8]देव ।न हि तदभावे तद्विशेषस्य संभवः वृक्षाभावे शिंशपाभावस्यैव प्रतिपत्तेः ।नासौ तद्विशेष [9]आरोपितरोपिरूपत्वादिति चेत्, न ततः सर्वशक्तिविकलादनिष्टवदिष्टस्याप्यसिद्धेः । अप्यनारोपितोऽप्ययं बोध एव न बहिरर्थ इति चेत् न, प्रतिपाद्यस्य तदभावात् । प्रतिपादकस्येति चेत्, कथं ततः[10] प्रतिपाद्यस्य प्रकृतार्थप्रतिपत्तिरन्यबोधादन्यस्य तदनुपपत्तेर[11]न्यथा प्रत्यात्मबुद्धिभेदकल्पनावैफल्योपनिपातात् । तस्मादर्थविशेष एवाऽयमित्युपपन्नमेतत् बहिरर्थव्यवस्थापनं तदभावे स्वयमप्यभावापत्तेः । ।83 । ।

संक्षेप में वह साधन दो प्रकार का है--विधि साधन और प्रतिषेध साधन ।विधि साधन भी दो प्रकार का है—धर्मी का और धर्मी विशेष का। धर्मी का उदाहरण है— "संति बहिरर्थाः साधनदूषणप्रयोगात्" ।अन्य मतावलंबी कहते हैं इससे भावधर्मी बहिरर्थ का साधन कैसे हुआ?जैनाचार्य कहते हैं कैसे नहीं होगा?परपक्ष कहते हैं—साध्य को भावधर्म होने पर उसी के समान असिद्धत्व की आपत्ति होती है, अभावधर्म मानने पर अभाव की ही सिद्धि होती है; अतः साधन विरुद्ध हो जाता है, भावाभाव उभय धर्म मानने पर व्यभिचारी हो जाता है ।आचार्य कहते हैं—ऐसा नहीं है—भाव, अभाव और भावाभाव विकल्प से रहित ही धर्मी को माना जाने से ।विपक्षी कहते हैं—धर्मित्व के अभाव में साधन दूषण प्रयोग हेतु बहिरर्थ के सद्भाव के लिए ही कैसे है?अभाव के लिये क्यों नहीं है? आचार्य कहते हैं—यह कहना ठीक नहीं है—भाव के प्रति ही उसके अविनाभाव का नियम होने से ।"शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात्" यहां भी शब्दधर्मी में अनित्यत्व धर्म को सिद्ध करने में कृतकत्व हेतु भी

---

[1] "असिद्धो भावधर्मत्वे व्यभिचार्युभयाश्रितः ।विरुद्धो धर्मो भावस्य सा सत्ता साध्यते कथं" इति कारिका मनसि धृत्वा परः प्राहः ।

[2] भाव, अभाव ।

[3] भावाभावश्च ।

[4] धर्मित्वाभावे ।

[5] अन्यथा, सर्वफलानि पक्वानि धर्मीणि एकशाखाप्रभवत्वात् ।

[6] भाव प्रत्यविनाभावाभाव समर्थयते परः ।

[7] लक्षणं ।

[8] प्रयोगस्य बहिरर्थविशेषत्व शब्दरूपत्वात्प्रतीयमानत्वं ।

[9] साधन दूषणप्रयोग, बहिरर्थविशेष इत्यारोपितरूपत्वात् ।

[10] प्रतिपादकबोधात् ।

[11] प्रकृतार्थप्रतिपत्त्यनुपपत्तेः ।

अविनाभाव के कारण ही गमक है, केवल धर्मी धर्म के कारण नहीं अन्यथा "सर्वफलानि एकस्मिन् एकशाखाप्रभवत्वात्" यहां भी धर्मी के एकशाखाप्रभवत्व होने से हेतु को गमकत्व का प्रसंग आने से, अतिप्रसंग दोष आयेगा।क्योंकि एक शाखा पर होने के कारण सभी फलों का पका होना आवश्यक नहीं है।विपक्षी बहिरर्थ के भाव के प्रति अविनाभाव का अभाव बताते हुए कहते हैं नीलादि को संवेदनत्व का समर्थन साधन है और बहिरर्थ का निषेध दूषण है, उनका प्रयोग इस प्रकार है—नीलादि संवेदन से भिन्न हैं, संवेदन के द्वारा ज्ञेय होने से अपने स्वरूप के समान इत्यादि।नीलादि जड़ नहीं हैं प्रतिभासमान होने से सुखादि के समान इत्यादि।बहिरर्थ विशेष के कारण ही।बहिरर्थ के अभाव में बहिरर्थ विशेष की संभावना नहीं हो सकती, वृक्ष के अभाव में शिंशपा के अभाव की ही प्रतिपत्ति होने से।साधन दूषण प्रयोग बहिरर्थ विशेष नहीं हैं, आरोपित रूप होने के कारण, यह कहना भी ठीक नहीं है, सर्वशक्ति रहित उस हेतु से अनिष्ट के समान इष्ट की भी सिद्धि नहीं होने से।आरोपित नहीं होने पर भी यह ज्ञान ही है, बहिरर्थ नहीं, यह नहीं कह सकते।यदि नीलादि को प्रतिपाद्य मानते हो तो वह ज्ञान नहीं हो सकता।प्रतिपादक? कहते हो तो उस प्रतिपादक ज्ञान से प्रतिपाद्य के प्रकृत अर्थ का ज्ञान कैसे होगा?अन्य ज्ञान से अन्य के अर्थ का ज्ञान नहीं होने से, यदि अन्य के ज्ञान से अन्य के अर्थ की प्रतिपत्ति होने लगे तो प्रत्येक आत्मा की बुद्धि के भेद की कल्पना विफल हो जायेगी।अतः यह साधन अर्थ विशेष ही है अतः इससे बहिरर्थ का व्यवस्थापन ठीक ही है, बहिरर्थ के अभाव में बहिरर्थ विशेष के भी अभाव की आपत्ति होने से।।83।।

तथेदमपरं धर्मिसाधनं संति प्रमाणानीष्टसाधनादिति।न हि प्रमाण निरपेक्षमिष्टस्य विभ्रमैकांतादेः साधनमुपपन्नं, तद्विपर्ययस्यापि तथैव तत्प्राप्त्या तदेकांताभावप्रसंगात्।तद्विपर्ययस्योपायाभावोपदर्शनेन प्रतिक्षेपे तदेकांत एव पारिशेष्यादवतिष्ठत इति चेदस्ति तर्हि प्रमाणमुपायाभावोपदर्शनस्यैव तत्त्वादन्यथा तत्तदेकांतविपर्ययप्रतिक्षेपानुपपत्तेः। पारिशेष्यं[1] च यदि न प्रमाणं न तद्बलात्तदेकांतस्य तद्विपर्ययव्यवस्थापनम्। तस्मात्प्रमाणमेव तत्रेत्युपपन्नमेवेष्टसाधनान्यथानुपपत्त्या प्रमाणास्तित्वव्यवस्थापनम्। एवमन्यदपि धर्मिसाधनमभ्यूहितव्यम्।।84।।

यह दूसरा धर्मी साधन है—"संति प्रमाणानीष्टसाधनात्" प्रमाणनिरपेक्ष विभ्रम एकान्त आदि से इष्ट का साधन नहीं हो सकता अन्यथा अप्रमाण के एकान्त रूप से अभाव का प्रसंग होने से।प्रमाण के विपरीत को उपाय के अभाव के रूप में दिखाने से उसका निराकरण करने पर वह एकान्त ही पारिशेष्य रूप से रहता है यदि ऐसा कहते हो तो प्रमाण सिद्ध हो जाता है, उपाय के अभाव दिखाना ही एकान्त होने से अन्यथा एकान्त विपर्यय का निराकरण नहीं हो सकता।पारिशेष्य भी है, यदि प्रमाण न हो तो उसके आधार पर एकान्त की प्रमाण के विपरीत स्थापना नहीं हो सकती।अतः विभ्रम एकान्त आदि की स्थापना से भी प्रमाण की ही सिद्धि होती है।अतः प्रमाण के बिना इष्ट साधन नहीं हो सकता, इससे प्रमाण के अस्तित्व की व्यवस्था सिद्ध हो जाती है, इसी प्रकार अन्य भी धर्मीसाधन को जानना चाहिये।।84।।

---

[1] प्रमाणस्य प्रतिषेधे अन्यत्र प्रसंगात् शिष्यमाणे सप्रत्यय अनिश्चयस्वरूप भाव पारिशेष्यः।
[2] विपर्यैकांतादिव्यवस्थापने।

धर्मिविशेषसाधनमपि द्वेधा, धर्मिणोऽनर्थान्तरमर्थान्तरं चेति। अनर्थान्तरमपि द्विविधं, सपक्षेण विकलमविकलं चेति। तत्राद्यं सर्वमनेकान्तात्मकं सत्त्वादिति। सत्त्वं खलु सामर्थ्येन व्याप्तमसमर्थाद्[1] व्योमकुसुमादेस्तस्य व्यावृत्तेः। सामर्थ्यस्य चैकत्वे न ततः प्रदीपादि[2]संबंधिनः कज्जलमोचनतैलशोषादिकार्यम्, अनेकत्वे च कथं न [3]भावस्यानेकांतात्मत्वं। [4]भावतस्तस्य व्यक्तिरेका[5]दिति न, समर्थो भाव इति भावसामानाधिकरण्येन सामर्थ्यस्याप्रतिपत्तिप्रसंगात्। तथा तत्प्रतिपत्तेरव्यतिरेक एव द्रव्यत्वं सामान्यं संवेदनं प्रमाणमित्यादौ दृष्टत्वात्। कथं पुनरेकस्यानेकत्वं विरो[6]धादिति चेत् न, तदभावे तत्प्रतिपत्तेरेवानुपपत्तेर्विरोधस्यहि विरोधिनोऽवगमे सत्येव प्रतिपत्तिः। अवगमश्च नैकस्वभाववा बुद्ध्या तयोरेकत्वापत्तेः।[7] अनेकस्वभावया-श्चानेकांतमनिच्छतामसंभवात्। एवं वैयधिकरण्यादिप्रतिपत्तावपि वक्तव्यम्। ।85।।

धर्मी विशेष साधन भी दो प्रकार का है—धर्मी से अभिन्न और भिन्न। धर्मी से अभिन्न भी दो प्रकार का है—सपक्ष से रहित और सपक्ष से सहित। सपक्ष से रहित—"सर्वमनेकान्तात्मकं सत्त्वात्" यहां सत्त्व हेतु सभी अर्थ क्रिया कारी से व्याप्त है असमर्थ (अर्थक्रिया कारी से विपरीत) आकाश कुसुम आदि से अव्याप्त है। सामर्थ्य के एक होने पर उससे प्रदीपादि संबंधी का जल का छोड़ना, तेल का सुखाना आदि कार्य नहीं होगा, अनेक होने पर पदार्थ कोअनेकान्तात्मकता कैसे नहीं होगी? पदार्थ से उसके भेद होने के कारण यदि यह कहो तो "समर्थो भाव" इस प्रकार भाव के समानाधिकरण के रूप में सामर्थ्य की अप्रतिपत्ति का प्रसंग आयेगा। भाव के साथ सामर्थ्य के समानाधिकरण के रूप में प्रतिपत्ति होने पर वह भाव से अभिन्न ही है, द्रव्यत्वं सामान्यं संवेदनं प्रमाणं इत्यादि में देखा जाने से। एक को अनेकता कैसे हो सकती है, दोनों में विरोध होने से, यह भी नहीं कह सकते, विरोधी के अभाव में विरोध की ही प्रतिपत्ति नहीं होने से, विरोधी के ज्ञान हो जाने पर ही विरोध की प्रतिपत्ति होती है। एक स्वभाव वाली बुद्धि से तो विरोधी का ज्ञान हो नहीं सकता, दोनों के एक होने का प्रसंग होने से, अनेक स्वभाव वाली बुद्धि अनेकान्त को नहीं चाहने वालों के यहां असंभव है। इसी प्रकार वैयधिकरण आदि की प्रतिपत्ति में भी कहना चाहिये। ।85।।

---

[1] क्रियाकारकात्।

[2] आदिशब्देन

वर्तिकादाहोर्द्धज्वलनस्वपरप्रकाशनतमश्छेदनस्फोटादिकरणानुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययोत्पादनप्राणिविशेषदृष्टि प्रतिबंधनमनुष्यादिदृष्टयप्रतिबंधनप्राणिविशेषमारणप्रदीपांतरकारणादि ग्राह्यं।

[3] पदार्थस्य।

[4] पदार्थतः।

[5] भेदात्।

[6] भेदाभेदयोर्वैधिनिषेधयोरेकत्राभिन्ने वस्तुन्यसमव शीतोष्णाद्योरितेति विरोधः, भेदस्यान्यधिकरणमभेदस्य चान्यदिति वैयधिकरण्यं, यस्मात्मानं पुरोधाय भेदाय च समाश्रित्याभेदस्तावात्मानौ भिन्नौ चाभिन्नौ च तत्राऽपि तथा परिकल्पनादनवस्था, येन रूपेण भेदस्तेन भेदश्चाभेदश्चेति सकरः, येन भेदस्तेनाभेदो येनाभेदस्तेन भेद इति व्यतिकरः, भेदाभेदात्मकत्वे च वस्तुनो साधारणाकारेण निश्चेतुमशक्तः संशय तत्तश्चाप्रतिपत्तिः, ततोऽभाव इत्यानेकांतेऽष्टदूषणानि।

[7] बुद्धेः।

संशयस्तु स्वयमेव निर्णयानिर्णयरूपतयाऽनेकांतरूपतामु[1]पजीवन्न तत्प्रतिक्षेपाय संपद्यते।भावस्यानेकरूपत्वं यद्येकस्वभावात्ततः कार्यमप्यनेकं किं न स्यात्?अनेकस्वभावाच्चेदनवस्था पुनस्तस्याप्यन्यतस्ततो भावात्।इत्यपि न युक्तं. स्वहेतोरेव तथाविधात्तस्य तद्रूपतयोत्पत्तेर्हेतुतथाविधत्वस्यापि तद्धेतु तथाविधत्वादेव भावात्।न चैव[2]मनवस्थानं दोषोऽनादित्वात्तत्प्रबंधस्य।ततो युक्तं सत्वं सर्वस्यानेकात्मकत्वं तदन्यथानुपपत्तिनियमवत्तयासाधयत्सपक्ष विकलस्यो–दाहरणम्। ।86।।

संशय तो स्वयं निर्णय तथा अनिर्णय रूप होने के कारण अनेकरूपता को प्राप्त करता हुआ अनेकान्त का निराकरण नहीं कर सकता।पर पक्ष कहता है–भाव को अनेकरूपता यदि एक स्वभाव से मानते हो तो कार्य भी अनेक क्यों नहीं होंगे? अनेक स्वभाव से कहो तो अनवस्था हो जायगी फिर उसके भी अन्य अनेक स्वभाव वाले से होने के कारण।यह कहना भी ठीक नहीं है।उस प्रकार के अपने हेतु से ही उसकी अनेकरूपता होने से, उस हेतु और अनेकरूपता को भी उसके हेतु और अनेकरूपता से अनेकरूपता होने के कारण।इस प्रकार अनवस्था नहीं होती।उस परंपरा के अनादि होने से।अतः सत्व हेतु सर्व पदार्थों में अनेकांतात्मकत्व को सिद्ध करता हुआ सपक्ष विकल का उपयुक्त उदाहरण है. अनेकान्तात्मकत्व के बिना सत्व के नहीं होने का नियम होने से। ।86।।

सपक्षाविकलमपि द्विधा, सपक्षस्य व्यापकमव्यापकं चेति व्यापकं यथा, अनित्यः शब्दः कृतकत्वात्[3] घटवदिति। स पक्षे व्यापकत्वं चाऽस्य घटवदनित्ये सर्वत्र विद्युद्वनकुसुमादावपि भावात्।तदव्यापकत्वं तु तत्रैव साध्ये प्रयत्नंतरीयकत्वं, तस्य तत्वं घटवदनित्येऽप्यन्यत्र जलधरध्वानादावभावात्। ।87।।

धर्मी से अभिन्न सपक्ष सहित भी दो प्रकार का है–व्यापक और अव्यापक।व्यापक का उदाहरण है–अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवत्।कृतकत्व हेतु का सपक्ष में व्यापकत्व है घड़े के समान अनित्य विद्युत वन कुसुम आदि में भी सर्वत्र होने से।अव्यापकत्व उसी अनित्य साध्य में प्रयत्नंतरीयकत्व स्वभाव से होना है।कृतकत्व हेतु के घड़े के समान अन्य अनित्य वस्तुओं में होने पर भी मेघ गर्जन आदि में नहीं होने से। ।87।।

धर्मिणो भिन्नमपि[4] लिंगमनेकधा, कार्यकारणमकार्यकारणं चेति।कार्यं धूमः पर्वतादौ हि पावकस्य, व्याहारादि शरीरे जीवस्य कारणं, मेघोन्नतिविशेषे वृष्टेः, अभ्यवहारविशेषस्तृप्तेः। करणस्य[5] कथं लिंगत्वं? प्रतिबंधवैकल्याभ्यां[6] तस्य

---

[1] गच्छन्।

[2] "मूलक्षयकरीमाहुरनवस्थां हि दूषणं।वस्त्वानत्येऽप्यशक्तौ च नानवस्था निवार्यते"।

[3] अपेक्षितपरव्यापारो हि भावः कृतक उच्यते।

[4] अर्थांतरं।

[5] सौगतः।

[6] सामर्थ्यप्रतिबंधकारणांतरवैकल्याभ्यां।

कार्यत्वानियमादिति चेत्, सत्यम्, यदि कारणमात्रस्य लिंगत्वं, न चैवम्, अन्यथाऽनुपपत्तिनियमनिर्णयवत एव तस्य तत्त्वोपगमात्तथाविधत्वं च प्रसिद्धमेव मेघोन्नतिविशेषादौ व्यवहारिणामिति निरवद्यं तस्य लिंगत्वम्। ।88।।

धर्मी से भिन्न साधन भी अनेक प्रकार के हैं कार्य, कारण तथा अकार्यकारण।कार्यलिंग धूआं पर्वतादि में अग्नि का अनुमान होना।देवदत्त का शरीर जीव का कारण है, बादल का उन्नत होना वृष्टि का कारण है, भोजन करना आदि तृप्ति का कारण है।

सौगत कहते हैं—कारण को लिंगत्व कैसे है?सामर्थ्य, प्रतिबंध आदि कारण नंतर के बिना कारण के कार्यरूप होने का नियम नहीं होने से।आचार्य कहते हैं—यह कहना ठीक है—यदि कारण मात्र को साधन कहा जाय किंतु कारण मात्र को साधन नहीं कहा गया है, अन्यथानुपपत्ति नियम वाले कारण को ही लिंगत्व माना जाने से और मेघोन्नति विशेष आदि में वृष्टिआदि के अन्यथानुपपत्ति का नियम व्यवहार में प्रसिद्ध ही है।अतः कारण को लिंगत्व दोषरहित है।।88।।

अकार्यकारणं पुनर्द्वेधा, साध्येन समसमयं विभिन्नसमयं चेति।समसमयं रसादि रूपादेः, शरीराकारविशेषो जीवस्य।प्रतिपद्यते गाढमूर्च्छाद्यवस्थायां तद्विशेषदर्शनाज्जीवत्ययमिति प्रतिपत्तारः।कथमन्यथा तदवस्थापनोदाय तेषां चिकित्साविधादुपत्रकर्म[2] इति।विभिन्नसमयं पुनरद्य भास्करोदयः [3]उत्तरेद्युस्तदुदयस्य। नाऽवश्यंभावस्तदुदयस्य कदाचित्पतिव्रतया तत्प्रतिबंधस्य श्रवणादिति चेन्न, [4]जनश्रुतिमात्रविश्वासेन व्यभिचारकल्पितस्यायोगात्, अन्यथा पुत्रस्य [5]पितृप्रभवत्वानुमानमपि न भवेत् द्रोणवदपितृकस्यापि तद्भावस्य संभवात्। अस्ति हि तत्रापि जनश्रुतिः "द्रोणः कलशादुत्पन्न" इति। कथमेवमप्युत्तरोदयः प्रत्यकार्यत्वमस्येति चेत्, ततः प्रागेव भावात्।तथाऽप्युत्तरस्य कारणत्वे "प्राग्भाव सर्वहेतुनामित्यस्य व्यापत्तिः।तं प्रत्यकारणत्वमपि चिरव्यवहितत्वेन, तत्काल प्राप्त्यभावात्। अन्यथा तादृशादेवाविद्यातृष्णादेर्मुक्तिंगतस्यापि संसारोत्पत्तेर्न मुक्तिरात्यंतिकी भवेत्।।89।।

अकार्यकारण दो प्रकार का है—साध्य से समसमय और विभिन्न समय।समसमय रसादि रूपादि का है, जीव का शरीर का अकार विशेष है।जानने वाले गाढ़ मूर्च्छा आदि की अवस्था में शरीराकार विशेष को देखकर यह जीता है, ऐसा जानते हैं, अन्यथा मूर्च्छा को दूर करने के लिए उनकी चिकित्सा का आरंभ क्यों किया जाता है, विभिन्न समय—आज सूर्य का उदय होने से कल सूर्योदय होगा, यह अनुमान।प्रतिपक्षी कहते हैं—कहीं—कहीं पतिव्रता के द्वारा उसका प्रतिबंध सुना जाता है, अतः आज का सूर्योदय कल के सूर्योदय

।निराकारणत्वात्।

[2] ह्यात्वारम्भ उपक्रम।

[3] उत्तरेद्यु भास्करः उदेष्यति अद्य भास्करोदयात्।

[4] शाण्डिल्या।

[5] अयं पितृप्रभवः पुत्रत्वात्।

का अवश्यक कारण नहीं है।आचार्य कहते हैं—यह कहना ठीक नहीं है, जनश्रुति मात्र पर विश्वास करने से व्यभिचार की कल्पना नहीं की जा सकती है, अन्यथा "अयं पितृप्रभवः पुत्रत्वात्" यहां पुत्र के पिता से उत्पन्न होने का अनुमान भी नहीं किया जा सकता, द्रोण के समान बिना पिता के भी पुत्रत्व की संभावना होने से।वहां भी जनश्रुति है कि द्रोण कलश से उत्पन्न हुए थे।ऐसा होने पर भी उत्तरोदय के प्रति आज के सूर्य को अकारणत्व क्यों है?यदि ऐसा कहते हो तो उससे उससे पहले होने के कारण।यदि फिर भी उत्तर को कारण मानोगे तो *"प्राग्भाव सर्वहेतुनां"* इस कथन का विरोध होगा।उसके प्रति अकारणत्व है, चिर व्यवहित होने के कारण, तत्काल प्राप्ति का अभाव होने से अन्यथा चिरव्यवहित तथा तत्काल प्राप्ति नहीं होने पर भी अविद्या, तृष्णा आदि से मोक्ष प्राप्त के भी संसार की उत्पत्ति होने से किसी की भी आत्यन्तिकी मुक्ति नहीं होगी।।89।।

कथं[1] पुनः पुनरतत्स्वभावस्यातत्कार्यस्य च तदुदयस्य तत्राविनाभावो गवादेस्तादृशस्याश्वादौ तदनवलोकनादिति चेत्, तत्स्वभावादेरपि कथं? — चूतत्वस्य तत्स्वभावत्वेऽपि वृक्षत्वे, भस्मनस्तत्कार्यत्वेऽपि पावके[2] तदनवलोकनात्। [3]कथमन्यथा चूतत्वं लतायां निर्दहनमपि[4] भस्म भवेत्।विशिष्टस्यैव तस्य वृक्षत्वादौ नियमो न तन्मात्रस्य तथाप्रतीतेरिति चेत्, सिद्धमिदानीमस्वभावा—देरप्यद्यतनतपनोदयस्य श्वस्तनतदुदयं प्रत्यविनाभावित्वं, तथा प्रतीतेः, न गवादेर[5]श्वादिकं प्रति[6] विषय[7]यात्।ततो युक्तमविनाभावसंभवादस्वभावादेरपि लिंगत्वम्। एवमन्यदपि विधिसाधनं प्रतिपत्तव्यम्।।90।।

बौद्ध कहते हैं—दूसरे दिन के सूर्योदय से पहले दिन के सूर्योदय को अतत्स्वभाव और अतत्कार्य होने पर भी उसका दूसरे दिन के सूर्योदय के साथ अविनाभाव कैसे सिद्ध होगा, अतत्स्वभाव और अतत्कार्य गवादि का कुत्ते आदि में अविनाभाव नहीं देखा जाने से।यदि ऐसा कहते हो तो तत्स्वभावादि का भी अविनाभाव कैसे है?आम्रत्व का तत्स्वभाव होने पर भी वृक्षत्व में तथा भस्म का तत्कार्य होने पर भी अग्नि में अविनाभाव नहीं देखा जाने से। यदि अविनाभाव होता तो लता में आम्रत्व और अग्नि रहित भस्म कैसे होता ?यदि यह कहो कि विशिष्ट आम्रत्व और भस्म का ही वृक्षत्व तथा अग्नित्व के साथ अविनाभाव है, आम्र तथा भस्म मात्र का नहीं, उस प्रकार प्रतीति नहीं होने से तो अतत्स्वभाव और अतत्कार्य आज के सूर्योदय को कल के सूर्योदय के साथ अविनाभाव सिद्ध ही हो जाता है, ऐसी प्रतीति होने से, गवादि का अश्वादि के प्रति लिंगत्व नहीं सिद्ध होता, अविनाभाव नहीं होने से।अविनाभाव के होने पर अतत्स्वभाव और अतत्कार्य को भी लिंगत्व सिद्ध होता है।इसी प्रकार अन्य भी विधि साधन जानना चाहिये।।90।।

---

[1] सौगत।
[2] साध्ये।
[3] चूतत्वस्य तत्स्वभावत्वेऽपि भस्मनश्च तत्कार्यत्वेऽपि पावकेनाविनाभावोऽस्तीति चेत्।
[4] अग्निना सहितं।
[5] नियमस्य।
[6] लिंगत्वं।
[7] अविनाभावित्व नास्तीत्यर्थः।

प्रतिषेधसाधनमपि द्विधा, विधिरूप प्रतिषेधरूपं चेति।विधिरूपमप्यनेकधा, विरूद्धं यथा, नाऽस्ति तत्र शीतस्पर्शो वह्नेरिति।वह्निः खलूष्णस्पर्शात्मा 'रूपविशेषादवगम्यमानस्तत्प्रत्यनीकस्य स्पर्शस्याऽभावं गमयति विरूद्धकार्यमत्रैव साध्ये धूमादिति।धूमो हि वह्निं तत्कार्यत्वेनावगमयंस्तद्विरोधिनः स्पर्शस्याभा – वमवबोधयति।।91।।

प्रतिषेध साधन भी दो प्रकार का है– विधिरूप प्रतिषेधरूप, विधिरूप भी अनेक प्रकार का है– विरूद्ध, विरूद्ध कार्य और विरूद्ध अकार्य कारण।विरूद्ध का उदाहरण है–"नास्ति तत्र शीतस्पर्शो वह्नेः" अग्नि उष्ण स्पर्श वाली है, रूपविशेष से जानी जाती है, उससे विरूद्ध शीत स्पर्श के अभाव का बोध कराती है।विरूद्ध कार्य–जैसे "नास्ति शीत स्पर्शो धूमात्" धूआं आग का कार्य होने के कारण आग का बोध कराता हुआ उसके विरोधी शीत स्पर्श के अभाव को बताता है।।91।।

कारणविरूद्धकार्यमस्यैव प्रभेदः।तद्यथा–नाऽस्य हिमजनितो रोमहर्षादिविशेषो धूमादिति। धूमः खलु हिमस्य तत्प्रत्यनीकदहनोपनयनद्वारे णाभावमाविर्भावयंस्तत्कार्यस्य तद्विशेषस्याभावमवबोधयति।।92।।

कारणविरूद्ध कार्य इसी का प्रभेद है–जैसे "नास्त्यस्य हिमजनितो रोमहर्षादिविशेषो धूमात्"।धूआं ठंड के विरूद्ध अग्नि को बताने के द्वारा ठंड के अभाव को बताता हुआ ठंड के कार्य रोमहर्षादि विशेष के अभाव का बोध कराता है।।92।।

विरूद्धकारणं, नायं मुनिः परपीडाकरः कृपालुत्वादिति। कृपालुत्वं हि परहितनिबंधनतयाऽनुग्रहमुपस्थापयत्[2]द्वतस्तत्पीडाकरत्वमपाकरोति।।93।।

विरूद्ध कारण–"नायं मुनि परपीडाकरः कृपालुत्वादिति" यह मुनि दूसरे को कष्ट देने वाले नहीं हैं, कृपालु होने के कारण।कृपालुत्व हेतु परहित का कारण होने से अनुग्रह की स्थापना करता हुआ, कृपालु मुनि के परपीडाकरत्व का निराकरण करता है।।93।।

कारणविरूद्धकारणमस्यैव प्रभेदः। तद्यथा–नाऽस्य मुनेर्मिथ्यावादस्तत्व– शास्त्राभियोगादिति। तदभियोगो हि रागादिरहितस्य [3]तत्कारणतया तत्त्वज्ञानसद्भा– वमुपनिपातयंस्तत्प्रत्यनीकमिथ्याज्ञाननिवृत्तिनिवेदनद्वारेण तन्निबंधनमिथ्यावादस्य विरहं [4]निरपवादमुपपादयति।।94।।

कारण विरूद्ध कारण इसी का प्रभेद है–"नास्यमुनेर्मिथ्यावादस्तत्वशास्त्राभियोगात्" तत्वशास्त्राभियोग रागादि रहित के तत्वज्ञान का कारण होने से तत्वज्ञान के सद्भाव को

---

1 पिंगाभासुराकारत्।
2 मुने।
3 तत्वज्ञानकारणतया।
4 निर्दुष्टं।

बताता हुआ उसके विरुद्ध मिथ्याज्ञान की निवृत्ति बताने के द्वारा उसके कारण मिथ्यावाद के अभाव को निर्दोष सिद्ध करता है।।94।।

अकार्यकारणमप्यनेकधा, विरुद्धव्याप्तादिविकल्पात्।विरुद्धव्याप्तं यथा, नास्ति भावेषु सर्वथैकांतः सत्त्वादिति, सत्त्वं खल्वनेकांतेन व्याप्तमन्यथा तदनुपपत्तेः। तथाहि–तदर्थक्रियाकारिण एव [1]व्योमारविंदादावतत्कारिणि तदभावात् ।।95।।

अकार्यकारण भी अनेक प्रकार का है, विरुद्ध व्याप्त आदि के भेद से।विरुद्ध व्याप्त का उदाहरण– नास्ति भावेषु सर्वथैकान्तः सत्त्वात् ।पदार्थों में सर्वथा एकान्त नहीं है सत्त्व होने से।सत्त्व हेतु अनेकान्त से व्याप्त है, अनेकान्त के बिना उसकी उत्पत्ति नहीं होने से।कहा भी है–सत्त्व अर्थक्रियाकारी के ही होता है, अर्थक्रियाकारी नहीं होने पर आकाश कुसुम आदि में सत्त्व के नहीं होने से।।95।।

तत्कारी[2] च यद्येकस्वभावः, अत एकमेव कार्यमवेत्र देशादि[3]भिन्नमनेकम्। अन्यथा सकलस्यापि जगत एकहेतुकत्वापत्तेः। सहकारिभेदादेकस्वभावादपि तदनेकमुपपन्नमेवेति चेत्, तद्भेदस्यैव तर्हि तत्र हेतुत्वं, तदनुतयैव तस्योत्पत्तेर्नैकस्वभावस्य विपर्ययात्। तस्यापि तदा[4] भावाद्धेतुत्वेऽतिप्रसंगतत्काल भाविन सर्वस्यापि तत्र तत्वापत्तेः। नैकस्वभावस्य नाऽपि सहकारिभेदस्य तत्र हेतुत्वं, तत्समुदायस्यैव तत्वादिति चेत्, तस्यैव तर्हि सत्त्वं स्यान्न प्रत्येकं समुदायिनां।न च तदभावे समुदायस्यापि तत्तद्व्यतिरेकिणस्तस्याप्रतिवेदनादित्यनेकस्वभावस्यैवानेककार्यकारित्वमभ्यनुज्ञातव्यम्। अनेकस्वभावत्वं च तस्य स्वकारणात्तथाविधात्तस्याऽपि तत्त्वं तथाविधात्तद्धेतोरिति नानवस्थानमत्र–दोषस्तत्प्रबंधस्यानादित्वादित्युपपन्नमनेकांतव्याप्ततया सत्त्वस्य तद्विरोधिसर्वथै – कांतप्रत्याख्यानं प्रति साधनत्वम्।।96।।

परपक्ष कहते हैं–अर्थक्रियाकारी यदि एक स्वभाव वाला है तो उससे एक ही कार्य होना चाहिये, देश, काल आकार आदि भिन्न अनेक कार्य नहीं, अन्यथा संपूर्ण संसार का एक ही कारण होने का प्रसंग आयेगा।सहकारी के भेद से एकस्वभाव वाले से भी अनेक कार्य उत्पन्न होते ही हैं, यदि ऐसा कहते हो तो उसके भेद को ही उसका हेतु होना चाहिये, उसके बाद उसी से (सहकारी के भेद से) ही कार्य की उत्पत्ति होने से एक स्वभाव को कारण नहीं मानना चाहिये विपर्यय होने से।अनेक कार्य की उत्पत्ति के समय एक स्वभाव वाले भाव के भी होने से उसको भी हेतु मानने पर अतिप्रसंग हो जायेगा, उस समय होने वाले सभी भाव को हेतुत्व का प्रसंग आने से।अतः न तो एक स्वभाव वाले भाव

---

[1] घटत।
[2] अर्थ क्रियाकारी भावः।
[3] आदिशब्देन कालाकारयोर्ग्रहणं।
[4] अनेककार्योत्पत्तिवेलायां।
[5] वस्तुनः।

को सहकारी भेद को हेतुपना है, उसके समुदाय को ही हेतुत्व है, यदि ऐसा कहते हो तो समुदाय को ही सत्य होना चाहिये, समुदाय में प्रत्येक को नहीं।एक स्वभाव वाले भाव के अभाव में समुदाय को भी हेतुत्व नहीं हो सकता, भिन्न–भिन्न स्वभाव वाले समुदाय का प्रतिवेदन नहीं होने से।अतः अनेक स्वभाव वाले भाव को ही अनेक वस्तु का कार्यकारी मानना चाहिये।भाव का अनेकस्वभावत्व उस प्रकार के अपने कारण से, उसका भी अनेक स्वभावत्व उस प्रकार के उसके अपने कारण से होता है, यहां अनवस्था दोष नहीं है, उस परंपरा के अनादि होने के कारण।अतः सत्य को अनेकान्त से व्याप्त होने के कारण उसके विरोधी एकान्त के निराकरण के प्रति हेतुत्व ठीक ही है।।96।।

विरुद्धसहचरं यथा–नास्य मुनेर्मिथ्याज्ञानं सम्यग्दर्शनादिति।सम्यग्दर्शनं [1]तत्साहचर्य्यनियमेन सम्यग्ज्ञान[2]मुपसर्पयत्तत्प्रत्यनीकमिथ्याज्ञान[3]प्रत्यवायमुपपादयतीत्युपपन्नं तत्र तस्य लिंगत्वं।विरुद्धसहचरस्य कारणमत्रैव साध्ये [4]तत्त्वाधिगमादिति, कार्यं चानुकंपाऽऽस्तिक्यादिरिति।तत्त्वाधिगमो हि सम्यग्दर्शनस्य कारणमनुकंपादि च कार्यमविनाभावनिर्णयात् सम्यग्ज्ञानसहभाविनस्तस्य भावमवबोधयन्मिथ्याज्ञानव्युदासाध्यवसायमासादयति। एवमन्यदपि विधिरूपं प्रतिषेधलिंगं प्रतिपत्तव्यम्।।97।।

विरुद्धसहचर यथा उदाहरण– नास्य मुनेर्मिथ्याज्ञानं सम्यग्दर्शनात् "सम्यक्दर्शन के साथ सम्यक् ज्ञान के होने का नियम होने से सम्यक्दर्शन सम्यक् ज्ञान को बताता हुआ उसके विपरीत मिथ्या ज्ञान के अभाव को बताता है, अतः वहां सम्यग्दर्शन को हेतुत्व सिद्ध होता है।विरुद्ध सहचर का कारण इसी साध्य में "नास्य मुनेर्मिथ्या ज्ञानं तत्त्वाधिगमात्" कार्य अनुकम्पा आस्तिक्य आदि है। तत्त्वाधिगम सम्यक्दर्शन का कारण है और अनुकंपा आस्तिक्य आदि सम्यक्दर्शन के कार्य है।ये अविनाभाव के निर्णय से सम्यक्ज्ञान के साथ होने वाले अनुकंपादि के भाव को बताते हुए मिथ्याज्ञान के अभाव का निश्चय कराता है।इसी प्रकार अन्य भी विधिरूप प्रतिषेधलिंग जानना चाहिये।।97।।

प्रतिषेधरूपमपि तल्लिंगमनेकधा।तत्र स्वभावानुपलंभो यथानास्ति बोधत्मनि[5] रूपादिमत्वमनुपलंभात् खरमस्तके विषाणवदिति। न चेदमत्र मंतव्यं, परमाण्वादेः सतोऽपि क्वचिदनुपलंभाद् व्यभिचार इति, तत[6] प्रकृतानुपलंभस्य[7] गोपालकलशधूमादेः पर्वतधूमादेरिव विलक्षणत्वेन तद्दोषोपनिपातासंभवात्।तर्हि दृश्यविषयत्वमेव ततस्तस्य वैलक्षण्यमिति दृश्यानुपलंभस्यैव हेतुत्वमिति चेत् न, अदृश्यानुपलंभस्याप्यात्मनि पिशाचरूपत्वाभावे गमकत्वात्, अन्यथा पिशाचो

---

[1] सम्यग्ज्ञान।
[2] उपनयत्।
[3] अभावं।
[4] तत्त्वार्थोपदेशश्रद्धानादिभाव तत्त्वार्थानां श्रद्धानपूर्वकमवधारण हि ग्रहणमत्रेष्टमन्यथाऽस्य ग्रहणाभासत्वात्।
[5] बोतसि।
[6] परमाण्वाद्यनुपलंभात्।
[7] रूपादिमत्त्वानुपलंभस्य।

नाहमस्मीति व्यवहारानुपपत्तेः।न च पिशाचस्यादृश्यत्वे तदव्यतिरेकिणस्त[1]द्रूपत्वस्य दृश्यत्वम्।[2]आत्मनोऽदृश्यत्वेन तदभिन्नतयाऽदृश्यत्वमपि तस्येति चेत्, नेदानीमेकांत-तस्तदनुपलंभस्याभावं प्रतिगमकत्वं, दृश्यादृश्यविषयतया संशयनिबंधनत्वात्। तत्र दृश्यविषयतयैव गमकत्वमनुपलंभस्याविनाभावनियमनिर्णये तदपरस्यापि तदुपपत्तेः।।98।।

प्रतिषेधरूप लिंग भी अनेक प्रकार का है—स्वभावानुपलंभ का उदाहरण—*'नास्ति बोधात्मनि रूपादिमत्त्वमनुपलंभात् खरशृङ्गवत्'*।यहां यह मानना कि परमाणु आदि के रूपादिमत्व होने पर भी कहीं अनुपलंभ होने से अनुपलंभात् हेतु व्याभिचारी है, ठीक नहीं है।परमाणु आदि के अनुपलंभ से रूपादिमत्व के अनुपलंभ को विलक्षण होने से, गोपालकलश के धूएं और पर्वत के धूम के विलक्षणत्व के समान।अतः परमाणु आदि के होने पर भी कहीं अनुपलंभ होने से बोधात्मा में रूपादि मत्व के अनुपलंभ को कोई दोष नहीं है।परपक्ष कहते हैं—तब दृश्यविषयत्व ही परमाणु आदि के अनुपलंभ से बोधात्मा में रूपादि के अनुपलंभ को विलक्षणत्व है।आचार्य कहते हैं यह कहना ठीक नहीं है अदृश्यानुपलंभ को भी आत्मा में पिशाचरूपत्व के अभाव में गमकत्व होने से।अन्यथा *पिशाचो नाहमस्मि* यह व्यवहार नहीं हो सकता।पिशाच के अदृश्य होने पर उससे अभिन्न पिशाचत्व को भी दृश्यत्व नहीं हो सकता।आत्मा के अदृश्य होने के कारण उससे अभिन्न होने से पिशाचत्व को भी अदृश्यत्व है यदि ऐसा कहते हो तो एकान्त रूप से अनुपलंभ हेतु ही आत्मा में रूपादिमत्व के अभाव के प्रति गमक नहीं है दृश्य अदृश्य विषय के कारण संशय का कारण होने से।अतः दृश्य विषय के कारण ही अनुपलंभ हेतु गमक नहीं है, अविनाभाव नियम का निर्णय होने पर अदृश्य विषय को भी गमकत्व हो सकता है।।98।।

कारणानुपलंभो यथा—न तत्र गृहे पाकसंभवः पावकानुपलब्धेरिति। कार्यस्यानुपलंभस्तु नाऽत्र शरीरे बुद्धिर्व्यापारादिविशेषादेनुपलब्धेरिति। कार्यविकल-स्यापि कारणस्य संभवान्न तद्वैकल्यात्तदभावप्रतिपत्तिरिति चेत्, कथमिदानी [3]क्वचिन्मरणस्यावगमो यतस्तत्र[4] दाहादिकमाचरेत्, [5]प्रकारांतरेण तत्प्रतिपत्तेरभावात्। ततः सत्यविनाभावनिर्णये कार्यवैकल्यादुपपन्नैव कारणस्या भावप्रतिपत्तिः। न तत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेरिति व्यापकानुपलब्धिः। अस्याश्च तं प्रति प्रयोगो यस्य क्वचिद्वृक्षविकलेऽपि तत्सदृशाकारदर्शनेन शिंशपाबुद्धिः।कथं पुनः शिंशपाव्यापकत्वं वृक्षस्य?लताशिंशपाया अपि लताचूतवत्संभावनादिति चेत्, कथमेवं कारणत्वमपि धूमादौ वह्नेः?अवह्निकस्यापि तस्य गोपालकलशादौ दर्शनात्। अन्य एव स धूमादिर्वह्निहेतुकात्तत इति चेत् न, वृक्षव्याप्तायास्ततो लताशिंशपाया अपि [6]संभवेऽन्यत्वाविशेषात्।नास्त्यस्य [7]तत्वज्ञानं

---

[1] पिशाचत्वमिति यावत्।
[2] अन्यः कश्चिदाह।
[3] प्राणिनि।
[4] गृहे।
[5] व्यापारादिविशेषानुपलब्धेः विवक्षयाऽन्येन।
[6] लताशिंशपा नास्त्येव यदिसंभवेऽपि।

सम्यग्दर्शनाभावादिति सहचरानुपलब्धिः।व्यभिचारी हेतुरसम्यग्दृशोऽपि[2] रूपादौ तत्त्वज्ञानस्य भावादिति चेत् न, तेन रूपादेरित्थंभावनिर्णयाभावात्।न ह्य[3]नुपकांततन्निर्णयं तत्त्वज्ञानं नाम बालोन्मत्तादिज्ञानवत्।तत्र व्यभिचारकल्पनमत्र। न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटोदयः कृत्तिकोदयानुपलब्धेरिति पूर्वचरानुपलब्धिः। मुहूर्तात् प्राक् नोदगाद्भरणिः कृत्तिकोदयानुपलब्धेरिति उत्तरचरानुपलब्धिः। एवमन्यान्यपि विविधिप्रतिषेध — लिंगानि प्रतिपत्तव्यानि।।99।।

कारणानुपलंभ का उदाहरण—"न तत्र गृहे पाकसंभवः पावकानुपलब्धेः" कार्यानुपलंभः— "नात्र शरीरे बुद्धिर्व्यापारादि विशेषानुपलब्धेः"।यदि यह कहो कि कार्य से रहित भी कारण होता है अतः कार्य के अभाव में कारण के अभाव की प्रतिपत्ति नहीं होती तो फिर कहीं मृत्यु का ज्ञान कैसे होता है, जिससे मृत व्यक्ति में दाहादि क्रिया की जाय, व्यापारादि विशेष की अनुपलब्धि के अतिरिक्त मृत्यु की प्रतिपत्ति नहीं होने से।अतः अविनाभाव नियम का निर्णय होने पर कार्य के नहीं होने पर कारण के अभाव का ज्ञान होता ही है।व्यापकानुपलब्धि का उदाहरण—"न तत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः" इसके संबंध में यह भी कहा जाता है कि कहीं वृक्ष के बिना शिंशपा के आकार को देखने से शिंशपा की प्रतिपत्ति होती है अतः शिंशपा वृक्ष का व्यापक कैसे है?लता आम्र के समान लता शिंशपा की भी संभावना होने से, यह कहना ठीक नहीं है।इस प्रकार धूएं आदि में अग्नि का कारणत्व कैसे होगा?गोपालकलश आदि में बिना अग्नि के भी धूआं देखे जाने से।अग्नि से होने वाले धूएं से वह धूआं अन्य ही है, यदि यह कहते हो तो वृक्ष से व्याप्त शिंशपा से लताशिंशपा की संभावना होने पर वह भी उससे अन्य है, यह बात यहां भी समान है।

सहचरानुपलब्धिः—"नास्त्यस्य तत्त्वज्ञानं सम्यग्दर्शनाभावात्" यदि यह कहो कि सम्यक्दर्शन के बिना भी रूपादि में तत्त्वज्ञान होने से सम्यग्दर्शन हेतु व्यभिचारी है तो यह कहना ठीक नहीं है, सम्यक्दर्शन के बिना होने वाले रूपादि ज्ञान में इत्थंभाव निर्णय का अभाव होने से।इत्थंभाव के निर्णय के बिना तत्त्वज्ञान नहीं होता, अज्ञानी और उन्मत्त के ज्ञान के समान।अतः यहां व्यभिचार की कल्पना नहीं होती।

पूर्वचरानुपलब्धिः—"न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटोदयः कृत्तिकोदयानुपलब्धेः।एक मुहूर्त के बाद शकट का उदय नहीं होगा, कृत्तिकोदय की उपलब्धि नहीं होने से।उत्तरचरानुपलब्धिः—मुहूर्तात्प्राक् नोदगाद्भरणिः कृत्तिकोदयानुपलब्धेः।एक मुहूर्त पहले भरणि का उदय नहीं हुआ कृत्तिकोदय के उपलब्ध नहीं होने से।इस प्रकार अन्य भी विविध प्रतिषेधलिंग जानने चाहिये।।99।।

यदि [4]तत्प्रभवमनुमानं, प्रमाणमेव तर्हि, कस्यचित्कथं तस्य तदाभासत्वमपीति चेत्, स्वार्थव्यवसायवैकल्यात् प्रत्यक्षवत्।दृश्यते हि प्रत्यक्षस्य तद्वैकल्यं क्वचिदव्युत्पत्त्याऽऽत्मनः[5], क्वचित्संशयात्मनः, क्वचिद्विपर्यासात्मनश्च, तस्य तत्र प्रतीतेः। तदप्यंतरंगावरणोदयाद्बहिरंगादिंद्रियदोषादाशुभ्रमणादेरपि।

---

[1] सम्यग्ज्ञानमिति यावत्।
[2] पुंस इति शेषः।
[3] अकृततन्निर्णय।
[4] लक्षशब्देन लिंगग्रहणं।
[5] अनध्यवसायात्मन।

तद्वदनुमानेऽपि। [illegible] च हेत्वाभासादे[1]स्तद्धेतोर्भावात् ।100।।

यदि लिंग से होने वाला अनुमान प्रमाण ही है तो किसी अनुमान को अनुमानाभासत्व कैसे है?आचार्य कहते हैं स्वार्थ व्यवसाय रहित होने के कारण. प्रत्यक्ष के समान।प्रत्यक्ष को भी कहीं स्वार्थव्यवसाय से रहित देखा जाता है, कहीं अनध्यवसायात्मक को कहीं संशयात्मक को और कहीं विपर्ययात्मक को वहां प्रत्यक्ष की प्रतीति होने से।वह भी अन्तरंग आवरण के उदय से, बहिरंग इन्द्रिय दोष से तथा शीघ्र भ्रमण आदि के कारण, उसी प्रकार अनुमान में भी उक्त अन्तरंग और बहिरंग हेत्वाभास, पक्षाभास आदि उसके हेतु के होने से अनुमानाभास भी होता है।।100।।

तत्र त्रिविधो हेत्वाभासः, सिद्धानैकांतिकविरुद्धविकल्पात्।असिद्धोऽपि त्रिविध एव, स्वरूपाज्ञातसंदिग्धासिद्धविकल्पात्।तत्र स्वरूपासिद्धो यथा—नित्यः शब्दश्चाक्षुषत्वादिति। न हि शब्दस्य चाक्षुषत्वं श्रावणत्वस्यैव तत्र [2]भातः प्रतिपत्तेः। अज्ञातासिद्धस्तु शब्दानित्यत्वे सर्वोऽपि कृतकत्वादिः। न हि तस्य कुतश्चित्परिज्ञानं प्रत्यक्षस्य स्वलक्षणविषयतया [3]सामान्यात्मनि तस्मिन्विकल्पस्य च [4]स्वाकारपर्यवसायित्वेनाप्रवृत्तेः। विकल्पाकार एव सोऽप्रीति चेत्, कथमिदानीं तस्य पक्षधर्मत्वं शब्दे[5] धर्मिण्यभावात्। तत्र [6]तस्यारोपादिति चेत् न, तत्र तस्येति प्रत्यक्षविकल्पयोरन्यतरेणाप्यशक्यपरिज्ञानत्वात्।अन्यतरासिद्ध[7] एवायं कस्मान्न भवति मीमांसकस्य शब्दे तदभिव्यक्तिवादिनः कृतकत्वादेरभावादिति चेत् न, शक्यसमर्थनत्वे तस्य तं प्रत्यपि सिद्धत्वात्, अशक्यसमर्थनत्वे च स्वरूपासिद्ध — एवांतर्भावात् तन्नान्यतरासिद्धो नाम।।101।।

हेत्वाभास तीन प्रकार का है—असिद्ध, विरुद्ध और अनैकान्तिक के भेद से।असिद्ध भी तीन प्रकार का है—स्वरूपासिद्ध, अज्ञातासिद्ध और विरुद्धासिद्ध के भेद से।वहां स्वरूपासिद्ध का उदाहरण है—नित्यः शब्दश्चाक्षुषत्वात्।शब्द चाक्षुष नहीं है स्वरूप से उसके श्रावणत्व की प्रतिपत्ति होने के कारण।अज्ञातासिद्ध शब्द को अनित्य सिद्ध करने में कृतकत्वादि सभी हेतु हैं।उसका किसी भी प्रमाण से ज्ञान नहीं होता।प्रत्यक्ष (निर्विकल्प)?का स्वलक्षण विषय होने के कारण अनुगताकार शब्द में और विकल्प को स्वसंवित्तिमात्र में सीमित होने के कारण उसमें प्रवृत्ति नहीं होने से।यदि यह कहो कि कृतकत्व भी विकल्पाकार है तो फिर उसको पक्षधर्मत्व कैसे होगा?स्वलक्षण शब्द रूप धर्मी में उसका अभाव होने से।यदि यह कहो कि शब्द में विकल्पाकार कृतकत्व आदि का आरोप होने से

---

[1] आदिशब्देनपक्षाभासादिकं ग्राह्यं।
[2] स्वरूपतः।
[3] अनुगताकारे।
[4] स्वसंविन्मात्रपर्यवसितत्वेन।
[5] स्वलक्षणे।
[6] विकल्पाकारकृतकत्वादेः।
[7] वादिप्रतिवादिनोर्मध्य एकस्यासिद्धः।

पक्षधर्मत्व हो जायगा तो यह कहना भी ठीक नहीं है शब्द में विकल्पाकार कृतकत्व आदि को निर्विकल्प प्रत्यक्ष या विकल्प में से किसी के द्वारा न जाना जा सकने के कारण।शब्दाभिव्यक्ति वादी मीमांसक के यहां कृतकत्व आदि का अभाव होने से कृतकत्व हेतु अन्यतरासिद्ध है. यह कहना भी ठीक नहीं है, शक्य समर्थन होने पर उनके लिये भी सिद्ध ही है, अशक्य समर्थन होने पर स्वरूपासिद्ध में ही अन्तर्भाव हो जाने से अन्यतरासिद्ध नामक कोई असिद्ध हेत्वाभास नहीं है।।101।।

संदिग्धासिद्धः पुनर्धूमोऽयं वाष्पादिर्वा इति संशयालंबनो भूतसंघातः[1]। न ह्यसौ पावकप्रतिपत्तौ [2]धूमतयोपदिष्टो गमको भवति निश्चितस्यैव तत्त्वोपपत्तेः, संदिग्धस्य चानिश्चिततत्वात्।।102।।

संदिग्धासिद्ध--मशकादि समूह को देखकर यह धूआं है या भाप आदि।इस प्रकार का संदेह होने पर "वह्निरत्र धूमात्" यहाँ आग है धुआँ होने से, इस प्रकार धूएं से आग के अनुमान के समान मशकादिसमूह गमक नहीं हो सकते।निश्चय हेतु को ही गमक होने से और संदिग्ध के अनिश्चित होने से।।102।।

[3]प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धस्तर्हि वक्तव्यः, तद्यथा—अनित्यः शब्दः शब्दत्वादिति। शब्दस्य हि साध्यधर्मधर्मिसमुदायरूपप्रतिज्ञार्थैकदेशतया साध्य – धर्मवदसिद्धत्वान्न हेतुत्वमिति चेत्,तर्हि धर्मित्वमपि न भवेदिति कथं शब्दानित्यत्वे कृतकत्वादेरपि हेतुत्वमाश्रयासिद्धेः। समुदायरूपतयैव[4] शब्दस्य साध्यत्वं न पृथगपि प्रसिद्धत्वात् ततो धर्मित्वमिति चेत्, [5]हेतुत्वमपि स्यादविशेषात्। धर्मित्वं प्रत्युपक्षीणस्य तस्य कथं हेतुत्वमिति चेत् न, धर्मभेदान्नहि येनैव[6] तस्य धर्मित्वं साध्यधर्मं प्रत्यधिकरणभावेन तेनैव तस्य हेतुत्वमपित्वाविनाभावनियमेन। कथं पुनर्विपक्षव्यावृत्तिर्यदनित्यत्वे तस्य तन्नियम इति चेत्, [7]कृतकत्वादेरिव सत्वविशेषादेव। न चैव[8] सत्वादेव[9] साध्यसिद्धेर्विफलत्वं शब्दत्वस्य[10] कृतकत्वादेरपि तत्प्रसंगात्।कथं वा शब्दस्य प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वं, शब्द[11]शब्दनिर्दिष्टस्य तद्विशेषस्यैव तत्वान्न शब्दसामान्यस्य।तत्कथं तस्या[12]सिद्धत्वं?शब्दशब्देनाऽपि

---

[1] मशकादिसमूह।

[2] भूतसंघातं दृष्ट्वा धूमोऽयं वाष्पादि वेति संदेहे समुत्पन्ने वह्निरत्र धूमादिति।

[3] बौद्धस्य मतं, प्रतिज्ञा एव धर्मधर्मिसमुदाय एवार्थ प्रतिज्ञार्थस्तस्यैकदेश सन् हेतुर सिद्ध इत्यर्थ।

[4] परवादी।

[5] जैन

[6] स्वरूपेण।

[7] कृतकत्वादेर्यथा सत्वविशेषत्वाद्विपक्षव्यावृत्तिः।

[8] सतीति शेष।

[9] साध्यनादेव।

[10] साध्यस्य।

[11] शब्द इति शब्द शब्दशब्द।

[12] शब्दत्वस्य।

सामान्यस्यैव निर्देशादिति चेत्, विफलमिदानीं सत्त्वाद्यनुमानमपि[1] वस्तुन्यवस्थां प्रत्यनंगत्वात्।वस्तुनि हि शब्दविशेषे ततो नित्यत्वव्यवस्थितौ तस्य तदंगत्वं नावस्तुनि सामान्ये। नायं दोषः सामान्यानित्यत्वेन विशेषानित्यत्वस्य लक्षणादिति[2] चेत्, लिंगादेव कुतो न तल्लक्षणं[3]?विशेषाणामानंत्येन तत्र लिंगप्रतिबंधस्य[4] दुरवगमादिति चेत् न, सामान्यप्रतिबंधस्यापि [5]तदविशेषात्। तन्न सामान्यस्य धर्मित्वं विशेषस्यैव तत्त्वात्। कथं तस्य प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वेनासिद्धत्वे सामान्यस्यापि तत्त्वं?[6]विशेषादन्यस्य सामान्यस्यैवाभावादिति चेन्न किंचिदिदानीं लिंग नाम सत्त्वादेरपि तथा विधस्याभावात्।[7]भाव एव सत्सदित्यनुगमप्रत्ययस्य तद्विषयस्य भावादिति चेत् न, शब्दः शब्द इति तत्प्रत्ययस्याविशेषात्। तन्न शब्दानित्यत्वे [8]शब्दत्वस्यासिद्धत्वं। नाऽपि रूपाद्यनित्यत्वे रूपादित्वस्य शब्दत्वेन [10]समानयोगक्षेमत्वात्। नाऽप्यनित्यः शब्दोऽनित्यत्वादित्यस्य प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वेना सिद्धत्वं शब्देऽपि तदापत्त्या तस्य धर्मित्वाऽभावप्रसंगात्, समुदायापेक्षया[11]ऽपि तस्यापि तदवयवत्वाविशेषात्। कुतस्तर्हि [12]तस्यासिद्धत्वमिति चेत्, [13]तर्हि स्वरूपत एवानिर्णयाद्भवतु। स्वरूपासिद्धत्वादेवायमहेतुरिति चेत् न, शब्दावच्छिन्न[14]स्यानित्यत्वस्य साध्यत्वात्। न च तस्य हेतुत्वं अनित्यमात्रस्य तत्त्वात्, तत्र[15] च मीमांसकस्याप्यविवादात्, अन्यथा घटादावपि तदभावापत्तेः[16]। कथं पुनः शब्दानित्यत्वाभावे तन्मात्रस्यानुपपत्तिर्यतस्तदनित्यत्वे तस्य हेतुत्वमिति चेत् न, [17]शब्दवत्तदभावेऽपि घटादे[18]र्वस्तुत्वाव्याघातात्,

---

[1] यत्सत् तत्क्षणिकं यथा जलधरः सँश्च शब्द इत्याद्यनुमानं।

[2] शब्दत्वलक्षणे।

[3] अनित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यनुमानात् शब्दसामान्यस्यानित्यत्वेन साधितेन तद्विशेषाणामनित्यत्वस्य लक्षितलक्षणतया लक्षणात्परिज्ञानात्कुतः शब्दसामान्यस्य शब्दविशेषैः सहाविनाभावात्।

[4] विशेषनित्यत्वपरिज्ञानं।

[5] अविनाभावस्य।

[6] सामान्येन सह सत्त्वस्याविनाभावे दुरवगमत्वाविशेषात् कुतस्तस्याप्यानंत्यात्।

[7] परवादी।

[8] परो वक्ति तथाविधसत्त्वादिरेव।

[9] साधनस्य।

[10] आक्षेपसमाधानात्।

[11] अन्यथेति शेषः।

[12] साध्यरूपस्य साधनस्य।

[13] तटस्थो ब्रूते।

[14] विशिष्टस्य।

[15] शब्दस्यैव नाभ्युपगम्यते नित्यत्वं नान्यत्र।

[16] अनित्यत्वस्य मात्रविवादाविशेषात्।

[17] शब्देनिरवशेषमेव वस्तुत्वमिच्छता घटादावप्यनित्यत्वं मतेरेण वस्तुत्वमिष्यतां तथाचानित्यमात्रमवलोकेन सिद्धयति, अन्यथाऽनुपपत्ति प्रतिपादिता भवतीत्यत्रावगंतव्यम्।

[18] शब्दवदिति, यथा शब्दस्यानित्यत्वाभावेऽपि वस्तुत्वमुपपन्नं तथा घटादेरपि, अनित्यत्वाभावेऽपि वस्तुत्वमव्याहतमिति वस्तु किमप्यनित्यं न स्यात्, नचैवं ततः कारणाद्वस्तुत्वस्य घटादावनित्यत्वेन

तद्वस्तुत्ववच्छब्देऽप्यनित्यत्वसामान्यस्यापि तद्विशेषेऽन्यथाऽनुपपत्तिमत्त्वादुपपन्नमेव हेतुत्वम् ।।103।।

तब प्रतिज्ञार्थैक देशासिद्ध मानना चाहिये जैसे–अनित्यः शब्दः शब्दत्वात् ।शब्द को साध्य धर्म धर्मि के समुदाय रूप प्रतिज्ञार्थ के एक देश में रहने के कारण साध्य धर्म (अनित्यत्व) वाला सिद्ध नहीं होने से हेतुत्व नहीं है, यदि ऐसा कहते हो तो फिर धर्मित्व भी नहीं होना चाहिये, फिर शब्द को अनित्य सिद्ध करने मे कृतकत्व आदि भी कैसे हेतु होंगे शब्द रूप धर्मी (आश्रय) के ही असिद्ध होने से ।परवादी कहते हैं–धर्म धर्मी के समुदाय रूप से ही शब्द को साध्यत्व है, पृथक नहीं, प्रसिद्ध होने से, अतः धर्मित्व है यदि ऐसा कहते हो तो शब्दत्व को हेतुत्व भी हो जायगा, दोनों में समानता होने से ।धर्मी के प्रति शक्तिहीन होने पर उसको हेतुत्व कैसे होगा?यह कहना ठीक नहीं है, धर्मभेद होने से ।साध्य धर्म का अधिकरण होने से जिस स्वरूप से उसको धर्मित्व है, उसी स्वरूप से हेतुत्व भी नहीं है, अपितु अविनाभावनियम से हेतुत्व है ।फिर विपक्ष व्यावृत्ति कैसे है?जिससे शब्द के अनित्यत्व में शब्दत्व के अविनाभाव का नियम हो यदि यह कहते हो तो सत्त्वविशेष से कृतकत्व आदि के समान ही विपक्ष व्यावृत्ति है ।सत्त्व हेतु से ही साध्य (अनित्यत्व) की सिद्धि हो जाने से शब्दत्व हेतु विफल है, यह भी नहीं कह सकते कृतकत्व आदि में भी विफलत्व का प्रसंग आने से ।शब्द को प्रतिज्ञार्थैकदेशत्व कैसे है?शब्द शब्द से निर्दिष्ट शब्द विशेष को ही हेतु होने से शब्द सामान्य को नहीं अतः शब्दत्व हेतु को असिद्धत्व कैसे है?शब्द शब्द से भी सामान्य का ही निर्देश होने से यदि यह कहते हो "सर्वक्षणिकं सत्त्वात्" यत्सत् तत्क्षणिकं संश्च शब्दः यह अनुमान भी विफल हो जायगा ।वस्तु (शब्द)को अवस्था (अनित्यत्व) सिद्ध करने में असमर्थ होने से ।वस्तु शब्द विशेष में सत्त्वादि हेतु से अनित्यत्व की व्यवस्था करने में उसको उसका कारणत्व है, अवस्तु सामान्य में नहीं, यह दोष नहीं है–"अनित्यः शब्दः कृतकत्वात्" इस अनुमान से शब्द सामान्य के अनित्य सिद्ध करने से शब्द विशेष के भी अनित्यत्व का परिज्ञान होने से, शब्द सामान्य का शब्द विशेष के साथ अविनाभाव होने से ।यदि ऐसा कहते हो तो लिंग से ही विशेष के भी अनित्यत्व का ज्ञान क्यों नहीं हो जायेगा?विशेषों के अनन्त होने से उसमें लिंग के अविनाभाव का ज्ञान कठिन होने से यदि यह कहते हो तो सामान्य के भी अनन्त होने से उसमें भी लिंग के अविनाभाव का ज्ञान कठिन होने से वहां भी समानता है ।अतः सामान्य को धर्मित्व नहीं है, विशेष को ही धर्मित्व होने से ।विशेष के प्रतिज्ञार्थैकदेशत्व से असिद्ध होने पर सामान्य को भी प्रतिज्ञार्थैकदेशत्व कैसे है?विशेष से भिन्न सामान्य का ही अभाव होने से, यदि ऐसा कहते हो तो फिर लिंग नाम की कोई वस्तु नहीं रहेगी, सत्त्वादि लिंग का भी अभाव होने से ।सत्त्वादि लिंग है उस विषयक सत् सत् इस अनुगम प्रत्यय के होने से, यह कहना भी ठीक नहीं है, शब्द शब्द इस प्रकार के अनुगम प्रत्यय के यहां भी समान रूप से होने से ।अतः शब्द को अनित्य सिद्ध करने में शब्दत्व हेतु असिद्ध नहीं है ।रूपादि के अनित्य सिद्ध करने में रूपादित्व हेतु भी असिद्ध नहीं है, शब्दत्व के द्वारा आक्षेप का समाधान हो जाने से ।"अनित्यः शब्दोऽनित्यत्वात्" इस हेतु को प्रतिज्ञार्थैकदेशत्व के कारण असिद्ध नहीं कहा जा सकता, शब्दत्व में भी यह आपत्ति होने से उसके धर्मित्व के अभाव का प्रसंग होने से ।समुदाय की अपेक्षा भी उसके भी उस समुदाय का अवयव विशेष होने के कारण धर्मित्व के अभाव का प्रसंग आयेगा ।फिर यह असिद्ध कैसे है यदि यह कहते हो तो स्वरूप से निर्णय नहीं होने

व्याप्तत्वात्, वस्तुत्ववदिति वस्तुत्वसामान्यस्य विशेषनित्यत्वव्यवस्थापकतदनित्यत्वसामान्यस्य तद्विशेषे नित्यविशेषेऽन्यथानुपपत्तिमत्त्वादुपपन्नमेव हेतुत्वम् ।

के कारण यह असिद्ध हो सकता है।स्वरूप से असिद्ध होने के कारण यह हेतु नहीं है, यह नहीं कह सकते। शब्दविशिष्ट के अनित्यत्व को साध्य होने के कारण अनित्यमात्र को अनित्य होने के कारण अनित्यत्व को हेतुत्व नहीं है, इसमें मीमांसक को भी कोई विवाद नहीं है, अन्यथा घटादि में भी अनित्यत्व के अभाव का प्रसंग आयेगा।शब्द के अनित्यत्व के अभाव में अनित्यत्व मात्र का अभाव कैसे होगा, जिससे शब्द के अनित्यत्व में अनित्यत्व को हेतु माना जाय, यह कहना भी ठीक नहीं है।शब्द के समान अनित्यत्व के अभाव में भी घटादि के वस्तुत्व में कोई बाधा नहीं होने से।अतः वस्तुत्व के समान शब्द में भी अनित्यत्व सामान्य को भी हेतुत्व सिद्ध होता है अन्यथा विशेष में भी अनित्यत्व नहीं हो सकता।।103।।

एवमपि न त्रित्वमेवासिद्धस्याश्रयासिद्धस्यापि भावात्। तद्यथा—द्रव्यमाकाशं गुणाश्रयत्वादित्याकाशासत्ववादिनं बौद्धं प्रत्यस्याश्रयत्वासिद्धत्वोपपत्तेरिति चेत् न आश्रयवत्स्वरूपस्यासत्वे स्वरूपासिद्ध एवांतर्भावात्, सत्वे चान्यथानुपपत्तौ गमकत्वस्यान्यथा च व्यभिचारित्वस्यैवोपपत्तेर्भागासिद्धस्य तर्हि भावान्न त्रित्वमसिद्धस्य। तद्यथा—चेतनास्तरवः स्वापादिति।न हि तरुषु सर्वत्र स्वापः पत्रसंकोचलक्षणस्य तस्य द्विदलेष्वेव भावादिति चेत्, भवत्वेवं न तथाऽपि दोषः, स्वाश्रयेषु तेन पशुमनुष्यादिनिदर्शनबलेनचेतनत्वं व्यवस्थापयता [1]तर्वन्तरेष्वपि तदव्याप्तहेतुस्थापनद्वारेण तस्य व्यवस्थापनात्। परेऽपि[2] तरवश्चेतनास्तत्वात् स्वापवत्[3] प्रसिद्धतरुवदिति।तत् नाऽस्य भागासिद्धत्वं दोषाय गमकत्वाप्रतिक्षेत्। एवमेव शब्दानित्यत्वे प्रयत्नानंतरीयकस्याऽपि भागासिद्धस्यं निर्दोषत्वकल्प — नोपपत्तेः। अस्ति हि तस्यापि भागासिद्धत्वं समुद्रघोषजलधरध्वानादावभावात्। विपर्यस्तासिद्धस्त्वज्ञातासिद्ध एव, न हि धूमस्तद्विपर्यासेन प्रतीयमानः स्वरूपतः परिज्ञातो नाम, तत्र ततस्तस्य पृथगसिद्धत्वम्[4]।।104।।

ऐसा होने पर भी असिद्ध तीन प्रकार का ही नहीं है, आश्रयासिद्ध के भी होने से।जैसे "द्रव्यमाकाशं गुणाश्रयत्वात्" बौद्ध आकाश को नहीं मानते, अतः उसके यहां यह हेतु आश्रयासिद्ध होता है, यह कहना ठीक नहीं है।आश्रय के समान स्वरूप के भी नहीं होने पर इसका स्वरूपासिद्ध में ही अन्तर्भाव हो जाने से, स्वरूप के होने पर गमकत्व की अन्यथानुपपत्ति होने से, अन्यथा व्यभिचारित्व के ही होने से।तब भागासिद्ध के होने से असिद्ध तीन प्रकार का नहीं है।जैसे— "चेतनास्तरवः स्वापात्" सभी वृक्षों में स्वाप नहीं होता पत्रसंकोच लक्षण स्वाप के द्विदल वृक्षों में ही होने से, ऐसा होने पर भी कोई दोष नहीं है, उसके द्वारा पशु मनुष्यादि के निदर्शन के द्वारा चेतनत्व की स्थापना के द्वारा अपने आश्रय एकदल वाले वृक्षों में भी अव्याप्त हेतु के द्वारा चेतनत्व की व्यवस्था करने से।दूसरे (एकदल वाले) वृक्ष भी चेतन हैं चेतनत्व के कारण स्वापवाले प्रसिद्ध वृक्ष के समान।अतः इस हेतु का

---

[1] एकदलेषु।
[2] एकदलाः।
[3] अत्र मत्वर्थे प्रत्ययः।
[4] भूतसंघातेन।

भागासिद्धत्व गमकत्व के प्रति दोष का कारण नहीं है।इसी प्रकार शब्द के अनित्यत्व में कृतकत्व हेतु को भागासिद्ध होने पर भी निर्दोषत्व की कल्पना होती है। कृतत्व हेतु भागासिद्ध है, समुद्र की गर्जना और बादलों की गड़गड़ाहट में कृतकत्व नहीं होने से। विपर्यस्ता सिद्ध तो अज्ञातासिद्ध ही है।अग्नि के बिना प्रतीत होता हुआ धूआं स्वरूप से ज्ञात नहीं है, अतः स्वरूपासिद्ध से पृथक् असिद्ध नहीं कहा जा सकता।।104।।

अनैकांतिकश्च पुनर्द्विधा–निश्चितसंभाव्यव्यभिचारविकल्पात्।निश्चितश्च व्यभिचारस्य[1] क्वचित्पक्षैकदेशे, यथा–पक्वान्येतानि फलान्येकशाखाप्रभवत्वादुप – भुक्तफल[2]वदिति। अस्ति ह्यत्र[3] तत्रैव तन्निश्चयः पक्षीकृतेष्वेव बहुलमामेषु[4]पि प्रकृतस्य हेतोर्भावात्।[5]क्वचिदन्यत्र, यथा सः श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवदिति। अत्र ह्यन्य[6]त्रैव तन्निश्चयस्तत्रैवाश्यामेऽपि तत्पुत्रस्यावलोकनात्।।105।।

अनैकान्तिक भी दो प्रकार का है–निश्चित व्यभिचार और संभाव्य व्यभिचार के विकल्प से।किसी अनुमान में पक्ष के एक देश में निश्चित व्यभिचार।यथा–पक्वान्येतानि फलान्येकशाखा प्रभवत्वादुपभुक्तफलवत्।इस अनुमान में पक्ष के एक देश में व्यभिचार का निश्चय है।पक्षीकृत एक शाखा में ही प्रायः कच्चे आमों में भी एक शाखा प्रभवत्व हेतु होने से।कहीं दूसरे अनुमान में यथा "सः श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" यहां अन्यत्र ही व्यभिचार का निश्चय है अश्याम में भी तत्पुत्रत्व हेतु के होने से।।105।।

संभाव्यव्यभिचारो यथा–विवादापन्नः पुरुषः किंचिज्ज्ञो रागादिमान्या वक्तृत्वादे रथ्यापुरुषवदिति।संभावनाऽत्र व्यभिचारस्य, सर्वज्ञादपि[7] विरोधा–भावेन वक्तृत्वादेः संभवाविरोधात्[8]।विरोधे वा ज्ञानप्रकर्षतारतम्ये वक्तृत्वस्या–पकर्षतारतम्यमुपलभ्येत।न चैवं सति तस्मिन् तत्राऽप्यतिशयतारतम्यस्यैव प्रतिपत्तेस्ततोऽतिशयपर्यंतगतज्ञानस्यापि[9] संभवत्येव वक्तृत्वं। न संभवति[10] तस्य वीतरागत्वेन रागविशेषात्मनो विवक्षाया अभावात्तन्निबंधनत्वाच्च वक्तृत्वस्येति चेत् न, तदभावेऽपि गोत्रस्खलनादौ तस्य प्रतिपत्तेः।न हि तत्र यद्विषयं वचनं तद्विवक्षा विद्यते।विवक्षान्तरस्य सतोऽपि हि न तद्धेतुत्वमतिप्रसंगात्[11]।विवक्षापूर्वकत्वे च वक्तृत्वस्यानभ्यस्तस्यापि शास्त्रार्थस्य कश्चिद्वक्ता भवेत् तद्विवक्षायास्तत्राऽपि संभवान्नचैवं व्याख्यातृसेवावैफल्यप्रसंगात्।अभ्याससाहाय्ये भवत्येवेति चेन्न,

---

[1] अनुमाने।
[2] अनुभूतफलवत्।
[3] अनुमाने।
[4] अपक्षेष्वपि।
[5] अनुमाने।
[6] विपक्षे।
[7] वीतरागे।
[8] असंभवादिति भावः।
[9] नुः।
[10] वक्तृत्वमिति शेषः।
[11] घटादिकारणस्य मृदादेः पटादिकारणत्वप्रसंगात्।

सत्यभ्यासपाटवे निर्विवक्षस्यैव[1] स्वापादौ तदर्थप्रतिपादित्वस्य प्रतिपत्तेः।तत्र विवक्षावैकल्येन वीतरागस्य वक्तृत्वासंभवकल्पनमनुपपन्नम् ॥106॥

संभाव्यव्यभिचार–यथा "विषादापन्नः पुरुषः किंचिज्ञो रागादिमान्वा वक्तृत्वादेरन्यापुरुषवत्" यहां व्यभिचार की संभावना है, सर्वज्ञादि में भी विरोध नहीं होने से वक्तृत्वादि की संभावना का विरोध नहीं होने से।विरोध होने पर ज्ञान के प्रकर्ष का तारतम्य होने पर वक्तृत्व के अपकर्ष का तारतम्य प्राप्त होना चाहिये।किंतु ऐसा नहीं है।ज्ञान के प्रकर्ष का तारतम्य होने पर वक्तृत्व के प्रकर्ष के तारतम्य की ही प्रतिपत्ति होने से।अतः अतिशय पर्यन्त प्राप्त ज्ञान वाले के भी वक्तृत्व होता ही है।अतिशय ज्ञान वाले के वक्तृत्व नहीं होता उसके वीतराग होने से रागविशेषात्मक विवक्षा का अभाव होने से और वक्तृत्व के विवक्षापूर्वक होने से, ऐसा कहना ठीक नहीं है, विवक्षा के अभाव में भी गोस्खलनादि में वक्तृत्व की प्रतिपत्ति होने से।वहां जिस विषय पर बोला जाता है, उसकी विवक्षा नहीं होती, विवक्षानंतर के होने पर भी वह वक्तृत्व का कारण नहीं होता, अतिप्रसंग होने से (घटादि के कारण मिट्टी आदि को घटादि के कारण का प्रसंग होने से)।विवक्षापूर्वक वक्तृत्व होने पर शास्त्र का अभ्यास नहीं होने पर भी कोई वक्ता हो जायगा, विवक्षा की वहां भी संभावना होने से, किंतु ऐसा नहीं होता व्याख्याता की सेवा के विफल होने का प्रसंग होने से।अभ्यास की सहायता से वक्ता हो ही जाता है, ऐसा कहना ठीक नहीं है, अभ्यास की निपुणता होने पर बिना विवक्षा के ही स्वापादि में शास्त्रों के अर्थ का प्रतिपादन करने की प्रतिपत्ति होने से।अतः विवक्षा के बिना वीतराग के वक्तृत्व के असंभव होने की कल्पना ठीक नहीं है।।106।।

[2]उपपन्नमेव वैयर्थ्यात्, न हि वीतरागस्य तेन [3]कश्चिदर्थ इति चेत् न, स्वार्थस्याभावेऽपि परार्थस्य भावात्।तादृशस्य कथं परार्थेऽपि प्रवृत्तिरिति चेत्, भानोः पद्मविकासने कथं[4]?तथास्वभावेनेति चेत्, समानमि[5]दमन्यत्राऽपि।ततो युक्तं सर्वज्ञादेरपि वक्तृत्वं।एवं पुरुषत्वादिकमपि, तस्यापि क्वचित्[6] सकलज्ञत्वादिना[7] जैमिन्यादौ वेदार्थज्ञत्वेनेव विरोधाभावात्।[8]सर्वज्ञादेरविद्यमानत्वान्न वक्तृत्वादिक – मित्यपि [9]न युक्तमन्य[10]तस्तदविद्यमानत्वस्य प्रतिपत्तावस्य वैफल्यादनेनाऽपि तदभावस्यैव किंचिज्ज्ञत्वाद्युपनय[11]नेनोपस्थापनादत[12] एव तत्प्रतिपत्तावन्योन्याश्रय

---

[1] पुंसः।
[2] वक्तृत्वासंभवकल्पनं।
[3] प्रयोजनं।
[4] प्रवृत्तिरिति शेषः।
[5] तथा स्वभावेनेतीदं।
[6] पुंसि।
[7] साकमिति शेषः।
[8] परवादी वक्ति।
[9] जैनो वदति।
[10] "अन्यत" "अतः" इति विकल्पद्वयं प्रमाणांतरात् वक्तृत्वादिकात्।
[11] आनयनेन।
[12] द्वितीयविकल्पः।

–णमतस्त[1]दभावप्रतिपत्तौ तत्र वक्तृत्वादेरसंभावन[2]मसंभावि[3]–तव्यभिचाराच्चातत्स्वभावस्य प्रतिपत्तिरिति। ततः स्थितं संभाव्यव्यभिचारत्वा–द्वक्तृत्वादेरनैकांतिकत्वमिति ।।107।।

परवादी कहते हैं–वीतराग के वक्तृत्व की असंभावना होती ही है वक्तृत्व के व्यर्थ होने से।वीतराग का वक्तृत्व से कोई प्रयोजन तो है नहीं, यह कहना ठीक नहीं है, स्वार्थ का अभाव होने पर भी परार्थ के होने से।वीतराग की परार्थ में भी कैसे प्रवृत्ति होगी?यदि वह कहते हो तब बताओ कि कमल को विकसित करने में सूर्य की कैसे प्रवृत्ति होती है?यदि सूर्य का वैसा स्वभाव होने से कहते हो तो वीतराग को पर के लिए वक्ता होने में भी स्वभाव ही समान रूप से कारण है।अतः सर्वज्ञ आदि के भी वक्तृत्व युक्त ही है।इसी प्रकार पुरुषत्व आदि हेतु भी समीचीन है।जैमिनी आदि के यहां जैसे किसी को वेद के अर्थ का ज्ञाता माना गया है, उसी प्रकार सर्वज्ञ मानने में भी कोई विरोध नहीं है।सर्वज्ञादि के अविद्यमान होने के कारण उसमें वक्तृत्वादि भी नहीं है, यह कहना भी ठीक नहीं है।अन्य अनुमान से उसकी अविद्यमानता की प्रतिपत्ति होने पर यह अनुमान व्यर्थ हो जाता है, इसके द्वारा भी किंचिज्ज्ञत्वादि से सर्वज्ञाभाव की प्रतिपत्ति होने पर अन्योन्याश्रय दोष आता है।सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि हो तो वक्तृत्वाभाव की सिद्धि हो और असंभावित व्यभिचार वाले वक्तृत्व हेतु से सर्वज्ञाभाव की प्रतिपत्ति हो।अतः संभाव्य व्यभिचार के कारण वक्तृत्वादि हेतु अनैकान्तिक ही है, यह सिद्ध हुआ।।107।।

ननु एवं[4] शब्दानित्यत्वे प्रमेयत्वमप्यनैकांति[5]कमेव भवेत् तस्य नित्ये गगनादावपि भावेन व्यभिचारादिति चेत् न, तस्य कूटस्थस्य प्रमिता[6]वनुपयोगादुपयोगे वा कुतो न सर्वदा तस्य प्रमेयत्व[7]? सहकारिसन्निधिसमय एव तद्भावादिति चेत् न तदापि [8]प्राच्यरूपापरित्यागेन तदनुपपत्तेः, तत्परित्यागे तु परिणामि नित्यमेव। तन्न कूटस्थं, न च तत्र भावाद्धेतोर्व्यभिचारः, [9]सपक्षभावित्वेन साध्यप्रतिपत्तिं प्रत्यानुकूल्यात्। साध्यसपक्षत्वमपि तस्य शब्देऽपि सान्वयस्यैवा[10]नित्यत्वस्य साधनान्न निरन्वयस्य, तद्धति प्रमितेरसंभवात्।न हि सा ततः समसमयान्निष्पन्नत्वेन तस्यास्तन्निरासत्वात्[11]। नाऽप्यतीताच्चिरतरातीतादिव कार्यकालमप्राप्तात्ततोऽपि तदनुपपत्तेः।न चातत्प्रभवया तया तस्य प्रमेयत्वं "नाकारणं विषय" इत्यस्य

---

[1] सर्वज्ञाभावसिद्धौ वक्तृत्वाभावसिद्धिस्तत्सिद्धौ सर्वज्ञाभावसिद्ध ।
[2] घटत इति शेष ।
[3] अज्ञातव्यभिचारात् ।
[4] अनैकांतिकं पुनर्हेत्वाद्युक्तप्रकारेण ।
[5] निश्चितव्यभिचारत्वमिति भावः ।
[6] स्वप्रमितावित्यर्थ ।
[7] प्रमाणविषयत्वमेव प्रमेयत्व ।
[8] अप्रमेय ।
[9] गगनादौ हेतौ ।
[10] कथंचिदभिन्नस्यैव ।
[11] निरपेक्षत्वात् ।

व्यापत्तेः।कथं पुनः सान्वयविनाशेऽप्यनित्यत्वे साध्ये न व्यभिचारः प्रमेयत्वस्य भाववदभावेऽप्यवस्तुनि भावात् तत्र च वस्तुधर्मस्यानित्यत्वस्यानुपपत्तेरिति चेत् न, तस्य कुतश्चिदप्रतिपत्तेः व्यतिरेके च भावेभ्यस्तस्य कुतो न तेषां सांकर्यम्[1] ।तत्संबंधादिति चेत् न, तेनाऽपि स्वतः संकीर्णानां[2]मनन्यथात्वस्याकरणात्, करणे वा तदेव तेषामन्योन्यमभावस्तस्य च तेभ्योऽनर्थान्तरत्वेन तद्धेतोरेव भावादिति।तस्य वैयर्थ्यमर्थांतरस्य तस्य प्रागभावादिभेदिनः कथंचिद्भावाविष्वग्भावेन तद्वदेवानित्यत्वोपपत्तेः। न तद्गतत्वेनाऽपि प्रमेयत्वस्यानैकांतिकत्वं, व्यभिचारस्य निश्चितस्येव संभाव्यस्यापि तत्राभावात्।।108।।

शंकाकार कहते हैं--इस प्रकार अनैकान्तिक के दो भेद होने पर शब्द को अनित्य सिद्ध करने में प्रमेयत्व हेतु भी अनैकान्तिक हो जायगा, उसके नित्य आकाश आदि में भी होने से व्यभिचार होने से, यह कहना ठीक नहीं है।प्रमेयत्व हेतु को कूटस्थ नित्य की प्रमिति में ही अनुपयोगी होने से, उपयोगी होने पर उसको सदा ही प्रमेयत्व कैसे नहीं है?सहकारी के निकट होने के समय ही उसको प्रमेयत्व होने से, यह कहना ठीक नहीं है, सहकारी के निकट होने पर भी पहले रूप (अप्रमेयत्व) का त्याग किये बिना प्रमेयत्व की उत्पत्ति नहीं होने से और प्राच्यरूप का त्याग करने पर तो वह परिणामी नित्य ही सिद्ध होता है।अतः आकाश कूटस्थ नित्य नहीं है और न अप्रमेयत्व होने से हेतु को व्यभिचार है सपक्ष में होने के कारण साध्य की प्रतिपत्ति के प्रतिअनुकूल होने से।आकाश को साध्य का सपक्षत्व भी है शब्द में भी कथंचित् अभिन्न ही अनित्यत्व की सिद्धि करने से निरन्वय (सर्वथा भिन्न की नहीं) उसमें प्रमिति के असंभव होने से।शब्द के साथ निष्पन्न होने से तो प्रमिति होती नहीं, उसको उससे निरपेक्ष होने से।अतीत से भी नहीं होती, चिरतर अतीत के समान कार्यकाल में नहीं होने से अतीत से भी उसकी उत्पत्ति नहीं होने से।बिना उत्पन्न हुए प्रमिति से शब्द को प्रमेयत्व नहीं हो सकता "नाकारणं विषय" इसका व्याघात होने से।शब्द का सान्वय विनाश होने पर भी प्रमेयत्व हेतु को अनित्य साध्य में व्यभिचार कैसे नहीं है प्रमेयत्व हेतु को भाव के समान अभाव रूप अवस्तु में भी होने से।अभाव रूप धर्मी में वस्तु के धर्म अनित्यत्व की उपपत्ति नहीं होने से।ऐसा नहीं कह सकते, उसकी किसी से भी प्रतिपत्ति नहीं होने से।भावों से उसके भिन्न होने पर उनका सांकर्य (घट का पट और पट का घट होना) कैसे नहीं होगा?भाव से संबंध होने से भी नहीं कह सकते, उसके द्वारा भी स्वरूप से संश्लिष्ट पदार्थों का अनन्यथात्व नहीं करने से।करने पर वही उनका अन्योन्याभाव हो जायगा उसके उनसे अभिन्न होने के कारण उसके हेतु ही होने से।प्रागभावादि भेद वाले उससे भिन्न हेतु तो व्यर्थ ही है, कथंचित् रूप से असमग्र रूप से उसी के समान अनित्यत्व की उपपत्ति होने से।अतः आकाश में होने के कारण भी प्रमेयत्व हेतु को अनैकान्तिकत्व नहीं है, निश्चित के समान संभाव्य व्यभिचार का भी अभाव होने से।।108।

संशयकरत्वादप्यनैकांतिकं[3] वक्तव्यं।तद्यथा—श्रावणत्वं न हि तस्य शब्दे नित्यत्वेतरत्वयोरन्यत्र हेतुत्वमनवगतबहिरन्वयस्य तदनुपपत्तेः[4]। न च तेन[5] विना

---

[1] घटः पटो न भवति पटो घटो न भवतीति व्यावर्तकस्याभावस्य भावात्;

[2] स्वरूपेण संश्लिष्टानां पदार्थानां।

[3] अनित्यः शब्दः श्रावणत्वात्।

तस्य संभवः सर्वस्याऽपि वस्तुसत्तस्तेन व्याप्तेः।ततः शब्दे तदुपलभ्यमानं तत्र संशयमावहति, किं श्रावणत्वान्नित्यः शब्द आहोस्विदनित्य इति। [4]तस्माद – नैकांतिकमिति चेत् न, सत्ववत्तस्यापि तद्विशेषस्य शब्दानित्यत्वे हेतुत्वस्यैवोपपत्तेः बहिरन्वयानवगमे कथं तदिति चेत्, [5]सर्वानित्यत्वे सत्वस्यापि [6]कथं?न हि तस्यापि बहिस्तदवगमः सर्वस्य पक्षीकृतत्वेन तदबहिर्भूतस्याभावात्। नित्यस्य [7]सहक्रमाभ्यामर्थक्रियावैकल्येन व्योमारविंदवत् सत्वानुपपत्तेः। ततो निश्चितव्यावृत्तिकस्य तस्य पक्ष एव तद्व्याप्तेरवगमादिति चेत्, सिद्धस्तर्हि श्रावणत्वस्यापि तत्रैव तदवगमो विपक्षात्तस्य व्यावृत्तौ तद्विशेषस्यापि तस्य ततोऽवश्यं तया व्यावृत्तेर्निर्णयात्। निर्विशेषा[8]दपि सत्वात्तदनित्यत्वस्याऽपि सिद्धेः किं तद्विशेषेण श्रावणत्वेनेति चेत् [9]नैवमुत्पत्तिमत्त्वादावपि प्रसंगात्।ततः सामान्यवत्तद्विशेषस्याऽपि साध्याविनाभावनिर्णये [10]कदाचित्कु[11]तश्चित्साध्यप्रतिपत्तेरूपपन्नं तद्विशेषस्याऽपि श्रावणत्वस्य तत्र गमकत्वमतो न तस्यानैकांतिकत्वकल्पनमुपपन्नम्।।109।।

संशय करने वाला होने से भी अनैकान्तिक कहना चाहिये जैसे शब्दोऽनित्यःश्रावणत्वात्।श्रावणत्व का शब्द में उसके नित्यत्व या अनित्यत्व के बिना हेतुत्व नहीं हो सकता।नित्यत्व या अनित्यत्व के बिना उसका अविनाभाव नहीं होने से। नित्यत्व या अनित्यत्व के बिना शब्द नहीं हो सकता, सभी सत् वस्तु की नित्यत्व, अनित्यत्व से व्याप्ति होने के कारण।अतः शब्द में उपलभ्यमान श्रावणत्व हेतु संशय उत्पन्न करता है कि श्रावणत्व के कारण शब्द नित्य है कि अनित्य?अतः श्रावणत्व हेतु अनैकान्तिक है, यह कहना ठीक नहीं है।जैसे "सर्वं क्षणिकं सत्वात् में सत्व हेतु अनित्यत्व को सिद्ध करता है उसी प्रकार सत्वविशेष श्रावणत्व हेतु भी शब्द को अनित्य सिद्ध करने में हेतु ही है, नित्यत्व, अनित्यत्व से बाहर अन्वय का ज्ञान नहीं होने पर वह कैसे हेतु है?यदि यह कहते हो तो सबको अनित्य सिद्ध करने में सत्व को भी कैसे हेतुत्व है?सत्व हेतु का भी बाहर अन्वय ज्ञान नहीं होता, सबको पक्षीकृत करने से उसके बाहर किसी का सदभाव नहीं होने से।नित्य वस्तु में युगपत् या कम से अर्थक्रिया नहीं होने से आकाश कुसुम के समान सत्व की उपपत्ति नहीं होने से।अतः निश्चित व्यावृत्ति वाले सत्व हेतु की पक्ष में (अनित्यत्व को सिद्ध करने में) ही व्याप्ति का ज्ञान होने से, यदि यह कहते हो तो श्रावणत्व का भी पक्ष (अनित्यत्व) में ही व्याप्ति ज्ञान सिद्ध हो जाता है विपक्ष से सत्व की व्यावृत्ति होने पर सत्व

---

[1] अनित्यत्व।

[2] श्रावणत्वस्य बहिरन्वयाभावेन शब्दनित्यत्वेतरत्वयोरन्यतरत्वसाधकत्वाभावेऽपि शब्दः संभविष्यतीत्याकांक्षां प्रतिक्षिपन्नाह।

[3] नित्यत्वेनानित्यत्वेन।

[4] संशयमावहति यस्मात्।

[5] सर्वमनित्यं सत्वात्।

[6] हेतुत्वमिति शेषः।

[7] यौगपद्य।

[8] श्रावणादिविशेषरहितात्।

[9] अनित्यः शब्द उत्पत्तिमत्त्वादित्याद्यावपि।

[10] प्रयोगकाले।

[11] श्रावणत्वादिविशेषात्।

विशेष श्रावणत्व की भी विपक्ष (नित्यत्व) से व्यावृत्ति का उसी व्यावृत्ति से अवश्य निर्णय होने से।श्रावणत्वादि विशेष रहित सत्व से भी शब्द के अनित्यत्व की भी सिद्धि हो जाने पर सत्व विशेष श्रावणत्व की क्या आवश्यकता है?यह कहना ठीक नहीं है।उत्पत्तिमत्त्वादि में भी यही प्रसंग आने से।अतः सत्व सामान्य के समान सत्व विशेष श्रावणत्व का भी साध्य के साथ अविनाभाव निश्चित होने पर प्रयोगकाल में श्रावणत्वादि विशेष से साध्य की प्रतिपत्ति होने से सत्व विशेष श्रावणत्व को भी अनित्यत्व की सिद्धि में गमकत्व है।अतः श्रावणत्व हेतु को अनैकान्तिकत्व की कल्पना ठीक नहीं है।।109।।

[1]साध्यार्थाभावनिश्चितो विरुद्धो हेत्वाभासः।स चानेकधा, धर्मतद्विशेषाभ्यां धर्मितद्विशेषाभ्यां च विपरीतस्यैव साधनात्। तत्र धर्मविपरीतसाधनो यथानीलतज्ज्ञानयोरभेदः सहोपलंभनियमात् द्विचंद्रवदिति।तत्साधनत्वं चाऽस्य यौगपद्यार्थे सहशब्दे तन्नियमस्याभेदविरुद्धे नानात्व एव भावात्। अभेदेऽपि चंद्रद्वितये भाव इति चेत् न, तत्राऽपि [2]यथाप्र[3]तिभासं भेद एव भावात्। यथातत्त्वमभेदेपीति चेत् न, तदानीमभेदस्यानवभासनात्।न चानवभासिनि तस्मिंस्तन्नियमस्य तदनुगमः शक्यो गंतुमवभासिन्येव साध्ये तदनुगमस्य हेत्वंतरेषु प्रतिपपत्तेः।[4]सन्नपि तत्र[5] तन्नियमो विरुद्ध एव [6]धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वात्।धर्मविशेषो हि नीलतज्ज्ञानयोः सिसाधयिषतां तात्त्विकमेकत्वं न च तस्यायं साधनः किं तात्त्विकस्यैव तस्यैव चंद्रद्वये स्वयं मिथ्याज्ञानविषयत्वेनातात्त्विके भावात्।।110।।

साध्य के अभाव के साथ निश्चित अविनाभाव वाला हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है।वह अनेक प्रकार का है--धर्म तथा धर्म विशेष और धर्मी तथा धर्मी विशेष से विपरीत को ही सिद्ध करने से।धर्म विपरीत साधन--जैसे नील और नील के ज्ञान में अभेद है सहोपलंभ नियम से द्विचन्द्र के समान।सहोपलंभ नियम साधन धर्म विपरीत साधन है, युगपत् अर्थ में सह शब्द में सहोपलंभ नियम के अभेद के विरुद्ध नानात्व में ही होने से।चन्द्रद्वय में अभेद में भी सहोपलंभ नियम है, यह कहना भी ठीक नहीं है, प्रतिभास के अनुसार भेद ही होने से।यथाप्रतिभासत्व अभेद में भी है, यह कहना ठीक नहीं है, उस समय अभेद का अवभास नहीं होने से।अभेद का अवभास नहीं होने पर सहोपलंभ नियम अभेद का अविनाभावी नहीं जाना जा सकता, साध्य का अवभास होने पर ही दूसरे हेतु में उसके अविनाभाव की प्रतिपत्ति होने से।अभेद में सहोपलंभ नियम होने पर भी धर्म विशेष से विपरीत का साधन होने से यह हेतु विरुद्ध ही है।क्योंकि धर्मभेद है, उसका विशेष तात्त्विकत्व है, उससे विपरीत अतात्त्विकत्व है, उसका साधन होने से वह धर्म विशेष विपरीत साधन है।धर्मविशेष नील और नील के ज्ञान में तात्त्विक एकत्व को सिद्ध करना है किंतु उसका यह साधन नहीं है, तात्त्विक उसी साधन को चन्द्रद्वितय में स्वयं मिथ्या ज्ञान में होने के कारण अतात्त्विक में होने से।।110।।

---

[1] "साध्यार्थाविनाभावनियमनिश्चितो विरुद्धो हेत्वाभास" इत्यपि क्वचित्पाठः।

[2] क्रियाविशेषणमदः।

[3] सहोपलंभनियमकार्ये।

[4] धर्मविशेषविपरीतदर्शनं दर्शयति।

[5] अभेदे।

[6] धर्मी भेदस्तस्य विशेषस्तात्त्विकत्वं तस्माद्विपरीतमतात्त्विकत्वं तस्य साधनं तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्।

ननु एवं पाकान्वितस्यैवानित्यत्वस्य घटे दर्शनात्तस्यैव शब्देऽपि कृत – कत्वात्साधनं तदिति चेत् न, तत्रान्य[1]त्र च तदन्वितस्यापि तस्य प्रतिपत्तेः।न चैवं चंद्रद्वयादन्यत्र तात्विकस्योभयाभेदस्य प्रतिपत्तिर्यदवष्टंभेन[2] नीलतद्वेदनयोरपि तन्नियमतस्यैव हेतुर्भवेत्ततो युक्तं धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वेनास्य विरुद्धत्वम्।।111।।

शंकाकार कहते हैं कि इस तरह पाक क्रिया से अन्वित अनित्यत्व को ही घड़े में देखा जाने से उसी अनित्य को शब्द में भी कृतकत्व हेतु से सिद्ध किया जाता है, अतः वह धर्मविशेष विपरीत साधन है, यह कहना ठीक नहीं है, घड़े में तथा पट आदि में अन्यत्र भी कृतकत्व हेतु से अन्वित अनित्यत्व की प्रतिपत्ति होने से इस प्रकार चन्द्रद्वय के अतिरिक्त अन्यत्र तात्विक दोनों के अभेद की प्रतिपत्ति नहीं होती, जिसके आधार पर नील और नील ज्ञान में सहोपलंभ नियम अभेद का हेतु हो। अतः धर्म विशेष विपरीत साधन होने के कारण सहोपलंभ नियम हेतु को विरुद्धत्व ठीक ही है।।111।।

धर्मिविपरीतसाधनस्य[3] किमुदाहरणम्? इह [illegible] द्रव्यं भाव एकद्रव्यवत्त्वाद्द्रव्यत्ववदिति।द्रव्यत्वं हि यथा न द्रव्यं तथा न भावोऽपि।तत्र यदि तद्वेदकद्रव्यवत्त्वाद्भावोऽपि न द्रव्यं स भावोऽपि न भवेदिति[4], तन्न, कृत – कत्वस्याप्येवं [5]तत्साधनत्वापत्तेः।शक्यं हि वक्तुं घटस्यानित्यत्वमिवाशब्दत्वमपि। तत्र[6] यदि तद्वत्कृतकत्वादनित्यत्वं शब्दस्याशब्दत्वमपि भवेदिति।[6]यदि शब्दस्या प्रतिपत्तिराश्रयासिद्धिर्लिंगस्य, प्रतिपत्तावपि न तत्राशब्दत्वसाधनम् तत्पक्षस्य तत्प्रतिपत्त्यैव प्रतिक्षेपात्। तत्कथं कृतकत्वस्य धर्मिविपरीत.साधनत्वमिति चेत् न, भावेऽप्येवमभावरूपत्वसाधनस्यानुपप[7]त्तेरेकद्रव्यवत्त्वस्यापि तत्साधनत्वाभाव प्रसंगात्। किं[8] तर्हि तत्रोदाहरणमिति चेत्, क्षणभंगे सर्वोऽपि सत्वादिः[9], ततो हि धर्मिणः शब्दादेस्तत्क्षण[10] एव भंगे तदभावसिद्धेरवश्यंभावादन्यदा भंगस्य च तत्क्षणभंगत्वानुपपत्तेः।तत्क्षणभंगोऽपि तस्य क्षणांतरादेव व्यावृत्तिर्न स्वरूपात् तन्नायं प्रसंग इति चेत् न, ततोऽपि तस्यानर्थांतरत्वे प्रसंगस्यानिवृत्तेः[11] तथा क्षणांतरादपि व्यावृत्तिः स्वरूपादपि तत्प्रसंगात्कथंचिदर्थांतरत्वस्य च स्याद्वाद

---

[1] पटादौ।
[2] सहायेन। पर्याय।
[3] धर्मिविपरीतस्योदाहरणमुक्तम्।
[4] धर्मिविपरीतसाधनत्वापत्तेः।
[5] कृतकत्वानुमाने।
[6] परो वक्ति।
[7] सर्वस्मिन्पदार्थेऽपि सत्वादिहेतुनाविनाशस्यभावत्वसाधनस्यानुपपत्तेः कुतः प्रतिपत्त्यप्रतिपत्तिपक्षस्याविशेषत्।
[8] परवादी वक्ति तत्र विपरीतसाधने किमुदाहरणमिति।
[9] तत्पत्तिमत्त्वादिः।
[10] उत्पत्तिसमये।
[11] त्वद्भावसिद्धयोरेवावश्यंभावलक्षणप्रसंगस्य।

विद्वेषिणामसंभवात्। संभवेऽपि विरुद्धः एव[1] तत्र[2] सत्वादि[3]र्धर्मिविशेष विपरीतसाधनत्वात्। धर्मिविशेषे हि परस्य[4] निष्फलः[5] शब्दस्तद्विपरीतश्च स एव प्रवृत्तिरूपतया तु[6] द्विरूपस्तं च साधयतः स्पष्टमेव [7]सत्वादेस्तद्विपरीतसाधनत्वं। एवं पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावादिति।अस्यापि न[8] हि पुरूषस्य भोग उपचारादप्रतिपन्ने तत्र तदनुपपत्तेरन्यतश्च तत्प्रतिपत्तावस्य वैफल्यात्।अत एव तत्प्रतिपत्तौ प्रतिपन्ने तत्र भोगोपचारस्ततश्च तस्य प्रतिपत्तिरिति परस्पराश्रयात्तात्विकोऽपि च तस्मान्न व्यतिरेकी, तेन तस्य गगनादेरिव भोक्तृत्वानुपपत्तेः, भाग्यसन्निधिसव्यपेक्षतया कादाचित्कत्वे तस्य तद्रूपतया पुरूषस्य कथंचिदनित्यत्वात्, सिद्धं तस्य साधयिषितकूटस्थपुरूषरूपधर्मिविशेषापेक्षया विपरीतत्वमित्युपपन्नं भोक्तृत्वस्य तत्साधनतया तद्विपरीतत्वसाधनमतो विरुद्धत्वम्।।112।।

धर्मीविपरीत साधन का क्या उदाहरण है? "न द्रव्यं भाव एकद्रव्यत्वाद्द्रव्यत्ववत्" द्रव्यत्व जैसे द्रव्य नहीं है, उसी प्रकार भाव भी नहीं है यहां यदि एकद्रव्यत्व के कारण भाव भी द्रव्य नहीं है, यह भाव भी नहीं होगा किंतु ऐसा नहीं है, कृतकत्व को भी इस प्रकार धर्मी विपरीत साधनत्व का प्रसंग आने से।तब यह कहा जा सकता हैकि घड़े को अनित्यत्व के समान अशब्दत्व भी है।कृतकत्व अनुमान में यदि कृतकत्व के कारण अनित्यत्व है तो शब्द को अशब्दत्व भी हो जायेगा।पर पक्ष कहते हैं कि यदि शब्द की प्रतिपत्ति नहीं होने से हेतु आश्रयासिद्ध है तो प्रतिपत्ति होने पर भी अशब्दत्व की सिद्धि नहीं होगी। अशब्दत्व के पक्ष की उसकी प्रतिपत्ति होने से ही निराकरण हो जाने से।अतः कृतकत्व को धर्मी विपरीत साधनत्व कैसे है?ऐसा नहीं कह सकते।इस प्रकार भाव में भी अभाव रूपत्व की सिद्धि नहीं होने से एकद्रव्यवत्त्व को भी धर्मी विपरीत साधनत्व के अभाव का प्रसंग आने से।परवादी कहते हैं फिर धर्मी विपरीत साधन का क्या उदाहरण है?यदि यह कहते हो तो क्षणभंग मानने पर सभी सत्वादि हेतु धर्मी विपरीत साधन के उदाहरण हैं।धर्मी शब्दादि के उत्पत्ति के समय ही विनाश हो जाने पर उसके अभाव की सिद्धि अवश्यंभावी है, अन्यथा भंग का तत्क्षणभंगत्व नहीं सिद्ध होगा।यदि यह कहो कि क्षणभंग का तात्पर्य क्षणांतर से ही व्यावृत्ति है, स्वरूप से नहीं, अतः इसमें अभाव का प्रसंग नहीं आता तो स्वरूप के भी उस क्षणांतर से अभिन्न होने के कारण उससे भी व्यावृत्ति होने पर अभाव का प्रसंग अवश्य आयेगा।अतः अभाव का प्रसंग आने पर क्षणांतर से भी व्यावृत्ति होगी और स्वरूप से भी क्षणांतर से स्वरूप का कथंचित अर्थान्तरत्व स्याद्वाद विरोधियों के यहां असंभव ही है।संभव होने पर भी क्षणभंग साध्य में सत्वादि हेतु विरुद्ध ही हैं धर्मी विशेष विपरीत साधन होने से।धर्मी विशेष बौद्धों का निरंश शब्द है, सत्वादि साधन उसके विपरीत हैं।स्वपररूपादि की अपेक्षा वह शब्द द्विरूप है, उसको सिद्ध करने वाले सत्वादि साधन को

---

[1] धर्मिविशेषविपरीतसाधनं दर्शयति।
[2] क्षणभंगसाध्ये।
[3] साधनं।
[4] सौगतस्य।
[5] निरंशः।
[6] स्वपररूपाद्यपेक्षया।
[7] साधनस्य।
[8] उपचारात्परमार्थतो वा। व्यतिरेकिणात्तात्विकेन।

स्पष्ट रूप से धर्मी विशेष विपरीत साधनत्व है।इसी प्रकार "पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्" यहां भी पुरुष के ज्ञात नहीं होने पर उपचार से उसके भोग की सिद्धि नहीं हो सकती, अन्यप्रमाण से पुरुष की प्रतिपत्ति होने पर यह अनुमान विफल हो जायगा।इसी अनुमान से उसकी प्रतिपत्ति होने पर पुरुष के ज्ञात होने पर भोगोपचार और भोगोपचार से उसकी प्रतिपत्ति होने पर परस्पराश्रय होने से तात्विक होने पर भी धर्मी विशेष विपरीत साधन से भिन्न नहीं है।इस अनुमान से पुरुष के आकाश आदि के समान भोक्तृत्व की उपपत्ति नहीं होने से भोग्य वस्तु के निकट होने की अपेक्षा कभी–कभी पुरुष के भोक्ता के रूप में होने पर पुरुष के कथंचित् अनित्य होने से भोक्तृभाव साधन कूटस्थ नित्य पुरुष रूप धर्मी विशेष की अपेक्षा विपरीत सिद्ध होता है अतः भोक्तृत्व साधन को धर्मी विशेष विपरीत साधन होने से विरुद्धत्व सिद्ध होता है।।112।।

एवं विरुद्धाव्यभिचारिणोऽपि। तत्[1] खल्विदमनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदिति। तदव्यभिचारित्वमस्य तत्रैव नित्यत्वसाधनस्य प्रत्यभिज्ञायमानत्वा – देर्भावात्। विरुद्धत्वं निरन्वयविनाशविपरीतस्य सान्वयविनाशस्यैव साधनात्।तदपि कथं नित्यत्वहेतुना प्रतिबंधादिति चेत् न, तद्विषयस्यापि नित्यत्वस्य सविनाशान्वयतद्विनाशादविशेषात्, कूटस्थे[2] तस्मिन्निरन्वयविनाशवदर्थक्रियाशक्ति वैकल्येन तदव्याप्तस्य कस्यचिदपि हेतोरसंभवात्।कथमिदानीं अविशिष्टे[3] विषये तस्य तद्विरुद्धत्वमिति चेत् न, तत्र कथंचिद्विरोधस्यापि भावात्तत्र तदव्यभि– चारिणोऽनैकांतिकत्वं विरुद्धत्वस्यैव भावात्। कथं वा तस्य तत्वं तद्बलादनित्यस्तद्विरुद्ध[4] बलान्नित्यो वा शब्द इति संशयादिति चेत्, [5]केवलस्यापि स्यात्ततोऽपि तत्र तत्संभवात्, कृतकत्वस्य निरन्वयविनाशवत्। कौटस्थ्येऽपि काल्पनिकस्य भावात्, तात्विकस्यानेकांतनांतरीयकतयोभयत्राप्यसंभवात्। ततोऽनेकांतन्यायवेदिनां विरुद्ध एव विरुद्धाव्यभिचारी, तदन्येषां तु तद्वत्केवला अपि कृतकत्वादयः संशयहेतव एवानेकांतरूपप्रक्रियापरिच्युतानां तेषां साध्यवदि तरत्रापि संभवात्। तदुक्तम्–"विरुद्धाव्यभिचारी स्यात् विरुद्धो विदुषां मतः। प्रक्रियाव्यतिरेकेण सर्वे संमोहहेतवः।" इत्यन्येपि हेत्वाभासाः प्रतिपत्तव्याः।।113।।

इसी प्रकार विरुद्धाव्यभिचारी भी है।उसका उदाहरण है–अनित्यः शब्दः कृतकत्वात्घटवत्।कृतकत्व हेतु विरुद्धाव्यभिचारी है शब्द में ही नित्यत्व सिद्ध करने की प्रतिज्ञा आदि होने के कारण।निरन्वय विनाश के विपरीत सान्वय विनाश को हेतु होने से विरुद्धत्व है।वह भी कैसे है नित्यत्व हेतु से विरुद्ध होने के कारण यह नहीं कह सकते

---

[1] उदाहरणं।

[2] सर्वथा नित्ये।

[3] विरुद्धत्वं नास्यनैकांतिकत्व कुतस्तद्विपरीते वर्तमानत्वात्, प्रकृतसाध्यद्वयस्याविशेषप्रतिपादनकाले युष्मन्मतेऽपि कथ तयोरन्योन्यविरुद्धत्वमित्याशंक्ते परः, सान्वयविनाशसविनाशनित्यत्वाभ्यामिति शेषः।

[4] संदिग्धानैकांतिकत्वादिति भाव।

[5] केनचिद्बाधादिना प्रत्यभिज्ञायमानत्वादित्येतस्य प्रतिपक्षसाधनस्याप्रयुक्तत्वे सति केवलस्येत्यर्थः, विपक्षसाधकरहितस्यापि।

नित्यत्व विषय को भी सान्वय विनाश और निरन्वय विनाश के समान होने से।कूटस्थ (सर्वथा नित्य) शब्द में निरन्वय विनाश के समान अर्थ क्रिया की शक्ति नहीं होने से।उससे व्याप्त किसी भी हेतु के असंभव होने से।फिर अविशिष्ट विषय में उसका विरुद्धत्व कैसे है यह कहना ठीक नहीं है।यहां कथंचित् विरोध के भी होने से, [illegible] नहीं है, अपितु विरुद्धत्व ही है।उसको विरुद्धाव्यभिचारित्व कैसे है? उसके द्वारा शब्द अनित्य है अथवा उसके विरुद्ध हेतु के द्वारा नित्य है, यह संशय होने के कारण, यह कहना ठीक नहीं है, विपक्ष साधक रहित हेतु को भी यह संशय हो जायगा, उससे भी शब्द के नित्यत्व अनित्यत्व के संशय की संभावना होने से।कृतकत्व हेतु के निरन्वय विनाश के समान कूटस्थ नित्य में भी काल्पनिक के होने से, वास्तविक तो अनेकांत के विपरीत होने से दोनों ही जगह संभव नहीं होने से।अतः अनेकांत न्याय वेत्ताओं के यहां तो विरुद्धाव्यभिचारी भी विरुद्ध ही है, अन्य एकान्त वादियों के यहां तो विपक्ष साधक रहित होने पर भी कृतकत्व आदि हेतु संशय के ही कारण है, अनेकांत रूप प्रक्रिया से रहित उनके यहां साध्य के समान साध्य के विपक्ष में भी संभावना होने से।कहा भी है— विरुद्धाव्यभिचारी कथंचित् विरुद्ध भी है, ऐसा विद्वानों का मत है, अनेकांत प्रक्रिया के बिना सभी अज्ञानता के हेतु हैं।इस प्रकार अन्य भी हेत्वाभास को जानना चाहिये।।113।।

किं पुनः साध्यं यदविनाभावो हेतुलक्षणमित्युच्यते। "साध्यं[1] शक्यं[2] मभिप्रेतमप्र[3]सिद्धमिति"। न हि प्रसिद्धस्य साध्यत्वं पुनः पुनस्तत्प्रसंगेनानवस्थापत्तेः। नाप्यनभिप्रेतस्य साध्यं प्रत्यभिमुखचित्त[4]स्येव लिंगतस्तत्प्रतिपत्तेः। नाप्यशक्यस्य तत्र हेतोरशक्तेः।।114।।

साध्य क्या है?जिसको अविनाभाव हेतु का लक्षण कहा है—साध्य शक्य (प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अबाधित) इष्ट और अप्रसिद्ध होता है।प्रसिद्ध साध्य नहीं हो सकता, पुनः पुनः उसको सिद्ध करने के प्रसंग से अनवस्था दोष होने से।अनिष्ट भी साध्य नहीं हो सकता, साध्य के प्रति अभिमुख चित्तवाले के समान ही लिंग से साध्य की प्रतिपत्ति होने से।अशक्य भी साध्य नहीं हो सकता, वहां हेतु के अशक्त होने से।।114।।

ततोऽपरं साध्याभासं[5] तच्च प्रत्यक्षादिविरुद्धविकल्पनादनेकधा।तत्र प्रत्यक्षविरुद्धं यथा—प्रतिक्षणविशरारवो भावा इति, प्रत्यक्षतस्तत्र कथंचिदविशरणस्यापि प्रतिपत्तेः।लोकोपाध्यारूढत्वान्मिथ्यैव तत्प्रतिपत्तिरिति चेत् नान्यथाप्रतिपत्तेरनध्यवसायाद्विचारतस्तदध्यवसायस्य चान्यत्र[6] विरोधात्।।115।।

---

[1] अबाधितं।

[2] इष्टं।

[3] प्रतिवाद्यपेक्षयाऽप्रसिद्धं।

[4] पुंसः।

[5] धर्मविपरीतसाधनोदाहरणनिरूपणावसरे।

इनसे विपरीत साध्याभास है।साध्याभास प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध के भेद से अनेक प्रकार का है।प्रत्यक्ष विरुद्ध जैसे पदार्थ प्रतिक्षण नष्ट होने वाले हैं, ऐसा कहना।क्योंकि प्रत्यक्ष से कथंचित् अक्षणिक की भी प्रतिपत्ति होती है।लोक में रूढ होने से वह प्रतीति मिथ्या ही है, यह कहना ठीक नहीं है, अन्यथा प्रतिपत्ति को अनिश्चयात्मक होने से, विचारपूर्वक उसके निश्चयात्मकता का धर्मविपरीत साधन के उदाहरण का निरूपण करते समय विरोध किया जाने से।।115।।

अनुमानविरुद्धं यथा–न संति बहिरर्था इति साधनदूषणप्रयोगादिना तत्सद्भावस्यावस्थापनात्।।116।।

अनुमान विरुद्ध–न संति बहिरर्थाः यह कथन अनुमान विरुद्ध है, क्योंकि साधन दूषण प्रयोग आदि से बहिरर्थ के सद्भाव की व्यवस्था की गयी है।।116।।

आगमविरुद्धं यथा–नास्ति सर्वज्ञ इति मीमांसकस्य।तत्र "हिरण्यगर्भ प्रकृत्य सर्वज्ञ" इत्यादौ तत्सद्भावस्य श्रवणात्। न तस्य तत्सद्भावावेदने तात्पर्यमर्थवादत्वेन[1] हिरण्यगर्भस्य सर्वज्ञतया स्तुतिविधावेव[2] तद्भावात्। अन्यथाऽऽदिमदर्थत्वेन[3] तस्यानित्यत्वापत्तेरिति चेत्, कथं तत्रासता तेन स्तुतिः? अध्यारोपितेन तेनेति चेत् न, आरोपणस्य मिथ्याज्ञानत्वेन वेदादसंभवादन्यथा–विधिपरोऽपि तस्मिन् अनाश्वासापत्तेः।[5]ततस्तदावेदन एव तात्पर्यं तस्य। नचानित्यत्वे तस्य दोषो नित्यत्व एव तस्य वक्ष्यमाणत्वात्।।117।।

आगम विरुद्ध–"नास्ति सर्वज्ञः" मीमांसक का यह कथन है।"हिरण्यगर्भ प्रकृत्य सर्वज्ञ" इत्यादि में सर्वज्ञ के सद्भाव को ही सुना जाने से।उसके सद्भाव को सिद्ध करने का कोई तात्पर्य नहीं है, गुणानुवाद के रूप में हिरण्यगर्भ की सर्वज्ञ के रूप में स्तुति करने से ही सर्वज्ञ का सद्भाव होने से।अन्यथा आदिमान का अर्थ सर्वज्ञ होने के कारण उसको अनित्यत्व की आपत्ति होने से।उस असत् के द्वारा सर्वज्ञ (हिरण्यगर्भ) की स्तुति कैसे की गयी?"अध्यारोपित के द्वारा" यह कहना भी ठीक नहीं है।आरोप को मिथ्याज्ञान होने के कारण वेद से असंभव होने से।संभव होने पर भी उसमें अविश्वास की आपत्ति आने से।अतः सर्वज्ञ का सद्भाव सिद्ध करना ही उसका तात्पर्य है।सर्वज्ञ के अभाव के अनित्यत्व में कोई आपत्ति नहीं है, नित्य में दोष आगे कहा जाने से।।117।।

स्ववचनविरुद्धं यथा–न वाचो वस्तुविषया इत्यस्य[6] वस्तुविषयत्वस्य प्रतिज्ञानस्य[7] विरोधात्, अवस्तुविषयत्वे चानर्थकवचनतया निग्रहस्थानत्वापत्तेः।।118।।

---

[1] गुणवादत्वेन, "विरुद्धे गुणवादः स्यादनुवादावधारिते" इति वचनात्।
[2] स्तुतिरूपत्वेन।कर्मस्तुतिः, यजेत इत्यज्ञातज्ञापनरूपेऽज्ञातज्ञापको विधिरिति वचनात्।
[3] आदिमान् सर्वज्ञाद्यर्थो यस्य स तथा। [5] कल्पितेन।
[4] आरोपणसंभवप्रकारेण।
[5] कारणात्।
[6] वचनस्येति शेषः।

स्ववचनविरुद्ध–"न वाचो वस्तुविषया" इस कथन के ही उक्त वचन का विरोधी होने से।अवस्तुविषयक होने पर वचन के व्यर्थ होने के कारण निग्रहस्थानत्व (दंडविज्ञान) की अप्राप्ति होने से।।118।।

लोकविरुद्धं यथा–मिथ्यैव सर्वे प्रत्यया इति लोकस्य बहुलं जाग्रत्प्रत्ययेष्वमिथ्यात्वे एव विषयभावलक्षणेऽभिनिवेशात्। वासनादार्ढ्यादे[2]वायं न वास्तवादमिथ्यात्वादिति चेत् न, तद्दार्ढ्यस्याप्येवं तत्प्रतीतिसम्यक्त्वा – भिनिवेशोपनीतत्वेनावस्तुत्वापत्तौ व्योमकुसुमादिवत्ततस्तेषु तत्कल्पनानुपपत्तेस्ततो विषयभावादेव तत्प्रतीतिवदन्यत्राऽपि तदभिनिवेश इति कथं न सर्वप्रत्ययमिथ्यात्वं लोकविरुद्धं।।119।।

लोकविरुद्ध जैसे–"मिथ्यैव सर्वे प्रत्ययाः" लोक की अधिकतर जाग्रत प्रत्ययों में विषयभाव लक्षण सम्यक्त्व में ही अनुरक्ति होने से उक्त कथन लोकविरुद्ध है।यदि यह कहो कि वासना की दृढ़ता से ही वह प्रतीति सम्यक्त्व है, वास्तविक अमिथ्यात्व होने से नहीं तो उस वासना की दृढ़ता को भी इस प्रकार उसकी प्रतीति सम्यक्त्व में रूचि होने के कारण होने से आकाश कुसुम के समान अवस्तुत्व की आपत्ति आयेगी।अतः जाग्रत प्रत्ययों में मिथ्या की कल्पना नहीं होने से ही उसकी प्रतीति के समान सम्यक्त्व में भी उसके होने से ही रूचि होती है।अतः सर्वप्रत्यय मिथ्यात्व लोक विरुद्ध कैसे नहीं है।।119।।

हेतुसाध्ययोरिव दृष्टांतस्याप्याभासो निरूपयितव्यः, अन्यथातद्विलक्षणतया तस्य [3]निरूपणानुपपत्तेरिति चेत् न, दृष्टांतस्यैव तदभावेऽप्यनुमानस्य बहुलमुपलंभेन तं प्रत्यनंगत्वात्, तमभ्युपगम्य तु ब्रूमः।साध्यसाधनधर्मयोः संबंधो यत्र निर्ज्ञातः स दृष्टांतः।स च द्वेधा, साधर्म्येण वैधर्म्येण च।तत्र शब्दस्य कृतकत्वादेरनित्यत्वे साधर्म्येण घटः वैधर्म्येणाकाशं तत्र[4] [5]तयोरन्वयमुखेन व्यतिरेकद्वारेण च संबंधपरिज्ञानात्।।120।।

हेतु और साध्य के समान दृष्टान्त का आभास भी बताना चाहिये अन्यथा दृष्टान्ताभास से विलक्षण रूप से दृष्टान्त का निरूपण नहीं हो सकता, यह कहना ठीक नहीं है।दृष्टान्त के अभाव में भी अधिकांश अनुमान के होने से दृष्टान्त को अनुमान के प्रति व्यर्थ होने से अनुमान के प्रति कारण मानकर कहते हैं–साध्य और साधन के धर्म का संबंध जहां ज्ञात हो वह दृष्टान्त है। वह दो प्रकार का है–साधर्म्य से और वैधर्म्य से।साधर्म्य से–यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् घटवत् यहां घट साधर्म्य से दृष्टान्त है।वैधर्म्य से–यथा आकाश।घड़े और आकाश में साध्य और साधन का संबंध अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा जाना जाने से।।120।।

---

[1] प्रकृत इति शेषः।
[2] तत्प्रतीतिसम्यक्त्वाभिनिवेशः।
[3] प्रयोगः।
[4] घटाकाशयोः।
[5] साध्यसाधनयोः।

तदाभासाः पुनः साध्यविकलादयः—तत्र नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वादित्यत्र कर्मवदिति साध्यविकलं निदर्शनमनित्यत्वात् कर्मणः, परमाणुवदिति[1] साधनविकलं मूर्त्तत्वात्परमाणोः, घटवदित्युभयविकलं अनित्यत्वान्मूर्त्तत्वाच्च घटस्य।रागादिमान् सुगतो वक्तृत्वादित्यत्र रथ्यापुरुषवदिति संदिग्धसाध्यं रथ्यापुरुषे साध्यस्य प्रत्यक्षेणानिश्चयात्, वचनस्य च तत्र दृष्टस्य तदभावेऽपीच्छया संभवात्।अत एव मरणधर्माऽयं रागादित्यत्र असर्वज्ञोऽयं रागादित्यत्र च संदिग्धोभयं च रागादिवदसर्वज्ञत्वस्यापि तत्र निश्चेयतुमशक्यत्वात्।रागादिमान्[2] वक्तृत्वादित्यत्र अनन्वयं[3], [4]तत्र रागादेरसिद्धौ तदन्वयस्यासिद्धेः।अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदित्यत्राप्रदर्शितान्वयं यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यमित्यन्वयप्रदर्शनस्यात्राभावात्, यदनित्यं तत्कृतकमिति विपरीतान्वयम्।एवं नव साधर्म्येण दृष्टांताभासाः।।121।।

दृष्टान्ताभास साध्यविकल आदि हैं—"नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात् कर्मवत्" यह साध्यविकल का उदाहरण है कर्म के अनित्य होने के कारण।परमाणुवत् यह साधन विकल है, परमाणु के मूर्त होने के कारण।घटवत् यह उभयविकल है, घड़े के मूर्त और अनित्य होने के कारण।"रागादिमान सुगतो वक्तृत्वात् रथ्यापुरूषवत्" यह संदिग्ध साध्य है, रथ्यापुरूषमें रागादिमान साध्य का प्रत्यक्ष से निश्चय नहीं होने से, दृष्ट वचन के रागादि के बिना भी इच्छा से संभव होने से।इसी से "मरणधर्माऽयं रागात्" तथा "असर्वज्ञोऽयं रागात् रथ्यापुरूषवत्" यहां संदिग्ध साधन तथा संदिग्धोभय भी है, रागादि के समान असर्वज्ञत्व का भी वहां निश्चय करने में अशक्य होने से।"रागादिमान् सुगतः वक्तृत्वात् रथ्यापुरूषवत्" यहां अनन्वय (साध्य साधन से संबंध नहीं) है।रागादि की असिद्धि होने से वक्तृत्व के साथ उसके अन्वय के असिद्ध होने से।"अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवत्" इसमें अप्रदर्शित अन्वय है "यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यं" इस अन्वय का यहां प्रदर्शन नहीं होने से, "यदनित्यं तत्कृतकम्" यह विपरीतान्वय है।इस प्रकार नव साधर्म्य से दृष्टान्ताभास हैं।।121।।

एवं वैधर्म्येणाऽपि, तद्यथा—नित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात्, यन्न नित्यं न तदमूर्त्तं परमाणुवदिति साध्याव्यावृत्तं परमाणोर्नित्यत्वात्। कर्मवदिति साधनाव्यावृत्तं अमूर्त्तत्वात्कर्मणः। आकाशवदित्युभयाव्यावृत्तमुभयोरपि तत्र भावात्।सुगतः सर्वज्ञ अनुपदेशालिंगानन्वयव्यतिरेकप्रमाणोपपन्नतत्ववचनत्वात्, यस्तु न सर्वज्ञो नासौ तद्वचनो यथा वीथीपुरुष इति संदिग्धसाध्यव्यतिरेक[5], तत्र सर्वज्ञत्वाभावस्य दुरवबोधत्वात्[6]। अनित्यः शब्दः सत्वात् यन्न तथा न तत्सत् यथा गगनमिति संदिग्धसाधनव्यतिरेकं, गगनसत्वस्यादृश्यत्वेनानुपलंभादभावा सिद्धे। संसारी हरि हरादिरविद्यादिमत्वात् यस्तु नैवं नासौ तथा यथा बुद्ध इति संदिग्धोभयव्यतिरेकं,

---

[1] मीमांसकाभ्युपगतादृष्टवत्।
[2] सुगत इत्यनुवर्तते।
[3] न विद्यते साध्यसाधनयोरन्वयो यत्र।
[4] रथ्यापुरुषवदिदृश्यत्र।
[5] संदिग्धः साध्यव्यतिरेको यत्र।
[6] अदृश्यत्वाभावस्य दुरवबोधत्वेन बौद्धो स्वयमनभिमतत्वादिति भावः।

बुद्धात्संसारित्वादिव्यावृत्तेः प्रमाणाभावेनानवधारणात्। नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् यन्न नित्यं न तदमूर्त्तं यथा घट इत्यव्यतिरेकं, घटे सतोऽपि साध्यव्यतिरेकस्य हेतुनिर्वर्त्तनं प्रत्यप्रयोजकत्वाददन्यथा कर्मण्यपि तस्य तत्वोपपत्तेः।अनित्यः शब्दः शब्दत्वात् वैधार्म्येणाकाशवदित्यप्रदर्शितव्यतिरेकं।तत्रैव यत्र सन्न तदनित्यमपि यथा नभ इति व्यतिरेकं साध्यनिवृत्त्या साधन निवृत्तेरनुपदर्शनात्। त इमे नव पूर्वे चाष्टादश दृष्टांताभासाः प्रतिपत्तव्या।।122।।

इसी प्रकार वैधर्म्य से भी—जैसे "नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् यन्न नित्यं न तदमूर्तं परमाणुवत्" यह दृष्टान्त साध्याव्यावृत्त है, परमाणु के नित्य होने से।कर्मवत् यह साधनाव्यावृत्त है कर्म के अमूर्त होने से।आकाशवत् यह उभयाव्यावृत्त है, नित्यत्व और अमूर्तत्व दोनों के वहां होने से।"सुगतः सर्वज्ञः अनुपदेशलिंगानध्यवसायव्यतिरेक ... प्रमाणोपपन्नतत्वात्" (अनुपदेश लिंग अध्यवसाय व्यतिरेक के बिना ही प्रमाणसम्मत तत्व को कहने से।) यस्तु न सर्वज्ञो नासौ तद्वचनो यथा वीथीपुरुषः यह संदिग्ध साध्य व्यतिरेक है, वीथीपुरुष में सर्वज्ञता के अभाव का ज्ञान कठिनता से होने के कारण।"अनित्यः शब्दः सत्वात्" यन्न तथा न तत्सत् यथा गगनम्" यह संदिग्ध साधन व्यतिरेक है, गगन के सत्व को अदृश्य होने के कारण अनुपलब्ध होने से अभाव की सिद्धि नहीं होने से। संसारी हरिहरादिरविद्यादि मत्वात् यस्तु नैव नासौ तथा यथा बुद्ध यह संदिग्धोभय व्यतिरेक है, बुद्ध के संसारित्व के अभाव को सिद्ध करने वाले किसी प्रमाण के न होने से निश्चित नहीं होने से।नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् यन्न नित्यं नतदमूर्तंयथा घट यह अव्यतिरेक है, घड़े में साध्य के विपरीत अनित्यत्व के होने पर भी अमूर्तत्वात् हेतु साध्य के प्रति अप्रयोजक होने से अन्यथा कर्म में भी अमूर्तत्व हेतु को साध्य के प्रति प्रयोजकत्व होने का प्रसंग होने से।"अनित्यः शब्दः शब्दत्वात्" वैधर्म्य से आकाश के समान, यह अप्रदर्शित व्यतिरेक है।यन्न सन्न तदनित्यमपि यथा नभ यह व्यतिरेक है, साध्य के बिना साधन के अभाव का प्रदर्शन नहीं होने से।ये नव तथा पहले बताये गये नव इस प्रकार अठारह दृष्टान्ताभास जानना चाहिये।।122।।

कुतः पुनर्दृष्टांत तदाभासयोः साधनदूषणभावस्याभावेऽभ्युपगमेनापि निरूपणमिति चेत् न, तत्त्ववाद एव तयोस्तदभावात्।[1]प्रतिवादादौ तु स विद्यत एव तद्वादस्यापि चिरंतनैरभ्यनुज्ञानादित्युपपन्नमेव तन्निरूपणं फलवत्त्वादिति।।123।

साधन दूषणभाव के अभाव में अनुमान के स्वीकार करने पर भी दृष्टान्त और दृष्टान्ताभास का निरूपण क्यों किया, यह कहना ठीक नहीं है।वीतराग कथा में ही दृष्टान्त और दृष्टान्ताभास के साधन दूषण प्रयोग का अभाव होने से, प्रतिवाद आदि विजिगीषुकथा में तो साधन दूषण प्रयोग होता ही है और वह वाद प्राचीन विद्वानों के द्वारा स्वीकृत है अतः फलप्रद होने से उनका निरूपण ठीक ही है।।123।।

---

[1] विजिगीषुकथायां;

(पद्यम्)

पद्य

स्मृत्यादेरनुमाधियोऽपि च मया हेत्वादिभिः सेतरैः
नीते निर्णयपद्धतिं स्फुटतया देवस्य दृष्ट्वा मतम्
श्रेयो वः कुरुतान्मनोमलहरं स्फारादरं श्रोतृणां ।
मिथ्यावादतमो व्यपोह्य निपुणं व्यावर्णितो निर्णयः ।

मैंने स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क आदि उपचारानुमान तथा अनुमान को भी देव के मत को देखकर हेतु, साध्य, दृष्टान्त तथा हेत्वाभास, साध्याभास और दृष्टांताभास के द्वारा निश्चय मार्ग को पहुंचा कर मिथ्यावाद रूपी अन्धकार को दूर करके बडी निपुणता से अनुमान निर्णय का वर्णन किया है, यह आदरपूर्वक सुनने वाले आप श्रोताओं के मन की मलिनता को दूर करने रूप कल्याण को करे।

इति श्रीमद्वादिराजसूरि–प्रणीते प्रमाणनिर्णयनाम्नि न्यायग्रंथे अनुमाननिर्णयः ।।

इस प्रकार श्रीमद् वादिराज सूरि द्वारा प्रणीत प्रमाण निर्णय नामक न्यायग्रन्थ में अनुमान निर्णय का वर्णन किया गया।

आगमनिर्णयः ।।

आगम निर्णय

अथेदानीमागमः।स चाप्तोपदेशः, तस्य च प्रामाण्यं ततस्तद्विषयप्रतिपत्ते–रौपचारिकं, मुख्यतस्तस्या एव तद्भावात्।पुनः शब्दादर्थप्रतिपत्तिस्तस्यार्थाभावेऽपि भावादिति चेत् कथमिदानीं ज्ञानादपि कुतश्चित्तत्प्रतिपत्तिस्तदभावे तस्याऽपि भावाच्चंद्रद्वयादिवत्। पुरुषेच्छानुविधायित्वान्नार्थवत्त्वं शब्दस्येत्यपि न युक्तं ज्ञानेऽपि समानत्वात्। अस्ति हि तस्यापि तदा विधायित्वं ब्रह्मप्रधानादिषु तद्वादिमतानुविधायितयैव तस्य प्रवृत्तेः, न [7]वस्तुतथाभावादन्यथा[8] स्वयं तत्प्रतिक्षेपस्यानुपपत्तिप्रसंगात्। कारणदोषोप[9]नीतमिथ्यावभासनस्वभावस्यैव

---

[1] उपचारानुमानस्य।
[2] आदिशब्देनाऽत्र साध्यदृष्टांतौ गृह्यौ।
[3] हेत्वाभासादिभिः।
[4] निश्चयमार्गं।
[5] शीघ्रं श्रोतृणां।
[6] दूरीकृत्य।
[7] वस्तुयथार्थत्वात्।
[8] अगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्त इत्यादिवदिति शेषः।
[9] सौगतैरिति शेषः।
[10] जनित।

तयाऽपि तत्र तस्य प्रवृत्तिर्नापरस्य[1], तस्य वस्तुभावानुरोधितयैव, प्रवृत्तेरिति चेत्, अनुकूलमिदमस्माकमेवं शब्दस्याऽपि वस्तुभावानुरोधिनः[2] शक्यव्यवस्थापनात्।[3] सामान्यमेव शब्दस्य विषयस्तत्रैव संकेतस्य संभवात् तस्य चावस्तुत्वात्तद्वाचिनः कथमर्थत्वमिति चेत् न, तस्य नित्यव्यापिरूपस्याभावेऽपि विषयतत्प्रत्यक्षयोरिव[4] सदृशपरिणामरूपस्य तत्त्वत एवभावादन्यथा प्रत्यक्षेऽपि तस्यातात्विकेन ततो विषयव्यवस्थापनस्याभावप्रसंगात्। कथं वा तस्यावस्तुत्वे क्वचित्तन्निबंधन एकत्वसमारोपो[5] यतस्तद्व्यवच्छेदेनार्थस्य[6] [illegible] कुतश्चिदुपप्लवात्[7] तत इति चेत् न, सदृशापरापरोत्पत्ति –विप्रलंभान्नावधारय– तीत्यस्य विरोधात्। तत्र सदृश– परिणामस्यातात्विकत्वं, अनुभवप्रसिद्धत्वाच्च। अन्यथा विसदृशपरिणामस्याप्येवं तन्निबंधनत्वेन स्वलक्षणस्यापि[8] काल्पनिकत्वोपनिपातात्। इष्टमेवेदम्, भावा[9] येन निरूप्यंते तद्रूपं नास्ति तत्त्वत[10] इति वचनादिति चेत् न, कुतः पुनर्निरूप्यमाणत्वाविशेषे भावरूपस्येवतत्रैरात्म्यस्यापि तात्त्विकत्वम्?अपरिस्खलित निरूपणत्वाच्चेत्, आगतं तर्हि सदृशपरिणामस्यापि तत्त्वं तदविशेषादित्युपपन्नमेव तद्विषयतया शब्दस्य वस्तुविषयत्वं। तच्च न तन्मात्रत्वादतिप्रसंगात्। अपि त्वाप्तोपज्ञत्वेन गुणवत्त्वादा– प्तश्च वक्तुर्वाच्यवस्तुयाथात्म्यवेदित्वे सत्यविप्रलंभकत्वम्।।124।।

अब आगम का वर्णन करते हैं।वह आप्तोपदेश है उसकी प्रमाणता उससे उसके विषय की प्रतिपत्ति होने से औपचारिक है, मुख्यतः विषय की प्रतिपत्ति को ही प्रमाणता है। शब्द से अर्थ की प्रतिपत्ति कैसे होती है?अर्थ के अभाव में भी शब्द के होने से, यदि यह कहते हो तो यह बताओ कि किसी ज्ञान से भी अर्थ की प्रतिपत्ति कैसे होती है अर्थ के अभाव में ज्ञान के भी होने से चन्द्रद्वय आदि के समान।पुरुष की इच्छा के अनुसार अर्थ होने से शब्द को अर्थपना नहीं है, यह कहना भी ठीक नहीं है ज्ञान में भी यह समान होने से।ज्ञान की भी ब्रह्मप्रधान आदि के विषय में उन–उन वादियों के मतानुसार ही उसकी प्रवृत्ति होने से, वस्तु की यथार्थता से नहीं, अन्यथा स्वयं बौद्धों के द्वारा उसके निराकरण की अनुपपत्ति होने का प्रसंग होने से।कारणदोष से उत्पन्न मिथ्यावभासन स्वभाव वाले ज्ञान की ही उन–उन वादियों की इच्छानुसार विषय में प्रवृत्ति होती है, सम्यक् ज्ञान की नहीं सम्यक्ज्ञान की वस्तुभाव के अनुसार ही प्रवृत्ति होने से, यदि यह कहते हो तो यह तो

---

[1] सम्यग्ज्ञानस्य।

[2] सम्यग्ज्ञानस्य।

[3] सौगतो वदति।

[4] "अर्थे पदयत्येनं नहि मुक्ताथरूपता।तस्मात्प्रमेयाधिगमे प्रमाण मेयरूपतेति स्वयं सौगतैरभ्युपगमात्तत्प्रकारेण विषयतत्प्रत्यक्षयोस्तात्त्विकः सदृशपरिणामोऽस्ति तथा।

[5] स या नदित्याशंकायामाह।

[6] सर्वं क्षणिकं सत्त्वादिति।

[7] विसंवादात्। 9.अनुभवप्रसिद्धत्वाविशेषेण तात्त्विकत्वाच्चेत्या।

[8] स्वेनासाधारणस्वरूपेण लक्ष्यत इति स्वलक्षण न तथा सति विसदृशपरिणामाभावे तस्य तथा लक्षयितुमशक्यत्वात्काल्पनिकत्वोपनिपातः।

[9] तत्त्वोपप्लववादी प्राह।

हमारे अनुकूल ही है, इस प्रकार वस्तुभाव के अनुसार सम्यक्ज्ञान रूपी शब्द की भी व्यवस्था की जा सकने से।बौद्ध कहते हैं—शब्द का विषय सामान्य ही है, उसी में संकेत के संभव होने से और उसके अवस्तु होने से उसको कहने वाले को अर्थवत्त्व कैसे हो सकता है? आचार्य कहते हैं ऐसा नहीं है।विषय के नित्य और व्यापी रूप का अभाव होने पर विषय और उनके प्रत्यक्ष के समान सदृशपरिणाम रूप के वास्तव में होने से उससे विषय के व्यवस्थापन के अभाव का प्रसंग हो जायगा।फिर विषय के अवस्तु होने पर कहीं उसके आधार से ऐकत्व का समारोप कैसे होगा? जिससे उसका निराकरण करने के लिये "सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्" इस अनुमान की कल्पना की गयी है।यह भी किसी अन्तरंग विसंवाद से उससे नहीं, यह कहना भी ठीक नहीं है "सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलंभान्नावधारयति" इसका विरोध होने से।अतः सदृशपरिणाम को अतात्विकता नहीं है, अनुभव से प्रसिद्ध होने से, अन्यथा विसदृश परिणाम को भी इसी प्रकार अतात्विकता होगी और उसका कारण होने से स्वलक्षणत्व को भी काल्पनिकत्व का प्रसंग आयेगा।

तत्त्वोपप्लववादी कहते है--यह ठीक ही है 'भावा येन निरूप्यते तद्रूपं नास्ति तत्त्वतः" ऐसा वचन होने से।आचार्य कहते हैं, ऐसा नहीं है।फिर निरूप्यमाणत्व को समान होने पर भावरूप के समान अभावरूप को भी तात्विकता कैसे होगी।अपरिस्खलित (सरल) निरूप्यमाणत्व के कारण कहो तो फिर सदृशपरिणाम को भी तात्विकत्व हो जायेगा, दोनों में समानता होने से।अतः सदृश परिणाम को विषय करने के कारण शब्द को वस्तुविषयत्व सिद्ध हो जाता है।केवल वस्तु को विषय करने के कारण ही शब्द प्रमाण नहीं है, अतिप्रसंग होने से।अपितु आप्त के द्वारा कहे जाने से गुणयुक्त कथन तथा वक्ता के वाच्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान होने पर अविसंवाद युक्तियुक्त है।।124।।

आप्तश्च द्वेधा, विकलाविकलज्ञानविकल्पात्।विकलज्ञानस्याप्तत्वे तद्वचनस्याविसंवादकतयाबहुलं व्यवहाराधिरूढत्वात्।।125।।

आप्त दो प्रकार के हैं—विकल ज्ञान और अविकल ज्ञान के भेद से।विकल ज्ञान के आप्त होने में उनके वचन को अविसंवादकता होने के कारण प्रायः व्यवहार में रूढ़ होना है।।125।।

अविकलज्ञानश्च द्वेधा—परोक्षप्रत्यक्षज्ञानविकल्पात्।परोक्षज्ञानो गणधर — देवादिस्तस्य प्रवचनोपनीतसकलवस्तुविषयाविशदज्ञानतया परोक्षज्ञानत्वात्। प्रत्यक्षज्ञानस्तु तीर्थकरः परमदेवस्तदपरोऽपि केवली तस्य निरवशेषनिर्धूत— कषायदोषघातिमलोपलेपतया परमवैराग्यातिशयोपपन्नस्य सकलद्रव्यपर्याय— परिस्फुटावद्योतकारिणः प्रत्यक्षज्ञानस्य भावात्। प्रसाधितश्चायं[1]। ततो युक्तं तदुक्तत्वात्प्रवचनस्य गुणवत्त्वं, अन्यथा[2] तद्वचनस्यासंभवात्। संभव एव वीतरागस्यापि सरागवच्चेष्टासंभवादिति चेत् न, प्रयोजनाभावात्। कीड़नस्य च रागातिरेक[3]मलीमससमानसधर्मतया परमवीतरागे भगवत्यनुपपत्तेः। वैराग्यातिशयश्च

---

[1] सर्वज्ञः।
[2] अगुणवत्त्वं।
[3] आधिक्यं।

न रागादिः क्वचिदत्यन्तहानिमान्[1] प्रकृष्यमाणहानिकत्वात् हेम्नि कालिकादिवदित्यनुमानतोऽव्यवसायात् ।।126।।

अविकल ज्ञान भी दो प्रकार का है--परोक्ष और प्रत्यक्ष ज्ञान के विकल्प से।परोक्ष ज्ञान वाले गणधर देव हैं, प्रवचन से प्राप्त संपूर्ण वस्तु विषय में अस्पष्ट ज्ञान के कारण परोक्ष ज्ञान होने से।प्रत्यक्ष ज्ञानी तो परमदेव तीर्थंकर हैं, दूसरे केवली भी हैं, उनके संपूर्ण कषाय, रागद्वेष आदि दोष तथा घातिया कर्म रूपी मल के उपलेप को नष्ट कर देने से सम्वैराग्य रूपी अतिशय के कारण उत्पन्न सकल द्रव्य और उसकी संपूर्ण पर्याय को स्पष्ट प्रकाशित करने वाले प्रत्यक्ष ज्ञान के होने से।सर्वज्ञ की सिद्धि पहले की जा चुकी है।अतः उनका कहा हुआ होने से प्रवचन को गुणवत्ता युक्त ही है, उनके अगुणकारी वचन के संभव होने से यदि कोई कहे कि वीतराग के भी सराग के समान चेष्टा संभव होने से उनके वचन अगुणयुक्त हो सकते हैं तो यह कहना ठीक नहीं है उनके ऐसे वचन कहने का कोई प्रयोजन नहीं होने से।क्रीडा के लिये भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि क्रीडा तो रागातिरेक से मलीन मन वालों का धर्म है, वह परम वीतरागी भगवान के नहीं हो सकती। तीर्थंकर भगवान में वैराग्यातिशय है "रागादिःक्व चिदत्यन्तहानिमान् प्रकृष्यमाणहानिकत्वात् हेम्नि कालिकादिवत्" अर्थात् जैसे सोने में किट्टकालिमादि दोष होते हैं किंतु तपाने से वे बिल्कुल अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार रागादि दोष का भी कहीं अत्यन्त अभाव हो जाता है प्रकृष्यमाण हानिवाला होने से इस अनुमान से निश्चय होने से।।126।।

व्यभिचारी हेतुः सकलशास्त्रविदः प्रभृति प्रकृष्यमाणहानिकत्वेऽपि ज्ञानस्य क्वचि[2]दत्यंतहान्यभावादिति चेत् न, तस्यापि भस्मादौ निरवशेषस्यैव ज्ञाणस्य प्रतिपत्तेः। आत्मन्येव रागादिवत्कुतो न तस्य तदिति चेत् न, तस्यैवात्मत्वेन[3] तत्रैव तथा तदभावस्य विरोधात्।रागादेस्तु तदनन्यत्वेऽपि युक्तस्तत्राभावः सत्यपि तस्मिन् बोधस्वभावस्य तस्यापरिक्षयात्।तत्स्वभावश्चात्मा तथैवाहं जानामि" इति प्रत्यक्षेण प्रतिवेदनात्।अनुमानस्य च तद्विलक्षणे तस्मिन् प्रत्यक्षविरुद्धपक्षतया[4]नुपपत्तेः।तत्र परमवीतरागतया निर्व्यभिचारहेतुबलावधारिते भगवति वचनप्रलंभः संभवति।।127।।

शंकाकार कहते हैं--"प्रकृष्यमाण हानिकत्वात्" हेतु व्यभिचारी है, संपूर्ण शास्त्र के ज्ञाता आदि के अनुसार प्रकृष्यमाणहानिकत्व होने पर भी ज्ञान की कहीं भी (एकेन्द्रियादि में भी) आत्यन्तिक हानि नहीं होने से।ऐसा कहना ठीक नहीं है।भस्मादि में ज्ञान की आत्यन्तिक हानि देखी जाने से।रागादि की हानि के समान आत्मा में ही ज्ञान की आत्यन्तिक हानि क्यों नहीं होती, यह कहना ठीक नहीं है, ज्ञान को ही आत्मा होने के कारण, उसमें ही ज्ञान के अत्यंताभाव का विरोध होने से।रागादि को उससे अभिन्न होने पर भी आत्मा में उसका अभाव होना युक्त है आत्मा में उसका अभाव होने पर भी बोध स्वभाव आत्मा का क्षय नहीं होने से।आत्मा बोधस्वभाव वाला है "तथैवाहं जानामि" यह प्रत्यक्ष से

---

1. निरवशेषेण।
2. एकेंद्रियादौ।
3. हेत्वर्थे तृतीया विभक्तिः।
4. हेत्वर्थे तृतीया।

प्रतिवेदन होने से।ज्ञान स्वभाव से विलक्षण आत्मा के विषय में प्रत्यक्ष विरुद्ध पक्ष होने से अनुमान की भी उपपत्ति नहीं हो सकती।अतः परमवीतरागता के रूप में अव्यभिचारी हेतु से निर्धारित भगवान में दोष युक्त वचन नहीं हो सकता।।127।।

कथमेवं[1] तादृशस्य वचनमपि स्वार्थाभावादिति[2] चेत् न, परार्थतयैव तद्भावात्। तयापि तत्र परानुग्रहाभिसंधे[3]स्तत्र तदभावात्, अपि तु सुकृतविशेषोपनिपातात्, स्वभावविशेषादेव, भानुमतोनलिनविकासवत्, उदन्वदंभोविवर्द्धनवच्च तुहिनद्युतेः[4]।।128।।

वीतरागी भगवान का अपना कोई स्वार्थ न होने के कारण निर्दोष वचन भी क्यों है?यह कहना ठीक नहीं है परार्थतया ही उनके वचन होने से।परार्थतया भी उनके वचन नहीं हैं पर का अनुग्रह आदि मोह का भी उनमें अभाव हो जाने से।अपितु पुण्यविशेष से प्राप्त स्वभाव विशेष से ही उनके निर्दोष वचन होते हैं।सूर्य से कमल के विकास के समान तथा चन्द्रमा से समुद्र के जल के विवर्द्धन के समान।।128।।

कथं तर्हि प्रत्यर्थनियतत्वं तद्वचनस्य सकलदर्शनोपजनिते तत्र सकलार्थतायां एवोपपत्तेर्नियतविषयाभिसंधेश्च नयरूपतया तत्रासंभवादिति चेत् न, प्रश्नविषय[5] एव प्रत्यर्थनियतानेकस्वभावाधिकरणादपि तद्दर्शनात्तदुपपतेः। प्रश्नस्य च सकलविषयस्य युगपत्प्रश्नकारिण्यसंभवात् संभवे च भवत्येव तद्वचनात् कुतश्चिदप्यंतरंगमलविश्लेषविजृंभितप्रज्ञापाटवस्य गणधरदेवादेः सकलविषयप्रतिपत्तिः।अद्यापि कस्यचिद्बोधातिशयविशेषवतः सूत्रादेव तद्वृत्तिर्वार्तिकादि – विवरणीय[6]तदर्थविस्तारपरिज्ञानस्योपलंभात्।।129।।

शंकाकार कहते हैं कि फिर उनका वचन प्रत्यर्थ नियत कैसे होता है सकल दर्शन होने पर वहां सकलार्थता की ही उत्पत्ति होने से, नयरूप से नियत विषय का प्रतिपादन उससे नहीं होने से, यह कहना ठीक नहीं है, अनेक स्वभाव वाले उनके दर्शन से भी प्रश्नविषय के अनुसार प्रत्यर्थनियत की उपपत्ति होने से।सकल विषयका एक साथ प्रश्न करनेवाले में असंभव होने से, संभव होने पर उनके किसी वचन से अन्तरंग मलविश्लेष से उत्पन्न प्रज्ञापाटव गणधर देवादि के संपूर्ण विषयों का ज्ञान होता ही है।आज भी किसी विशेष ज्ञानातिशय वाले के सूत्र से ही उसकी वृत्ति वार्तिक आदि व्याख्या करने योग्य अर्थ का विस्तृत ज्ञान देखा जाता है।।129।।

कः पुनः प्रवचनस्याप्तोपज्ञत्वेन गुणो यतः प्रामाण्यमिति चेत्, प्रमाणांतराविरोधलक्षणो[7]ऽविसंवाद एवं न ह्यसौ तत्र शब्दस्यैव सामर्थ्येन

---

[1] सतीति शेषः।
[2] स्वस्य प्रयोजनाभावात्।
[3] मोहात्।
[4] चंद्रात्।
[5] अर्थे इति शेषः।
[6] व्याक्रियमाण।
[7] अवाधस्वरूपः।

स्वतस्तस्योपाध्यायसेवावैफल्यप्रसंगेनाप्रत्यायकत्वात्[1], नाऽपि पुरुषमात्रस्य वचन-मात्रेऽपि तत्प्रसंगात् ।अस्ति प्रवचने ततस्तद्[2]र्थस्य कथंचित्प्रत्यक्षेणापरस्या-नुमानेनात्यंतपरोक्षस्य च तदेकदेशैरविरुद्धतयैव[3] प्रतिपत्तेः। के पुनस्तेऽर्था ये तथा ते प्रतिपत्तव्या इति चेत् ।भावेष्वनेकांतः परिणामो मार्गस्तद्विषयश्च ।।130।।

आप्त के द्वारा कहा जाने से प्रवचन का क्या गुण है?जिससे उसकी प्रमाणता है? यह कहते हो तो किसी अन्य प्रमाण से विरोध न होने वाला अविसंवाद ही उसकी विशेषता है ।इस प्रकार आप्तवचन में केवल शब्द के सामर्थ्य से ही प्रमाणता नहीं है, उपाध्याय की सेवा को विफलता का प्रसंग होने से स्वयं शब्द के अनिश्चयात्मक होने से ।प्रत्येक पुरुष मात्र के वचन मात्र में भी प्रमाणता नहीं है, उक्त प्रसंग से ही ।अतः प्रवचन में उनके अर्थ की कथंचित् प्रत्यक्ष से कहीं अनुमान से और अत्यंत परोक्ष अर्थ की कथंचित् अविरुद्धतया प्रतिपत्ति होने से प्रमाणता है।

वे अर्थ क्या हैं?जिन्हें उस प्रकार जानना चाहिये--पदार्थों में अनेकान्त, परिणाम, मार्ग और उनके विषय हैं।।130।।

तत्रानेकांतो नाम तेषां युगपदनेकरूपत्वं। परिणामश्च क्रमेणास्ति हि तयो[4]र्गुणपर्ययवद्द्रव्यमित्यादेरागमादिव प्रत्यक्षादेरपि प्रतिपत्तिश्चेतने स्वपरवेदन विकल्पाविकल्पाविभ्रमाविभ्रमादिभिः स्वभावैरचेतने परसामान्यविशेषगुण गुण्यादिभि[5]स्तदेकांतभेदाभेदयोरप्रतिपत्त्या प्रतिक्षेपेण युगपदनेकरूपसाध्यक्षतः शक्तिभेदैश्च कार्यभेदप्रतिपत्तिहेतुकादनुमानतोऽपि निर्णयपथप्रापणात्।।131।।

अनेकान्त तो पदार्थ का एकसाथ अनेकरूपत्व है, परिणाम भी क्रम से हैं, गुण और पर्यायों में "गुणपर्ययवद् द्रव्यं" इत्यादि आगम के समान प्रत्यक्षादि से भी प्रतिपत्ति होती है--चेतन में स्व पर वेदन विकल्प अविकल्प, विभ्रम अविभ्रम आदि स्वभाव से तथा अचेतन में सामान्य विशेष, गुण गुणी आदि के द्वारा एकान्तरूप से भेद और अभेद की प्रतिपत्ति नहीं होने से उसका निराकरण करने से, युगपत् अनेकरूपता की प्रत्यक्ष रूप से, शक्तिभेद से तथा कार्यभेद की प्रतिपत्ति करने वाले अनुमान से भी निर्णय होने से।।131।।

एवं परिणामस्य, तस्यापि स्मरणप्रत्यभिज्ञानाद्यनुपातिनश्चित्स्वभावस्या-चित्स्वभावस्यापि कुंडलप्रसारणाद्यनुषंगिजंगाद्यात्मनः स्वानुभावादैंद्रियादध्यक्षतोऽ-नीक्षणात्। एवमनुमानतोऽपि। तच्चेदं--क्रमादप्यनेकांतात्मा भावो युगपदप्यन्यथा तदनुपपत्तेः ।नित्यानित्यात्मकस्य [6] तत्र संशयादेर्दोषादभावे [1]सकृन्नानैकरूपत्वमपि

---

[1] अनिश्चायकत्वात्।

[2] कस्य तदर्थस्य प्रत्यक्षेणाविरुद्धतया ततः ।प्रतिपत्तिरिति संबंधः एवमनुमानादावपि योज्यं।

[3] पूर्वापराविरुद्धतया तथैवोक्तं श्रीमदाशाधरदेवै "दृष्टोऽर्थोऽध्यक्षतो वाक्यमनुमेयेऽनुमानतः ।पूर्वापरविरोधेन परोक्षं च प्रमाणतः"।

[4] सहभाविनो गुणाः, क्रमभाविनः पर्यायाः।

[5] "सर्वथा सविकल्पत्वे तस्य स्याच्छब्दरूपता ।सर्वथा निर्विकल्पत्वे स्वार्थव्यवस्थितिः कुतः"।

[6] स्वभावस्येति शेषः।

न स्यात् तदविशेषात्।माभूदिति चेत्, न तर्हि संशयादिरपि, तद्विकल्पस्यापि नानापरामर्शरूपत्वेनानेकांतात्मकत्वासंभवेऽनुपपत्तेः। भवतु [1]सकृदनेकांतः, कथं तावता क्रमेणापि?[2]विरोधाभावा[3]दिति चेत् न, निरन्वयविनाशे तस्य चिरातिक्रां[4]तवत्कार्यतत्कालमप्राप्तस्यानुपयोगेनावस्तुत्वापत्तेः, सान्वयविनाशे तु स एव परापरसमयेष्वपि तस्य स्वभाव इति तदात्मनः क्रमानेकांतस्य तत्साधनमविनाभावस्य तत्रैवाध्यवसायात्।।132।।

इसी प्रकार परिणाम का –स्मरण प्रत्यभिज्ञान आदि से होने वाले उसके चेतन स्वभाव तथा अचेतन स्वभाव का भी कुंडल प्रसारण आदि से युक्त सर्पादि को अपने अनुभव से तथा इन्द्रियों से भी प्रत्यक्ष रूप से जाना जाने से।इसी प्रकार अनुमान से भी।अनुमान यह है–"क्रमादप्यनेकान्तात्मा युगपदप्यन्यथा तदनुपपत्तेः" क्रम से भी पदार्थ अनेकान्तात्मक है, अन्यथा युगपत् भी नहीं होने से।संशयादि दोष के कारण पदार्थ के नित्य और अनित्य स्वभाव वाला नहीं होने से एक साथ नाना अथवा एकरूपत्व भी नहीं होगा, समानता होने से।न हो, यदि ऐसा कहते हो तो फिर संशय आदि भी नहीं होंगे, ज्ञान के विकल्प को नाना परामर्श रूप से अनेकान्तात्मकत्व के नहीं होने पर नहीं होने से।विपक्षी कहते हैं–युगपत् अनेकान्त मान लो क्रम से भी कैसे है?क्रमानेकान्त के अभाव में युगपत् अनेकान्त के सद्भाव का कोई विरोध नहीं होने से।आचार्य कहते हैं–यह कहना ठीक नहीं है। चेतनादि का निरन्वय विनाश मानने पर चिर अतीत के समान कार्य के समय तत्काल में होने पर उपयोग नहीं होने से अवस्तुत्व का प्रसंग आने से।सान्वय विनाश मानने पर तो पर और अपर समय में भी उसका वही स्वभाव होगा।अतः युगपत् अनेकान्तात्मकता क्रमानेकान्त का साधन है, अविनाभाव का वहीं निश्चय होने से।।132।।

कस्तर्हि मार्ग इति चेत्, निःश्रेयसप्राप्त्युपाय एव। स च त्रिरूपः "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" इत्यागमात्[7]। अनुमानाच्च। तत्रेदं-त्रिरूपोऽपवर्गमार्गः अपवर्गमार्गत्वान्यथानुपपत्तेः। न चाऽत्र हेतोराश्रयासिद्धिरपवर्गवादिनां सर्वेषामपि तस्य प्रसिद्धत्वात्।।133।।

मार्ग क्या है?यदि यह कहते हो तो मोक्ष की प्राप्ति का उपाय ही मार्ग है।वह त्रिरूप है–"सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः" इस प्रकार का आगम होने से।अनुमान से भी यह यह है "त्रिरूपोऽपवर्गः अपवर्गमार्गत्वान्यथा नुपपत्तेः" हेतु आश्रयासिद्ध भी नहीं है–सभी मोक्षवादियों के यहां मोक्ष के प्रसिद्ध होने से।।133।।

---

[1] युगपदिति भावः।
[2] ज्ञानस्य।
[3] युगपत्।
[4] अन्यभावे धूमसद्भावविरोधवत्, क्रमानेकांताभावे युगपदनेकांतसद्भावस्य विरोधाभावात्।
[5] चेतनादेः।
[6] अतीतवत्।
[7] आगमस्य प्रमाणांतराविरोधलक्षणं दर्शयति।

नाप्यन्यथोपपत्तिः ज्ञानादेः प्रत्येकं तन्मार्गत्वाभावात्। तथाहि—न ज्ञानदेवापवर्गः प्रत्युत्पन्नतत्त्वज्ञानस्याप्य[1]नपवृक्तस्यावस्थितेरन्यथोपदेष्टुरभावेनापवर्गार्थिनां तत्त्वज्ञानस्याभावप्रसंगात्।।134।।

मोक्षमार्ग की अन्यथा उपपत्तित्व भी नहीं है--ज्ञानादि को पृथक् पृथक् मोक्षमार्गत्व नहीं होने से।तथाहि—ज्ञानमात्र से मोक्ष नहीं होता, तत्त्वज्ञानी के भी अमुक्त होने से।अन्यथा उपदेष्टा का अभाव होने से मोक्षार्थियों को तत्त्वज्ञान के अभाव का प्रसंग होने से।।134।।

नापि दर्शनादेतायमभिरुचिरूपात् तद्विषयापरिज्ञाने तस्यैवासंभवात्।नापि ततस्तत्परिज्ञानसहायादनुष्ठानकल्पनावैफल्योपनिपातात्।।135।।

केवल श्रद्धान रूपी दर्शन से भी मोक्ष नहीं होता।मोक्ष के विषय का ज्ञान नहीं होने से श्रद्धान के ही असंभव होने से।श्रद्धान और ज्ञान दोनों से भी मोक्ष नहीं होता, अनुष्ठान (चारित्र) की कल्पना के विफल होने का प्रसंग होने से।।135।।

नाऽपि अनुष्ठानमात्रात्, तद्विषयवेदनाऽऽदरयोरभावे तस्यैवाभावात्।ततो युक्तं त्रैरूप्यमेव तन्मार्गस्य।।136।।

केवल अनुष्ठान (क्रियामात्र) से भी मोक्ष नहीं होता, विषय का ज्ञान और श्रद्धान के अभाव में क्रिया के ही नहीं होने से।अतः मोक्ष का मार्ग त्रैरूप्य ही है।।136।।

कथं पुनर्बंधेन तस्याविरोधे तत्परिक्षयरूपस्तस्मादपवर्ग इति चेत् न, साक्षादविरोधेऽपि तन्निदानविरोधितयाऽपि ततस्तदुत्पत्तेः।तथा हि—यद्यन्निदान—विरोधि ततस्तत्परिक्षयः, यथा व्याधिनिदानवातादि[2]विरोधिनो भैषज्यात् व्याधेः, बंधनिदानविरोधी चोक्तो मार्ग इति। बंधस्य च निदानं रागादिरास्रवस्तद्विरोधित्वं च मार्गस्य, तस्य भेषजस्येवातिशयतारतम्ये रागादेर्वातादेरिवापकर्षतारतम्यस्य प्रतिपत्तेः।।137।।

बंध से मार्ग का विरोध नहीं होने पर भी अपवर्ग को बंध का क्षयरूप क्यों कहा है?यह कहना ठीक नहीं है।साक्षात् विरोध नहीं होने पर भी उसके कारण का विरोधी होने से भी उक्तमार्ग से बंध का क्षय होने से।कहा भी है—जो जिसके कारण का विरोधी है, उससे उसका क्षय होता है, जैसे कि रोग के कारण वातादि के विरोधी औषधि से व्याधि का क्षय होता है।बंध के कारण का विरोधी उक्त मार्ग है।बंध का कारण रागादि का आस्रव है, उक्त मार्ग उसका विरोधी है।जैसे औषधि के सेवन से वातादि का अपकर्षतारतम्य देखा जाता है, उसी प्रकार उक्त मार्ग के अतिशय तारतम्य से रागादि का अपकर्ष तारतम्य देखा जाता है।।137।।

---

[1] अमुक्तस्य।

[2] आदिशब्दने श्लेष्मपित्तयोर्ग्रहणं।

भवतु नाम तदत्यंतातिशयदशायां तन्निदानपरिक्षयाबंधस्यानागतस्यानुत्पत्ते[1]रभावः प्रागवस्थस्य तु कथमिति चेत् न, तस्याप्याश्रवरूपस्नेहवशावस्थायिनस्तत्स्नेहापक्रमादेवाभावात्। तत्वाभिनिवेशरूपत्वान्मार्गस्य ततो मिथ्याभिनिवेशस्यैवापवर्त्तनं कथं रागादेरिति चेत् न, तस्यापि तद्विशेषत्वात्। कुतः पुनस्तस्य बंधनिबंधनत्वमिति चेत्। उच्यते।रागादिर्जीवस्य शरीरादिव्यतिरिक्तपुद्गलविशेषसंबंधहेतुस्तत्वान्मदिराद्यर्थिनस्तद्रागादिवत्।यथावस्थितस्वपरज्ञानस्वभावस्यात्मनः कुतो रागादिरपि दोषो यतस्तस्य तत्संबंधनिबंधनत्वमिति चेत् न तस्यापि तादृशा[2]त्प्राच्यादेव सत्संबंधतो भावात्। तथाहि—तादृशस्यात्मनो रागादिस्तत्संबंधपूर्वकस्तत्वान्मदिरापीतस्य रागादिवत् सोऽपि तत्संबंधस्ततः प्राच्याद्रागादेरेव।न चैवमनवस्थितिर्दोषो हेतुफलरूपतया रागादितत्संबंधप्रबंधस्यानादित्वात्।।138।।

उक्त मार्ग के अत्यंत सारम्य की दशा में बंध के कारणों का नाश हो जाने से अनागत बंध की उत्पत्ति नहीं होने से अनागत बंध का अभाव हो जाय किंतु जो पहले से स्थित हैं, उनका अभाव कैसे हो?यह नहीं कह सकते।आश्रव रूप स्नेह के कारण प्रागवस्थ बंध का भी स्नेह के अभाव से ही अभाव हो जाने से।मार्ग के तत्वाभिनिवेश रूप होने से मिथ्याभिनिवेश का ही अभाव होगा, रागादि का कैसे अभाव होगा, यह कहना उचित नहीं है, रागादि को भी मिथ्याभिनिवेश का ही विशेष रूप होने से।रागादि बंध के कारण कैसे हैं?यदि यह कहते हो तो बताते हैं—रागादि जीवस्य शरीरादि व्यतिरिक्त पुद्गल विशेष हेतु स्तत्वान्मदिरार्थिनस्तद्रागादिवत्" रागादि जीव के शरीरादि से भिन्न पुद्गल विशेष से संबंध के कारण हैं, रागादि होने से मदिरादि के इच्छुक के उसके रागादि के समान।अपने स्वरूप में स्थित स्व पर ज्ञान स्वभाव वाले आत्मा के रागादि दोष कैसे हैं?जिससे उसको पुद्गल विशेष से संबंध का कारण माना जाय, यह कहना भी उचित नहीं है, उस रागादि का भी पहले रागादि कारण से ही संबंध होने से।तथाहि —(तादृशस्यात्मनो रागादिस्तत्संबंध पूर्वकस्तत्वान्मदिरापीतस्य रागादिवत् सोऽपि तत्संबंधस्ततः प्राच्याद्रागादेव) रागादि युक्त आत्मा के रागादि रागादि संबंध पूर्वक हैं रागादि होने के कारण मदिरा पीनेवाले के रागादि के समान, मदिरा पीने वाले का भी मदिरादि से संबंध उससे पूर्व रागादि के कारण ही होता है, इस प्रकार अनवस्था भी नहीं है, हेतु और फल रूप से रागादि और उनके संबंध की परंपरा को अनादि होने से।।138।।

तदुक्तम्—

जीवस्य संविदो[3] रागादिहेतुर्मदिरादिवत्।
तत्कर्मगंतुकं तस्य प्रबंधोऽनादिरिष्यते।।इति।।

विषयस्तु मार्गस्य सप्तधा तत्वं "जीवाजीवाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वम्" इति सूत्रात्।तद्विषयत्वं च तस्य तन्निर्णयादेव प्रवृत्तेः।।139।।

कहा भी है—

---

[1] अत्र हेत्वर्थे पंचमी।
[2] रागादिहेतुकात्।
[3] संवित्स्वभावस्य।

संवित्स्वभाव वाले जीव के रागादि कारण मदिरादि के समान हैं, उन रागादि हेतुओं से आगन्तुक कर्म बन्धते हैं, यह परंपरा अनादि मानी गयी है।मोक्षमार्ग के विषय सात प्रकार के तत्त्व हैं—"जीवाजीवाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वम्" इस सूत्र के अनुसार जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष सात तत्व मोक्षमार्ग का विषय हैं, इनका निर्णय होने पर ही मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति होने से।।139।।

न हि जीवस्यानिर्णये तत्प्रवृत्तिरनिर्णीतस्या[1]पवर्गार्थित्वासंभवात्। नाप्य — जीवस्य तदा[2] तत्संबंधस्य संबंधस्यानवगमेन तद्वियोगकांक्षानुत्पत्तेः। नाप्याश्रवस्य बंधस्य च तन्निदान[3]निवर्त्तनद्वारेण शक्यनिवर्त्तनत्वानवगमेन कस्यचित्तन्निवर्त्त नायोद्यमानुपपत्तेः। नापि संवरस्य निर्जरामोक्षयोर्वा तदापि तस्य तन्निदानप्रत्यनी — कत्वस्य[4] तयोर्बंधविश्लेषस्वभावत्वस्य चानवगमेन तदनुपपत्तेः। कुतस्तर्हि जीवादेर्निश्चय इति चेत् न, ज्ञानस्यैव स्वपरसंवेदनस्वभावस्यान्वयिनो जीवत्वात्तस्य च क्रमानिरूपणे न निर्णयात्, तद्विलक्षणस्याजीवस्य बंधतदास्रवयोश्च मार्गात्तदास्रवनिरोधस्या[5]तद्वारेण बंधनिर्हरणस्याप्येक[6]देशसकल विकल्पस्योक्तनिर्णयत्वात्।।140।।

जीव का निर्णय नहीं होने पर उसकी मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, जिसका निर्णय नहीं है उसके मोक्ष का प्रयोजन असंभव होने से, अजीव का निर्णय नहीं होने पर भी मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, अजीव को जाने बिना जीव और अजीव के संबंध को न जानने के कारण उसके वियोग की इच्छा नहीं उत्पन्न होने से।आस्रव और बंध का निर्णय हुए बिना भी मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, बंध के कारणों को दूर करने के द्वारा बंध की समाप्ति को जाने बिना किसी का उसकी समाप्ति के लिए प्रयत्न नहीं होने से।संवर, निर्जरा और मोक्ष के अनिर्णय में भी मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं हो सकती।इनको जाने बिना भी बंध के कारणों के विपरीत संवर को तथा निर्जरा और मोक्ष के बंध को पृथक् करने के स्वभाव को जाने बिना मोक्ष के लिए प्रयत्न नहीं किया जा सकता।जीवादि का निश्चय कैसे होता है?यह कहना ठीक नहीं है, स्वपरसंवेदन स्वभाव वाले जीव के साथ सदैव रहने वाले ज्ञान को ही जीवत्व होने से और उक्त क्रम का निरूपण नहीं होने पर जीव का भी निर्णय नहीं होने से।उससे विलक्षण अजीव, बंध तथा उसके आस्रव का, आस्रव निरोध (संवर) के द्वारा बंध को रोकने का तथा एकदेश कर्मों के क्षय रूप निर्जरा और सकलदेश क्षयरूप मोक्ष का उक्त प्रकार से निर्णय होने से जीवादि का निश्चय होता है।।140।।

---

[1] पुंस इति शेषः।
[2] अनवगमसमये।
[3] निदानं कारणं।
[4] तस्य निदानं तस्य प्रत्यनीकस्य भावस्तत्त्वं।
[5] संवरस्य।
[6] एकदेशेन निर्जरा, सकलदेशेन मोक्षः।

कथमेवं[1] "तपसा निर्जरा च" इति संवरनिर्जरयोस्तपो निमित्तत्वमभिहितं तपसः कायपरितापरूपस्यामार्गांगत्वादिति चेत् न, तपःशब्देन तत्रापि[2] तत्वज्ञान –परिपाकपरिकलितस्य बाह्येतरव्यापारोपरमलक्षणस्य [3]चारित्रस्यैव प्रतिपाद–नादनशनादीनां तत्परिबृंहणपरतयैव तपस्त्वात् न मुख्यतः। यद्येवं चारित्रादेव तादृशादास्रवनिरोधे कथमन्यधायि, "स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः" इति गुप्त्यादरेपि तन्निरोध इति चेत् न, तस्यापकृष्टतद्विकल्परूपतया लेशतस्ततोऽपि तदुपपत्तेः।।141।।

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग से ही कर्मो से मुक्ति होती है तो फिर "तपसा निर्जरा च" इस सूत्र के द्वारा संवर और निर्जरा का कारण तप को क्यों कहा गया है?तप को शरीर को कष्ट देनेवाले के रूप में होने से विपरीत मार्ग का अंग होने से यह कहना उचित नहीं है, यहां भी तप शब्द से तत्वज्ञान की परिपक्वता से युक्त बाह्य और आन्तरिक व्यापार के शांत होने रूप चारित्र का ही प्रतिपादन होने से, अनशनादि बाह्य और अभ्यंतर तपों को उस चारित्र की वृद्धि करनेवाला होने से ही तप कहा गया है, मुख्य रूप से नहीं।यदि इस प्रकार चारित्र से ही आस्रव का निरोध हो जाता है तो "स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परिषहजयचारित्रैः" सूत्र के द्वारा गुप्ति आदि से भी आस्रव का निरोध क्यों कहा गया है?यह कहना उचित नहीं है, उसके चारित्र के अपकृष्ट विकल्प के रूप में होने के कारण कुछ अंशों में उससे भी आस्रव निरोध होने से।।141।।

कीदृशस्तर्हि मोक्षे जीवो नीरूप एव न भवत्येव केवलमित्यभ्युपग–गमादिति चेत् न, ततः [5]प्रागनुवृत्तिस्वभावतया प्रतिपन्नस्य तदापि पूर्ववत्तत्स्वभाव –परित्यागानुपपत्तेः। न प्रागपि तस्य वास्तवमनुवृत्तिमत्वमध्यारोपादेव तस्य भावादिति चेत् न, अध्यारोपस्याप्यपरापरक्षणेष्वेकत्वाध्यवसायस्य तत्प्रतिपत्ति विकलादयोगात् क्षणपर्यवसायिनश्च कुतश्चित्प्रत्यक्षादिवत्तत्प्रतिपत्तेरनुपपत्तेः, अपरापरसमयानुपातित्वस्य तत्र वास्तवत्वे वस्तुसत एव तद्रूपतया जीवस्य व्यवस्थितेः। काल्पनिकत्वे तत्कल्पनाकारिण्यप्येवं प्रसंगेनानवस्थोपनिपातात्। ततो वास्तवमेव तस्यानुवृत्तिमत्वं कल्पनया तदनुपपत्तेरिति मोक्षे नीरूपत्वमुपपन्नम्।।142।।

तटस्थ कहते हैं–तब मोक्ष में जीव कैसा रहता है?नीरूप रहता है।प्रतिपक्षी बौद्ध कहते हैं– केवलमेतिशान्तिम्" मान जाने से वह नीरूप नहीं रहता है, उनका यह कहना उचित नहीं है।मोक्ष से पहले अनुवृत्ति जीवत्व स्वभावता को प्राप्त जीव का मोक्ष होने पर भी

---

[1] मोक्षमार्गादेव भवति चेदिति शंकायां।

[2] सूत्रे।

[3] "भवहेतुग्रहणाय बहिरभ्यंतरक्रियाविनिवृत्तेः परं सम्यक्चारित्रं ज्ञानिनो मतम्"।

[4] तटस्थो वक्ति, बौद्धः प्रत्यवतिष्ठते, निःस्वभावः सर्वशून्य" इत्यर्थः।

[5] " दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपैति नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षं दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेतिशांतिं।"जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपैति नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षं दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचिन्मोहक्षयात्केवलमेति शांतिं।

पहले के समान ही अनुवृत्तिजीवत्व स्वभाव का परित्याग नहीं होने से।यदि यह कहो कि पहले भी जीव के वास्तविक अनुवृत्तिः युक्तता नहीं है, अध्यारोप से ही उसके होने से तो अपर-अपर क्षणों मे एकत्वाध्यवसायरूप अध्यारोप की प्रतिपत्ति नहीं होने से, अध्यारोप नहीं हो सकता, क्षणस्थायी की प्रतिपत्ति भी प्रत्यक्ष के समान अन्य किसी प्रमाण से नहीं होती, अपरापर समय युक्तता को वहां वास्तविक होने पर सत् वस्तु के रूप में ही जीव की व्यवस्थिति होने से, काल्पनिक होने पर उस कल्पना करनेवाले में भी इस प्रकार का प्रसंग होने पर अनवस्था दोष आयेगा।अतः जीव का अनुवृत्तिमत्व वास्तविक ही है, कल्पना से अनुवृत्तित्व की उत्पत्ति नहीं होने से, अतः मोक्ष में नीरूपत्व सिद्ध होता है।।142।।

भवतु[1] तर्हि जीवस्तदानीं ब्रह्मवेदे ब्रह्मैव भवतीत्यामनात् ब्रह्मणैक्यमापन्न इति चेत् न, ब्रह्मणस्तदापि प्रागिव तद्भेदापरित्यागे तदनुपपत्तेः।तत्परित्यागे च्यातादवस्थेनानित्यत्वापत्त्या नित्यं ब्रह्मेति प्रतिज्ञाव्यापत्तेः।प्रागपि तेनैक एव जीवः केवलमविद्यानिबंधन एव भेद इति चेत् न, तदभेदिनस्तस्य तद्वदेव सुविशुद्धज्ञानस्वभावतया तस्याप्यविद्यानुपपत्तेः।भवतु को दोष इति चेत् न, तत्र नित्यनिर्मुक्ततया मुक्तयर्थस्यात्मदर्शनश्रवणमननादेराम्नायाभिरूढस्यानर्थक्या -- पत्तेः।।143।।

विधिवादी कहते हैं जीव को मोक्ष होने पर उस समय वह "ब्रह्मवेदे ब्रह्मैव भवति" इस आम्नाय के अनुसार वह ब्रह्मा से ऐक्यपने को प्राप्त कर लेता है, यह कहना ठीक नहीं है, ब्रह्मा के उस समय भी पहले के समान उससे भेद को त्यागे बिना ब्रह्म की उपपत्ति नहीं होने से।उसको त्यागने पर पूर्व अवस्था का त्याग होने पर अनित्यत्व की आपत्ति आने से "नित्यं ब्रह्मा" इस प्रतिज्ञा का व्याघात हो जायगा।उससे पहले भी एक एव जीवः केवलमविद्यानिबंधन एव भेद" इसके अनुसार एक ही जीव है, केवल अविद्या के कारण ही भेद दिखाई देता है, यह कहना भी ठीक नहीं है, ब्रह्म से अभिन्न जीव के उसी के समान सुविशुद्ध ज्ञान स्वभावता के कारण उसके अविद्या की उपपत्ति नहीं हो सकती।ऐसा ही मान लो क्या दोष है?यह नहीं कह सकते।ऐसा मानने पर जीव के नित्य निर्मुक्तता होने के कारण मोक्ष के लिये आम्नाय के अनुसार आत्म दर्शन, श्रवण, मनन आदि को अनर्थकता प्राप्त होने से।।143।।

अस्तु[2] तर्हि जीवस्तदानीं निरवशेषबुद्ध्यादिवैशेषिकगुणनिर्मुक्त इति चेत् न, तस्य बुद्ध्यादिस्वभावत्वेन तदभावे सत्यभावस्यैव प्रसंगात्।तद्रूपत्वं च तस्याऽहं बोद्धाऽहं द्रष्टेतिबुद्ध्यादिसमानाधिकरणतया प्रत्यवभासनादिति चेत्, समानाधिकरणतया प्रत्यवभासनस्य च द्रव्यत्वं सामान्यमित्यादावभेदनिबंधनस्यैव प्रतिपत्तेः।बुद्ध्यादेरात्मनस्तद्गुणत्वेन भेदान्मिथ्यैव तथा तत्प्रतिभासनमिति चेत्, कुतो भेदेऽपि स तस्यैव गुणो नाकाशादेरपि, समवायस्य तन्निबंधनस्य तत्रापि

---

[1] विधिवादी वक्ति।

[2] पूर्वावस्थाया अभावत्वेन।

[3] यौगो वदति।

भावात् स्वगतात् कुतश्चिद्विशेषादिति चेत्, सः कोऽपरोऽन्यत्र कथंचिदभेदात्? इति न ज्ञानादिव्यतिरेकी जीवः संभवतीति ।।144।।

यौगाचार कहते हैं, तब मुक्त होने पर जीव संपूर्ण रूप से बुद्धयादि वैशेषिक गुण से रहित हो जाता है, उनका यह कहना भी समीचीन नहीं है, जीव के बुद्धयादि स्वभाव वाला होने से बुद्धयादि का अभाव होने पर स्वयं के अभाव का प्रसंग होने से।जीव बुद्धयादि स्वभाव वाला है "अहं बोद्धा अहं दृष्टा" इस प्रकार बुद्धयादि के समानाधिकरण रूप से प्रतिभासित होने से।प्रतिपक्षी कहते हैं—समानाधिकरण के रूप में प्रत्यवभासन को तो द्रव्यत्व है सामान्य आदि में अभेद के कारण की ही प्रतिपत्ति होने से।बुद्धयादि को आत्मा का गुण होने के कारण उससे भेद होने से 'अहं बोद्धा अहं दृष्टा' आदि का प्रतिभासन मिथ्या ही है, यदि यह कहते हो तो यह बताओ कि वह जीव का ही गुण क्यों है?आकाश आदि का भी क्यों नहीं है?उसके कारण समवाय को वहां भी होने से।अपने ही किसी विशेष से यदि यह कहते हो तो कथंचित् अभेद के अतिरिक्त वह अन्य कौन है?अतः ज्ञानादि से भिन्न जीव नहीं हो सकता।।144।।

भवतु तर्हि तदाचिन्मात्रमेव तस्य तत्वमिति[1] चेत्, किमिदं चिन्मात्रमिति? [2]दृश्योपलंभव्यावृत्तं स्वावभासनमिति चेत्, तदुपलंभस्य तत्स्वभावत्वे कथं ततो व्यावृत्ति[3]रनित्यत्वापत्तेरतत्स्वभावत्वे प्रागपि[4] कथं स तस्य?तत्स्वभावया प्रकृत्या[5] संसर्गादिति चेत्, न तर्हि कदाचिदपि ततो व्यावृत्तिः प्रकृत्या नित्यव्यापिकतया तन्निबंधनस्य संसर्गस्य सर्वदाऽपि भावात्[6] ।नाऽपि रागादिमलविलयपरिशुद्धो निरन्वयपरिशुद्धो विनश्वरबोधक्षणप्रबंध एव तदा स इति सांप्रतं निरन्वय–विनाशित्वे बोधक्षणानामर्थक्रियाकारित्वस्य प्रतिक्षिप्तत्वेन प्रबंधानुपपत्तेः।।145।।

सांख्य कहते हैं— तब चिन्मात्र ही उसका स्वरूप है। आचार्य कहते हैं— यह चिन्मात्र क्या है?(दृश्योपलंभ) घटादि की उपलब्धि से रहित स्वावभासनमात्र है यदि यह कहते हो तो घटादि का ज्ञान भी उसका स्वभाव होने के कारण उससे व्यावृत्ति कैसे होगी, अनित्यत्व का प्रसंग आने से।यदि घटादि को जानने का उसका स्वभाव नहीं है, तो मुक्ति से पहले भी वह कैसे जानता है?उस स्वभाव वाली प्रकृति के संसर्ग से, यदि यह कहते हो तो फिर जीव प्रकृति से कभी अलग नहीं हो सकता, प्रकृति के नित्य और व्यापी होने के कारण उसके कारण होने वाले संसर्ग के हमेशा ही होने से।न रागादि मल के विलय हो जाने से अत्यंत विशुद्ध निरन्वय परिशुद्ध विनश्वर बोधक्षण प्रबन्ध ही उस समय वह है, निरन्वय विनाशी होने पर बोधक्षणों के अर्थक्रियाकारित्व का निराकरण करने से उसके प्रबन्ध की अनुपपत्ति होने से।।145।।

---

[1] स्वरूपं सांख्यस्य मतमदः।
[2] घटाद्युपलंभव्या वृत्तं।
[3] अन्येति शेषः।
[4] मुक्तेः प्रागित्यर्थः।
[5] प्रधानेन।
[6] नित्यत्वात् व्यापित्वाच्च।

तस्यात्निर्मूलनिर्मुक्तकर्मबंधोऽतिनिर्मलः।
[1]व्यावृत्तानुगताकारोऽनंतमानंददृग्बलः ।।1।।
निःशेषद्रव्यपर्यायसाक्षात्करणभूषणः।
जीवो मुक्तिपदं प्राप्तः प्रपत्तव्यो मनीषिभिः ।।2।।

अतः मोक्ष होने पर जीव कर्मबन्ध से निर्मूल मुक्त होकर अत्यन्त निर्मल कर्मों से रहित ज्ञानादि गुणों से युक्त अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य वाला अखिल द्रव्य की अखिल पर्यायों को साक्षात् जानने वाला हो जाता है, ऐसा विद्वानों को जानना चाहिये।।1,2।।

भवतु नाम निश्चितलक्षणेन प्रत्यक्षादिनाऽसंवादात्तद्विषयेण प्रमाण्यमागमस्यात्यंतपरोक्षे तु जगत्संनिवेशविशेषादौ कथं निर्णेतव्यमतन्निर्णये[3] तत्वज्ञानस्यापरिपूर्णतया निःश्रेयसनिबंधनत्वाभावप्रसंगादिति चेत् न, तद्विषयस्यापि प्रवचनस्य प्रत्यक्षादिसंवादबलादवधारितप्रमाण्यप्रवचनसमानकर्तृकतया तन्निर्णयात्। न च निःशेषनिर्धूतरागादिदोषस्य सर्ववेदिनः क्वचित्तथ्या मिथ्या चान्यत्र वचनप्रवृत्तिः संभवति, रागादिमत्यतत्वज्ञ एव तथा तत्प्रवृत्तेरुपलंभात्। समानकर्तृकत्वमपि तत्रभागस्य[4] भागांतरेण[5] शास्त्रांतरवदविच्छिन्नादुपदेशपारंपर्यावगतेः।।146।।

शंकाकार कहते हैं—निश्चित लक्षण वाले जीवादि सात तत्वों को विषय करने वाले आगमांश को प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अविसंवादी होने के कारण प्रमाणता मान ली जाय किन्तु अत्यंत परोक्ष जगत की रचना विशेष आदि के विषय में उसकी प्रमाणता का निर्णय नहीं होने पर तत्वज्ञान की परिपूर्णता नहीं होने से मोक्ष के कारणत्व के अभाव का प्रसंग आयेगा, ऐसा कहना ठीक नहीं है।जगत की रचना आदि विषयक प्रवचन को भी प्रत्यक्षादि प्रमाणों के बल से अवधारित प्रमाणिक प्रवचन के समान होने के कारणप्रमाणता का निर्णय होने से।संपूर्ण रागादि दोषों को नष्ट कर देने वाले सर्वज्ञ की कहीं सत्य और कहीं मिथ्या वचन प्रवृत्ति संभव नहीं है, रागादि वाले असर्वज्ञ में ही तथा वचन प्रवृत्ति देखी जाने से।अत्यंत परोक्षार्थ प्रतिपादक आगमांश की प्रत्यक्षादि प्रसिद्धार्थ प्रतिपादक आगमांश के साथ समानता भी है, एक शास्त्र से दूसरे शास्त्र की समानता के समान उपदेश परंपरा से ऐसा जाना जाने से।।146।।

---

[1] कर्मभ्यः व्यावृत्तः, संविदादिनानुगतः।
[2] अनंतसुखदर्शनवीर्यज्ञानबलः।
[3] अत्यंतपरोक्षार्थप्रतिपादकस्यागमांशस्य प्रामाण्यनिर्णये।
[4] अत्यंतपरोक्षार्थप्रतिपादकागमांशस्य।
[5] प्रत्यक्षादिप्रसिद्धार्थप्रतिपादकागमांशेन सह।

[1]पदादि[2]रूपमेव प्रवचनं पदादेश्च स्फोटात्मनो निःकलस्य[3] निरंशस्याऽपौरुषेयत्वाद् कथं तदात्मनः प्रवचनस्य पुरुषगुणवशात्प्रामाण्यमिति चेत् न, वर्णक्रमस्यैव पदादित्वात्तदपि तदन्यस्य तस्याप्रतिपत्तेः। वर्णानामितरेतरकालपरिहारावस्थायिनां कथमेकत्र वस्तुप्रतिपत्तावुपयोग इति चेत्। इतरेतरदेशपरिहारावस्थायिनां कारणानामप्येकत्र कार्ये कथं[4]तेषां यथास्वदेशं भावादिति चेत् न, वर्णानामपि यथा स्वकालं विद्यमानत्वस्याविशेषात्।अवश्यं चैवमभ्युपगंतव्यमन्यथा तालवादिपरिस्पंदस्यापरापरसमयभाविनः एकत्र पदादिस्फोटाभिव्यक्तावप्यनुपयोगित्वेनानर्थकत्वप्रसक्तेः।।147।।

प्रवचन पद वाक्यादि रूप होते हैं और पदादि स्फोटात्मक और निरंश होते हैं, उनके नित्य और अपौरूषेय होने से कैसे उस पदादिरूप प्रवचन को पुरूष के गुण के कारण प्रमाणता है?यह कहना भी उचित नहीं है, वर्ण क्रम को ही पदादिपना होने से उसको प्रमाणता भी है, उससे भिन्न अन्य के प्रामाण्य की प्रतिपत्ति नहीं होने से।

वर्णों के दूसरे-दूसरे काल में न रहने पर वस्तु की प्रतिपत्ति में उनका उपयोग कैसे है?यदि यह कहते हो तो फिर दूसरे दूसरे देश में न रहनेवाले कारणों का भी कार्य में कैसे उपयोग हो सकता है?उनके यथा स्वदेश में होने से कार्य में उनका उपयोग हो जाता है, यदि यह कहते हो तो फिर वर्णों को भी यथा स्वकाल में विद्यमान होने से उनका भी वस्तु की प्रतिपत्ति में उपयोग हो जायगा, दोनों में समानता होने से।यह अवश्य मानना चाहिये, अन्यथा तालु आदि के व्यापार को भी भिन्न भिन्न समय में होने पर एक स्थान पर पदादि स्फोट की अभिव्यक्ति में अनुपयोगी होने से उनके अनर्थक होने का प्रसंग होने से।।147।।

कथं स्फोटादर्थप्रतिपत्तिः? स्वाधीनाभिव्यक्तिकादनभिव्यक्तिकाद्वा ततोऽर्थप्रतिपत्तौ सर्वदा सर्वस्यापि ततस्तदापत्तेः।ततो वर्णक्रमनिर्देशरूपमेव[5] पदादिकं तस्य च पौरुषेयत्वादुपपन्नं पुरुषगुणायत्तं तत्र प्रामाण्यं।।148।।

स्फोट से अर्थ की प्रतिपत्ति कैसे होती है?स्वाधीन अभिव्यक्ति करने वाले या अभिव्यक्ति न करनेवाले स्फोट से अर्थ की प्रतिपत्ति होने पर सदा सबको ही स्फोट से अर्थ की प्रतिपत्ति का प्रसंग आयेगा। अतः वर्णक्रम की रचना रूप ही पदादि हैं और उसके पौरूषेय होने के कारण पुरूष के गुणों के कारण आगम की प्रमाणता सिद्ध होती है।।148।।

---

[1] भाट्ट आह।
[2] आदिशब्देन वाक्यस्य ग्रहणं।
[3] निरंशस्य।
[4] व्यापारस्येति।
[5] रचना।

कथं पुनरेवमनित्यत्वे शब्दस्य तस्माद् व्यवहारोऽप्रतिपन्नसमया[1]त्त-दनुपपत्तेः, प्रतिपन्नसमयस्यापि तस्य व्यवहारकालं यावदस्थितेरिति चेत् न, समयस्याऽप्य[2]यमस्येत्यकरणात्। कथं तर्हीदृश ईदृशस्य वाचक इति[3]? [4]ततस्तात्कालिकस्येव[5] कालांतरभाविनोऽपि तादृशतया समयविषयत्वादुपपद्यत एव तस्य व्यवहारोपयोगित्वं। कर्त्तव्यश्चैवमंगीकारस्तालव्यादिव्यापारजन्मनो ध्वनिविशेषस्याप्यनित्यस्यैवमेव समयविषयतया वर्णाभिव्यक्तावुपयोगादित्यलमति विस्तरेण।।149।।

शंकाकार कहते हैं शब्द के अनित्य होने पर उससे व्यवहार कैसे होता है, व्यवहार के समय तक शब्द के नहीं रहने पर उससे व्यवहार नहीं होने के कारण समयपर्यन्त रहने पर भी वह व्यवहार काल तक स्थित नहीं रहता, अतः उससे भी व्यवहार नहीं हो सकता, यह कहना उचित नहीं है, समय प्राप्त शब्द को भी यह शब्द इस अर्थ का वाचक है, यह संकेत नहीं होने से, फिर इस प्रकार के अर्थ का वाचक यह शब्द है, यह कैसे निश्चित किया जा सकता है।अतः तात्कालिक शब्द के समान कालांतर भावी शब्द को भी उसीके समान समय का विषय होने से उसका व्यवहारोपयोगित्व सिद्ध ही हो जाता है।यह स्वीकार करना चाहिये तालु आदि के व्यापार से उत्पन्न हुए अनित्य ध्वनिविशेष को इसी प्रकार समय का विषय होने से वर्णों की अभिव्यक्ति में उपयोगी होने से।अधिक विस्तार की क्या आवश्यकता है?।।149।।

कथं पुनरनित्यत्वे शब्दस्य स एवायमकार उकारो वा यः प्रागश्रावीति प्रत्यभिज्ञानं, सत्येव नित्यत्वे तदुपपत्तेरिति चेत् न, तद्गतात्कुतश्चित्सामान्य-विशेषादेव[6] तदवक्लृप्तेः। तस्य[7] सदृशपरिणामरूपत्वात्तादृशोऽयमिति भवतु ततस्तदवक्लृप्तिः कथं पुनः स एवायमिति चेत् न, तथा ततोऽपि कलमकेशादौ तदुपलब्धेः। भ्रांतमेव तत्र तल्लूनपुनरुत्पन्नतया भेदिनि वस्तुत एकत्वस्याभावात् इति चेत् न, वर्णादिष्वपि तदविशेषात्, व्ययप्रादुर्भावयोस्तत्रापि प्रत्यक्षतोऽध्यवसायात्। तदनेन[8] तद्बलात्तत्र व्यापित्ववर्णनमपि प्रत्याख्यातं घटादिष्वव्यापिष्वेव तत्रापि तद्भावात्।व्यापिनः सामान्यस्य भावादेव घटादिष्वपि तद्भाव इति चेत् न, तादृशस्य प्रवेदनासंभवात्तत्संभवेऽपि वर्णेष्वपि तत्त एव तदिति[9] कथं ततस्तदव्यक्तिषु तत्व[10]प्रतिपत्तिः? कीदृशः पुनरसौ शब्दो यस्य

---

[1] शब्दात्।
[2] अयं शब्दोऽस्यार्थस्य वाचक इति।
[3] ईदृशस्यार्थस्येदृशः शब्दो वाचक इति संकेतकरणं कथं।
[4] कारणात्।
[5] शब्दस्य।
[6] कुत्रचित्सामान्यात्।
[7] शब्दस्य।
[8] पूर्वोक्तन्यायेन नित्यत्वनिराकरणेन वा।
[9] अस्तीति शेषः, तथाचानिष्टं मीमांसकस्य कुतः वर्णेष्वेव व्यक्तिवत्तेन सामान्यानंगीकरणात्।
[10] एकत्व।

प्रादेशिकस्यानित्यस्य चोपकल्पनमिति चेत्, पौद्गलिक इति ब्रूमः।तथा हि–पुद्गलविवर्त्तः शब्दः इंद्रियवेद्यत्वात् कलशादिसंस्थानवत्। तोयादि[1]संस्थानेन व्यभिचारस्तस्य सत्यपि तद्वेद्यत्वे तद्विवर्त्तत्वाभावात्। सोऽपि तोयादौ स्पर्शादिस्वभावचतुष्टयस्याभावेन तल्लक्षणस्यपुद्गलस्याभावादिति चेत् न, तत्राप्यनभिव्यक्तस्य गंधादेः स्पर्शवत्त्वादेव लिंगात्पृथिव्यामिव प्रतिपत्तेः, अनुद्भूतस्वभावत्वाच्च हेम्न्युष्णस्पर्शवदनुपलंभस्याप्यविरोधात्।[2]पृथिव्यादिरूपतया चातुर्विध्यस्यापि धारण इवोष्णेरणरूपतया पुद्गलतत्वाविशेषेऽप्युपपत्तेः, तन्नायं नियमः, आपो रसरूपस्पर्शवत्यस्तेजोरूपस्पर्शवत् वायुः स्पर्शवानिति।नापि सामान्यैः कर्मभि[3]र्व्यभिचारस्तेषां तद्वतो भेदे तद्वेद्यत्वस्याप्रतिवेदनात्, अभेदे तु तद्वतः पुद्गलतया तद्विवर्त्तत्वेन तेषु सत्तावत्तयैव भावात्।मूर्त्तिमतींद्रियवेद्यत्वस्यैव पौद्गलिकत्वेन व्याप्तिर्न च शब्दस्य तदस्ति तदिंद्रियस्यामूर्त्तत्वादिति चेत्, कथमेवम्[4]योऽपि हेतुर्दंडादिनिबंधनस्यैव कृतकत्वस्यानित्यत्वेन व्याप्तिर्न च शब्दस्य विद्यत इत्यपि वदतो निवारयितुमशक्यत्वात् कृतकत्वमात्रस्यैव तेन व्याप्तौ प्रकृतेनाप्यैंद्रियत्वमात्रस्यैव सा वक्तव्या। किं वा तदमूर्त्तिमतींद्रियम्? आकाशमिति चेत् न, तस्य व्यापित्वेनातिदूरस्थापि शब्दस्य सर्वस्यैकेंद्रियत्वेन[5] सर्वविषयस्यैकेनैकविषयस्य सर्वेण श्रवणप्रसंगात्।कर्णशष्कुलिविवरपरिच्छिन्नस्तस्य प्रदेश इति चेत् न, तस्य वास्तवत्वे कार्यत्वे च नभसः कलशादिवदनित्यत्व–प्रसंगात्, काल्पनिकस्य च व्योमकुसुमादिवदिंद्रियत्वानुपपत्तेः। अतः क्षयोपशमस्वभावशक्तिविशेषाध्यासितजीवप्रदेशाधिष्ठितस्य शरीरावयवस्यैव श्रोत्रत्वं, तत्संस्पर्शनेनैव शब्दस्य श्रवणमिति न तस्येंद्रियान्तरात्कश्चिद्विशेषः।।150।।

शब्द के अनित्य होने पर वह ही यह अकार या उकार है, जो पहले सुना था, यह प्रत्यभिज्ञान कैसे हो सकता है, शब्द के नित्य होने पर ही इस प्रकार के प्रत्यभिज्ञान के होने से।यह कहना ठीक नहीं है किसी सामान्य विशेष से उसका ज्ञान होने से।शंकाकार कहते हैं–शब्द के सदृश परिणाम रूप होने के कारण यह उसके समान है, इस प्रकार का शब्द से ज्ञान हो जाय, किंतु यह वही है, यह ज्ञान नहीं हो सकता, यह कहना ठीक नहीं है, अनित्य शब्द से भी कलश केशादि में उसकी उपलब्धि होने से।शंकाकार कहते हैं–कि शब्द के नष्ट हो जाने और पुनः उत्पन्न होने से भिन्न शब्द में वास्तविक एकत्व का अभाव होने से इस प्रकार का ज्ञान भ्रान्त ही है।आचार्य कहते हैं यह कहना भी ठीक नहीं है वर्णादि में भी यह बात सामान्य होने से, व्यय और उत्पाद का वहां भी प्रत्यक्ष से निश्चय होने से।अतः नित्यत्व के निराकरण के द्वारा शब्द में व्यापित्व के वर्णन का भी निराकरण हो गया, घटादि के अव्यापी होने पर वहां भी प्रत्यभिज्ञान होने से।व्यापी सामान्य के होने से ही

---

[1] आदिशब्देन तेजोवायू गृहीतव्यौ।
[2] पृथिव्यादेः पुद्गलत्वाविशेषात् भेदः कथमिति चेत्।
[3] चलनात्मकैः।
[4] कृतकत्वादिः।
[5] श्रोत्रैकेंद्रियत्वेन।

घटादि में भी प्रत्यभिज्ञान होता है, यह नहीं कह सकते।उस प्रकार का ज्ञान नहीं होने से, होने पर भी वर्णों में भी उसी से (सामान्य से) एकत्व का ज्ञान हो जायगा।

विपक्षी कहते हैं उस सामान्य से अव्यक्त शब्दों में 'एकत्व' की प्रतिपत्ति कैसे होगी? जिसकी प्रदेशिक और अनित्य की कल्पना की जाती है, यदि यह कहते हो तो पौद्गलिक है, ऐसा कहते हैं।तथाहि (पुद्गलविवर्तः शब्दः इन्द्रियग्रहेत्वात् कलशादि संस्थानवत्) शब्द पुद्गलका विकार है, इन्द्रिय से जाना जाने से कलशादि संस्थान के समान।जल तेज वायु आदि के साथ व्यभिचार है, उसके इन्द्रियग्रहेय होने पर पुद्गलविवर्तत्व का अभाव होने से।लोयादि में पुद्गलविवर्तत्व का अभाव है स्पर्श रस गंध वर्णरूप स्वभावचतुष्टय के अभाव में पुद्गल के लक्षण का अभाव होने से, ऐसा कहना ठीक नहीं है।वहां भी गंधादि के अभिव्यक्त नहीं होने पर स्पर्शवत्व हेतु से ही पृथ्वी में स्पर्शादि चतुष्टय की प्रतिपत्ति के समान स्वभाव चतुष्टय की प्रतिपत्ति होने से। अनुद्भूतस्वभावत्व के कारण सोने में उष्ण स्पर्श के समान अनुपलंभ का भी विरोध नहीं होने से।पृथ्वी आदि रूप होने से स्पर्श रस गंध वर्ण चतुर्विध स्वभाव धारण करने के समान उष्ण स्पर्श रूप से पुद्गल तत्व की समानता होने से।अतः यह नियम नहीं है कि जल रस रूप और स्पर्श वाला है, तेज रूप और स्पर्शवाला है, वायु स्पर्शवान है।सामान्य कर्मों के साथ भी व्यभिचार नहीं है कर्मों के स्पर्शादि चतुष्टय वाले से भिन्न होने पर इन्द्रियग्रहेत्व का प्रतिवेदन नहीं होने से अभिन्न होने पर पुद्गल होने के कारण पुद्गलविवर्तत्व के कारण उनमें सपक्ष के ही होने से।

मूर्तिमान् इन्द्रियों से वेद्य को ही पौद्गलिकत्व से व्याप्ति है, शब्द मूर्तिमान् इन्द्रियों से वेद्य नहीं है, शब्द को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय के अमूर्त होने के कारण, यदि ऐसा कहते हो तो अन्य कृतकत्व आदि हेतु भी कैसे शब्द को अनित्य सिद्ध कर सकेंगे, दंडादि के कारण से होने वाले कृतकत्व की ही अनित्यत्व से व्याप्ति है, शब्द के वह नहीं है ऐसा कहनेवाले के कथन का भी विरोध नहीं किया जा सकने के कारण।कृतकत्व मात्र की ही अनित्यत्व से व्याप्ति होने पर पौद्गलिकत्व के साथ भी इन्द्रियग्रहेत्व मात्र की ही व्याप्ति कहनी चाहिये।फिर वह अमूर्तिक इन्द्रिय क्या है?आकाश को तो कह नहीं सकते, उसके व्यापी होने के कारण अत्यन्त दूर के सभी शब्द को श्रोत्र एकेन्द्रियत्व के कारण सब विषय एक के द्वारा और एक विषय को सबके द्वारा सुनने का प्रसंग आने से।कर्णशष्कुलिविवर से ढंका हुआ आकाश का प्रदेश है, यह भी नहीं कह सकते, उसके वास्तविक होने और कार्य करने पर आकाश को कलशादि के समान अनित्यत्व का प्रसंग होने से, काल्पनिक को आकाश कुसुमादि के समान इन्द्रियत्व नहीं होने से।अतः क्षयोपशम स्वभाव रूप शक्तिविशेष से युक्त जीव प्रदेश से अधिष्ठित शरीर का अवयव ही श्रोत्र है, उसके स्पर्श से ही शब्द सुना जाता है और अन्य इन्द्रियों से उसकी कोई विशेषता नहीं है।।150।।

कथं पुनः पौद्गलिकत्वे शब्दस्य घटादिवदव्यापकत्वान्नानादेश[1]-स्थैर्युगपदुपलंभः? श्रोत्रस्याप्राप्यकारित्वादिति चेत् न, तत्र प्राप्यकारि श्रोत्रं प्रत्यासन्नग्राहित्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा नयनं, तथा च श्रोत्रमिति प्राप्यकारित्वस्य व्यवस्थापनात्। प्रत्यासन्नग्राहित्वं च तस्य तत एव तद्विवरवर्त्तिनः

[1] पौद्गलिकत्वेन घटादेरव्यापकत्वेऽपि नयनस्य प्राप्यकारित्वाद्युपलंभो यथा, तथा शब्दस्यापि कुतो न स्यादिति प्रश्न इत्याह।

कीटकादिध्वानस्याप्रतिपत्तेः। साधनव्यावृत्तिश्च नयनात्ततोऽञ्जनादेस्तद्गतस्याप्रतिवेदनात्तदप्राप्यकारित्वस्य च प्रत्यक्षनिर्णये निरूपितत्वात्।।151।।

शंकाकार कहते हैं—शब्द के पौद्गलिक होने पर घटादि के समान अव्यापक होने से नाना देशों में रहने वाले व्यक्तियों के द्वारा एक साथ कैसे सुना जाता है?श्रोत्र के अप्राप्यकारी होने से।यह नहीं कह सकते।श्रोत्र प्राप्यकारी है निकटवर्ती शब्द को ही ग्रहण करने से जो निकटवर्ती को ग्रहण नहीं करता, वह प्राप्यकारी नहीं है जैसे नेत्र, श्रोत्र प्रत्यासन्नग्राही है इस प्रकार उसको प्राप्यकारी सिद्ध किया जाने से।श्रोत्र को प्रत्यासन्न ग्राहित्व है, प्रत्यासन्न ग्राही होने से ही उसके बिवर में रहने वाले कीड़े आदि के शब्द को नहीं सुने जाने से।साधन व्यावृत्ति भी है, आंख के द्वारा आंख में लगे हुए अंजन आदि को न जानने से, उसके अप्राप्यकारित्व को प्रत्यक्षनिर्णय के समय निरूपित किया जा चुका है।।151।।

कथमेवमेकश्रोत्रप्रविष्टस्य वर्णस्य तदेवान्यैः[1] श्रवणमिति?न, वर्णस्य नानादिगभिमुखप्रवृत्तिकसदृशानेकस्वरूपतयैव स्वहेतुबलतो गंधवदेव प्रादुर्भावात्।[2]न हि गंधस्यापि युगपन्नानादेशस्थघ्राणेंद्रियप्राप्तिरेकस्यैवाव्यापिनो लोष्ठवदेव तदनुपपत्तेः।तत्रैवं प्रवचनस्यापौद्गलिकत्वपरिकल्पनमुपपन्नम्।ततः स्थितं सकल भावाधिष्ठानयोरनेकांतपरिणामयोर्मार्गतद्विषययोश्च प्रतिपादकं प्रवचनमविसंवादभावात्तद्भावस्य च निरूपितत्वात्प्रमाणमिति।।152।।

इस प्रकार एक श्रोत्र में प्रविष्ट वर्ण को दूसरे लोग कैसे सुन लेते हैं?यह कहना ठीक नहीं है।वर्ण को नाना दिशाओं में अभिमुख होने की प्रवृत्तिवाले सदृश अनेक स्वरूप से ही अपने कारण से गंध के समान उत्पन्न होने से।अन्यथा गंध भी एक साथ नाना देशों में रहने वालों के घ्राणेन्द्रिय को नहीं प्राप्त हो सकता, अव्यापी एक के ही लोष्ठ के समान नाना देशस्थ पुरूषों के घ्राणेन्द्रिय की प्राप्ति नहीं होने से।अतः प्रवचन को अपौद्गलिकत्व सिद्ध नहीं होता।अतः संपूर्ण भावों के अधिष्ठान अनेकान्त, परिणाम, मार्ग तथा उसके विषय का प्रतिपादक प्रवचन अविसंवादी है और जो अविसंवादी है, उसको प्रमाण कहा गया है।।152।।

तच्च स्वविषयेऽनेकांतादौ तत्प्रत्यनीकधर्मसद्वितीये वर्तमानं सप्तभंग्या प्रवर्त्तते।तद्यथा—स्यादनेकात्मैव भावः, स्यादेकात्मैव, स्यादुभयात्मैव, स्यादवक्तव्य एव, स्यादनेकावक्तव्य एव, स्यादेकात्मावक्तव्य एव, स्यादुभयात्मावक्तव्य एवेति।।153।।

---

[1] नृभिः।

[2] अन्यथा नानादिगाभिमुखवृत्तिकसदृशानेरियरूपत्थाभावे।

यह प्रवचन अपने विषय अनेकान्तादि में उसके विरुद्ध धर्म के साथ रहता हुआ सप्तभंगी के द्वारा प्रवृत्त होता है।वे सात भंग इस प्रकार हैं—स्यादनेकात्मैव भावः, स्यादेकात्मैव, स्यादुभयात्मैव, स्यादवक्तव्य एव, स्यादनेकात्मावक्तव्य एव, स्यादेकात्मावक्तव्यएव, स्यादुभयात्मावक्तव्य एव।।153।।

अनेकात्मतत्प्रत्यनीकयोर्द्वित्वात्तदाश्रयावुभावेव भंगावुपपन्नौ कथममी सप्त भंगा इति चेत् न, प्रतिपित्सातावत्त्वेन तदुपपत्तेः। तथाहि--अनेकात्मनस्तत्प्रत्यनी--कस्य च प्रत्येकमुभयोः क्रमेण युगपच्च प्रतिपित्सायां प्राथमिकाश्चत्वारो भंगाः, प्रथमभंगत्रयस्य क्रमेणावक्तव्यत्वेन सह बुभुत्सायामपरे त्रयो भंगा इति।एवं परिणामादावपि सप्रत्यनीके भंगसप्तकमुन्नेतव्यम्।।154।।

अनेकान्त और उसके विपरीत एकान्त दो के होने से उनके आश्रय से दो ही भंग सिद्ध होते हैं ये सात भंग क्यों कहे?यह कहना समीचीन नहीं है. जानने की इच्छा के कारण उसकी उत्पत्ति होने से।अनेकान्तात्मा और एकान्तात्मा के अलग--अलग क्रम से और युगपत् जानने की इच्छा से प्राथमिक चार भंग, प्रथम तीन भंग का क्रम से अवक्तव्य के साथ जानने की इच्छा से बाद के तीन भंग इस प्रकार।इसी प्रकार परिणाम आदि में भी विपरीत के साथ सात भंग बना लेने चाहिये।।154।।

न चैवं भंगांतरस्य परिकल्पनं क्रमतः प्रथमादेर्द्वितीयादिना योगे तृतीयाद्यंतर्भावस्य बहुलं पुनरुक्तस्य[1] चोपनिपातात्। तत्र युक्तमिदं--"सप्तभंगीप्रसादेन शतभंग्यपि जायते।" इति प्रकृतधर्मविधिप्रतिषेधाभ्यामेव तदनुत्पत्तेर्जीवादिपदार्थगततदपरानेकधर्मविधिव्यवच्छेदबलालंबेन तदवकल्पनाया--मत्यल्पमिदं शतभंगीत्यादि, ततः सहस्रभंग्यादेरपि संभवात्। एवकारोऽत्र सर्वत्रा[2]योगव्यवच्छेदाय सर्वमनेकात्मैव नान्यथेति, एवमन्यत्रापि[3]।।155।।

इस प्रकार सात के अतिरिक्त अन्य भंग की कल्पना भी नहीं होती, प्रथमादि को द्वितीयादि के साथ मिलने पर तृतीयादि भंग बनता है, फिर तृतीय भंग के साथ प्रथमादि भंग का योग करने पर पुनरुक्त का प्रसंग होने से।अतः यह कहना ठीक नहीं है कि सात भंग के प्रसाद से सौ भंग भी हो जाते हैं, प्रकृत धर्म के विधि और प्रतिषेध के द्वारा ही उनकी उपपत्ति नहीं होने से।जीवादि पदार्थ गत अनेक धर्मों के विधि और प्रतिषेध के कारण सौ भंगों की कल्पना करने पर तो सौ भंग भी बहुत कम हो जायगे, उससे हजार भंग की भी संभावना होने से।सभी भंगों में एवकार का प्रयोग अनुचित मेल का निराकरण करने के लिए है।जैसे सभी अनेकान्तात्मा ही हैं, अन्यथा नहीं, इसी प्रकार द्वितीयादि भंगों में भी।जैसे सभी एकान्तात्मा ही हैं, अन्यथा नहीं आदि।।155।।

तस्याप्यनेकात्मादिपदादेव प्रतिपत्तुमसामर्थ्ये भवत्वयं कस्य[4]चित्सामर्थ्ये तु किमनेनेति चेत् न, तदाप्यप्रयोग एवेति नियमाभावात्।कथं तदभावः प्रतीतार्थप्रयोगस्य दोषत्वादिति चेत्, कथमिदानीं द्वावपूपौ त्वं पचसीत्यत्र

---

[1] प्रथमभगंस्य तृतीयभंगेन सह योगेन पुनरुक्तत्वमस्तित्वद्वयात्।

[2] भंगेषु।

[3] द्वितीयादिभंगेष्वपि।

[4] पुंस इति शेषः।

द्वौपदत्वंप[1]दयोः प्रयोगो विना ताभ्यां तदर्थप्रतिपत्तेः।लोके गुरुलाघवं प्रत्यनादरादिति चेत्, सिद्धमेवकारप्रयोगस्यापि निर्दोषत्वं।तच्चानेकात्मत्वं भावस्य स्यात्कथंचिद्धर्मरूपेणैव न धर्मिरूपेण तस्यैकस्यैव शब्दादिरूपस्य प्रतीतेरेकात्मत्वमपि धर्मिरूपेणैव, न धर्मरूपेण, तस्यापि तत्रानित्यत्वकृतकप्रयत्नानंतरीयत्वादिरूपस्यानेकस्यैव प्रतिपत्तेः।कल्पनैव[2] सा नवस्तुतत्त्वावगाहिनी बुद्धिरिति चेत् न, कल्पनाया [3]एवाभिलाप्यानभिलाप्यस्वभावायाः स्याद्वादविद्वेषे सत्यनुत्पत्तेः। कल्पनायां न तद्विद्वेष इति चेदन्यत्रापि न स्यादविशेषत्। एवमुभयात्मकत्वमपि स्वगताभ्यामेव धर्मधर्मिभ्यां क्रमबुभुत्साविषयाभ्यां न भावांतरगताभ्यामवक्तव्यत्वमपि ताभ्यां युगपदेव न क्रमेण[4] नापि पदांतरेण तेन युगपदपि शतृशानयोः सच्छब्देनेव वक्तव्यत्वसंभवात्।एवमुत्तरत्रापि स्यान्निपातप्रसंगनिवृत्तिरवगंतव्या। भवतु नाम हेयोपादेयतत्त्वस्य[5] सोपायस्य प्रवचनेन प्रतिपादनं तत्परिज्ञानस्य निःश्रेयसनिबंधनत्वेन पुरुषार्थहेतुत्वादनेकांत परिणामयोः किमभिधानेनेति चेत् न, हेयादितत्त्वस्य तद्व्यापृत्यज्ञापनार्थत्वात्, तस्य न ह्यनेकात्मपरिणामविकलं तत्संभवति वस्तुमात्रस्यापि तद्व्याप्तस्यैवोपपत्तेर्निरूपितत्वात्। तथा चानेकांतन्यायविद्विषां तदभावेन तदव्याप्तस्य हेयादितत्त्वस्याप्यनुपपत्तेस्तत्प्रवचनानां तदभासत्वमभिहितं भवति।ततः स्थितं युक्तिशास्त्राविरोधेन सकलभावाधिकरणानेकांतपरिणामनिःश्रेयसमार्गतद्विषयलक्षणस्य सत्यचतुष्टयस्य यथावदभिधानादन्ययोगव्यवच्छेदेन भगवज्जिनशासनमेव प्रमाणमिति।।156।।

शंकाकार कहते हैं—अनेकान्तात्मा आदि पद से ही जानने की समर्थता नहीं होने पर एवकार का प्रयोग कर लिया जाय किंतु किसी व्यक्ति की जानने की समर्थता होने पर एवकार के प्रयोग की क्या आवश्यकता है?यह कहना ठीक नहीं है।सामर्थ्य होने पर भी उसका प्रयोग नहीं ही हो, ऐसा कोई नियम नहीं होने से।नियम का अभाव क्यों है?प्रतीतार्थ के लिये प्रयोग का दोष होने से, यदि यह कहते हो तो फिर 'द्वावपूपौ त्वं पचसि' यहां द्वौ और त्वं इन दोनों पदों का प्रयोग क्यों किया गया है, इन दोनों पदों के बिना भी अर्थ की प्रतिपत्ति होने से।संसार में गुरु और लघु के प्रति अनादर होने से यदि यह कहते हो तो एवकार के प्रयोग को भी निर्दोषपना सिद्ध हो जाता है।पदार्थ का वह अनेकात्मत्व कथंचित धर्मरूप से ही है, धर्मी रूप से नहीं, धर्मी के शब्दादिरूप एक की ही प्रतीति होने से।एकात्मत्व भी धर्मी रूप से ही है, धर्मरूप से नहीं धर्मरूप के भी अनित्यत्व, कृतकत्व, प्रयत्नानंतरीयकत्व आदि रूप अनेक की ही प्रतिपत्ति होने से।अनेक और एकरूप विषयक वह कल्पना ही है, वस्तुतत्त्व को ग्रहण करनेवाली बुद्धि नहीं है, यह कहना भी उचित नहीं है, अभिलाप्य या अनभिलाप्य स्वभाववाली कल्पना का स्याद्वाद से विरोध होने पर नहीं होने

---

[1] द्वाविति पदं च त्वमिति पदं च द्वौपदत्वं।

[2] अनेकैकत्वविषया।

[3] "धीर्विकल्पाविकल्पात्मा बहिरर्थश्च किं पुनः।निश्चयात्मा स्वतः सिद्धेत्परतोऽप्यनवस्थितिः।"

[4] स्वरूपापापेक्षया।

[5] मार्गविषयभूतसप्ततत्त्वस्य।

पे। कल्पना में स्याद्वाद से विरोध नहीं है, यदि यह करते हो तो अन्यत्र भी नहीं होना चाहिये, समानता होने से।इस प्रकार उभयात्मकत्व भी क्रम की अपेक्षा कथन करने की इच्छा से धर्म और धर्मी के स्वयं के द्वारा ही होता है, अन्य पदार्थ के द्वारा नहीं अवक्तव्य भी धर्म और धर्मी के युगपत् कथन करने की इच्छा होने पर होता है, क्रम से अथवा दूसरे पद के कारण नहीं।अन्य पद की अपेक्षा से तो युगपत् भी सत् शब्द से शतृ शानच् प्रत्यय के समान वक्तव्य संभव होने से।इसी प्रकार आगे के भंगों में भी स्यात् के प्रयोग से अतिप्रसंग का निवारण समझना चाहिये।विपक्षी कहते हैं–प्रवचन में मोक्ष के उपायभूत हेयोपादेय रूप सात तत्वों का प्रतिपादन तो ठीक है, उसके ज्ञान को मोक्ष का कारण रूप से पुरुषार्थ का हेतु होने से।अनेकान्त और परिणाम के कथन की क्या आवश्यकता है?आचार्य कहते हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं है–हेयादितत्व की अनेकान्त और परिणाम से व्याप्तता दिखाने के लिए उसके कथन की आवश्यकता है।अनेकान्त और परिणाम से रहित हेयादितत्व की हेयोपादेयता संभव नहीं है वस्तुमात्र को अनेकान्त और परिणाम से व्याप्त निरूपित करने के कारण।अनेकान्त न्याय से द्वेष रखने वालों के यहां अनेकान्त और परिणाम का अभाव होने से उससे अव्याप्त हेयादि तत्वों की भी उपपत्ति नहीं होने से उनके प्रवचनों को आगमाभासत्व कहा गया है।अतः युक्ति और शास्त्र से विरोध नहीं होने के कारण संपूर्ण पदार्थों के आधार अनेकान्त, परिणाम मोक्षमार्ग और उसके विषय लक्षण वाले सत्यचतुष्टय का यथार्थ कथन करने से, अन्यशासन का खंडन करने से भगवान जिनेन्द्र का शास्त्र ही प्रमाण है।।156।।

श्रेयः श्रीजिनशासनं यदमलं बुद्धिर्मम स्तादमुं —
द्वीची नित्यमनुत्तराप्यदमुईची मे रुचिर्वर्द्धताम्।।
आ संसारपरिक्षयादमुमुईची भावना भावतो
भूयान्मे भवबंधसंततिमिमामुच्छेत्तुमिच्छावतः।।

जो निर्मल कल्याणकारी जिनेन्द्र भगवान का शासन है मेरी बुद्धि उसे प्राप्त करे नित्य असाधारणता को प्राप्त मेरी रुचि भी बढ़ती रहे इस भव परंपरा को नष्ट करने की इच्छा रखने वाली और भावना करने वाली मेरी भावना संसार के नष्ट होने तक वृद्धि को प्राप्त होती रहे।

इति श्रीमद्भगवद्वादिराजसूरिप्रणीते प्रमाणनिर्णयनाम्नि न्यायग्रंथे आगमनिर्णयः।

।।समाप्तं श्रीप्रमाणनिर्णयः।।
।।शुभ भवतु।।

इस प्रकार भगवान वादिराजसूरि द्वारा प्रणीत प्रमाण निर्णय नामक ग्रंथ में आगम निर्णय वर्णन हुआ।।

प्रमाण निर्णय ग्रंथ समाप्त हुआ।
— शुभ हो —

---

[1] अमुद्रीची, अदोऽञ्चति प्राप्नोतीत्यमुद्रीची, यथा विश्वग्द्रीची।अदमुईची, अमुमुईची इति प्रयोगावपि प्राप्त्यर्थोऽदःशब्दाद्भवत एतैस्तिभिः प्रयोगैः "वादिराजमनुशाब्दिकलोक" इति स्तुतिः साक्षात्कृतार्था भवति।